क-३०

दोहावली की
कौमुदी टीका

पं० कालीप्रसाद शर्मा

* श्री सीताराम *

हिन्दी साहित्य सम्राट्, अनन्यभक्त,

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी

महाराज की दोहावली की

कौमुदी टीका।

लेखक

पं० कालीप्रसाद शास्त्री कविरत्न,

बा. प्रयागनारायण एम्.ए.यल.यल.बी.

वकील, उन्नाव।

प्रकाशक

बा. जयनारायण बी.ए.यल.यल.बी.

वकील, उन्नाव।

मि० का० वदी ४ शनिवार
सं० १९८१
१८ अक्टूबर सन् १९२४

प्रथम संस्करण १०००
मूल्य सादी जिल्द का १।।)
बढ़िया जिल्द का १।।।)

मुद्रक

लाला मन्नालाल अग्रवाल,
श्री लक्ष्मी प्रेस,
नयागञ्ज–कानपुर।

जहां कानपुर नगर में छपता सुन्दर काम।
उस श्री लक्ष्मी प्रेस का है यह मोनोग्राम॥

समर्पण

प्रभो राम !

प्रकृति के परिवेष मे पड़कर सामुद्रतरंग की भांति अभिन्नहृदय से अभिन्न होकर भी तारंग-समुद्रज्ञान से स्वत्वच्युत स्व को भूलकर भिन्नवत् हम समझते हैं। उसी भेद को अभेद्य मे परिणित करने, अनन्यता धरने एवं कर्मठता हरने के लिए स्वकर्मा की प्रेरकता से प्राप्त मन वाणी काय के यावत् कर्म उसी को समर्पणाभिलाषा से अनन्य-भक्त गोस्वामी श्री तुलसीदास जी की दोहावली की स्वकृत कौमुदी स्वरूपिणी तुच्छ भेंट भवभीति विभञ्जक, भक्तवत्सल, भगवन् ! भवदीय श्री चरणों मे समर्पित करते हैं।

भावत्क नामानुरागी—

कालीप्रसाद त्रिपाठी [श्रीकर]
प्रयागनारायण धवन,

भूमिका।

गोस्वामी जी के ग्रन्थों का आदर जितना इस समय होरहा है उतना भगवद्गीता को छोड़कर अन्य किसी ग्रन्थ का देखने व सुनने में नहीं आया। हम लोगों का अत्यन्त सौभाग्य है कि हमारा जन्म ऐसे समय मे हुवा जब कि प्राचीन ग्रन्थकारों के अनेक ग्रन्थरत्न बराबर प्रकट होते चले आ रहे हैं, और हिन्दू जनता उनका हार्दिक सम्मान कर रही है। हिन्दी संसार मे गोस्वामी जी की पदवी अद्वितीय है। इसका अनुभव इस तरह हो सकता है कि यदि कोई रामचरित मानस से "राम" निकाल डाले तो फिर उसमें कुछ नहीं शेष रहता। इसीभाँति यदि हिन्दी साहित्य से गोस्वामी जी के ग्रन्थ निकाल दिये जायँ तो सारा धार्मिक साहित्य बिना प्राण का हो जाय।

धार्मिक सम्बन्ध मे तो यह बात निश्चितरूप से कही जा सकती है कि यदि गोस्वामी जी के ग्रन्थ न होते तो कम से कम इन प्रान्तों में अन्धकार ही रहता। हिन्दू जाति का कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो गोस्वामी जी के नाम से परिचित न हो और जिसे कोई न कोई उनका पद याद न हो। हिन्दी भाषा से परिचित

कोई घर ऐसा न होगा जिसमें गोस्वामी जी का कोई ग्रन्थ न हो। इससे भगवद्वाक्य का प्रकट परिचय मिलता है कि वे अपने धर्म की रक्षा समय २ पर आप ही किया करते हैं। जैसे यह सिद्ध है कि "सो जाने जेहि देउ जनाई" बिना भगवत् की अनुकम्पा के कोई उनको जान नहीं सकता उसी भाँति यह भी सिद्ध है कि उनके सिवाय कोई धर्म की रक्षा भी नहीं कर सकता। महाराज के संसार में प्रकट होने का हेतु भी यही है कि धर्म रक्षा तथा वृद्धि हो और यावत् जीव महाराज को जान लें। जिन प्रभु के चरित्रों को देखकर परमपितामह जैसे महान व्यक्ति भी मोह को प्राप्त होजाते हैं तो फिर पामर मानव जाति का कहना ही क्या है, विशेष कर इस समय जब कि घोर कलिकाल अपना अकण्टक राज्य कर रहा है ?

गोस्वामी जी के बड़े २ ग्रन्थ जैसे रामचरित मानस, विनय-पत्रिका, गीतावली कवितावली की उत्तमोत्तम टीकायें प्रचलित हैं परन्तु इस अमूल्य रत्न दोहावली की कोई टीका वर्तमान नहीं है। इसी कारण से इसका सन्मान भी हिन्दी संसार में यथोचित नहीं हुवा सम्वत् १९५२ कार्तिक में काशी निवासी पं० छोटेलाल व्यास जी ने इसकी एक टीका लिखकर दोहावली का मार्ग प्रशस्त किया था और उसके द्वारा जो सहायता हमें प्राप्त हुई उसके लिये उन महाशय के हम कृतज्ञ हैं। परन्तु बहुत स्थानों में हम उनसे सहमत नहीं हो सके। हमें दोहावली की एक और टीका का पता लगा था जिसे कि परमभागवत महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने करीब ४० वर्ष पहिले लिखा था और उसकी ५०० प्रतियां एक ही बार प्रकाशित हुई थीं किन्तु बहुत खोजने पर भी दुर्भाग्य वश उसकी एक भी प्रति प्राप्त न हो सकी।

दोहावली में कवितावली या गीतावली की तरह किसी कथा का वर्णन नहीं है। और न कोई एक विषय ही विशेषभाव से लिखा गया है। प्रत्येक दोहे में एक विज्ञान अथवा एक भाव मुद्रक के रूप में वर्णित है। इस ग्रन्थ में कोई ऐसा क्रम भी प्रकट नहीं होता कि जिससे एक विषय या भावके दोहे एक ही जगह एकत्रित कर दिये गये हों। लेखन शैली के अनुसार दोहे के सङ्कुचित विस्तार के भीतर ही सब मतलब निकल आना चाहिए विषय चाहे जितना विस्तृत या बृहत् हो। ऐसी दशा में पद सिकुड़ कर एक शब्द में ही समा जाता है। और जब गोस्वामी जी का जैसा प्रवीण बुद्धि महात्मा किसी गूढ़ विषयको प्रकट करना चाहे तो दोहे की संकुचित मर्यादा में उस भाव के पकड़ने में कठिनाई पड़ना कोई आश्चर्य नहीं। एक दूसरा कारण कठिनता का और भी है गोस्वामी जी ने बहुत सा विज्ञान और स्वानुभूत अनुभव इस ग्रन्थ में ऐसा प्रकट किया है कि जिसका पता अन्यत्र तो क्या संस्कृत साहित्य में भी नहीं। फिर गोस्वामी जी की लेखन शैली भी ऐसी है कि जिसमें कोई टीकाकार शब्द के बाहर पैर मारने का साहस भी नहीं कर सकता। उनके पदों में न तो कहीं छन्दोभङ्ग है और न शब्दों की तोड़ मरोड़ ही। जो शब्द जैसा है वह स्वरूप में ही स्थित है और उस का मतलब रूपानुसार ही होना चाहिए। ऐसी दशा में टीकाकार को यह स्वतन्त्रता नहीं है कि केवल भाव को लेकर उसकी पूर्ति शब्दजाल को तोड़ फोड़ कर करदे। और ऐसा करना अनुचित भी है क्योंकि उससे उनकी साहित्यिक योग्यता में बाधा पड़ती है। लेकिन उन पर दोषारोपण करनेसे टीकाकार को स्वयं ही नीचा देखना पड़ेगा। ऐसी दशा में इस बात की चेष्टा की गई है कि अर्थ शब्द

रूपावली को लेकर ही किया जाय। और यदि ऐसा करने में कोई भावपूर्ण अर्थ प्रकट न हो तो टीकाकार की ही अयोग्यता समझना चाहिये। क्योंकि गोस्वामी जी ने जो लिखा है वह अत्यन्त सुन्दर, मार्मिक और अप्राकृतिक है। हम लोग गोस्वामी जी के भावों के प्रकट करने में कहां तक समर्थ हुए हैं इसका अनुभव सुयोग्य भक्त पाठक ही कर सकेंगे।

दोहावली कब लिखी गई इसका निर्णय करना अति कठिन है लेकिन यह बात तो निश्चय ही है कि यह रामचरितमानस के पीछे लिखी गई। क्योंकि इसमें बहुत दोहे रामचरित मानस के ज्यों का त्यों रक्खे हैं। यदि दोहों के भीतर का विज्ञान, भावों की गूढ़ता, छन्द का सौन्दर्य, और शब्दों की स्वाभाविकता को देखकर यह कहा जाय कि यह ग्रन्थ गोस्वामी जी की बुद्धि के पूर्णतया परिपक्व और विकसित होने पर लिखा गया तो भी वृथा ही होगा। क्योंकि जो व्यक्ति रामचरित मानस जैसा उच्चग्रन्थ लिख सकता है उसके विज्ञान भावुकता, प्रवीणता, विद्वत्ता इत्यादि के सम्बन्ध में पूर्णता का नाम लेना ही अपनी अयोग्यता का परिचय देना है। केवल इतना ही कह देना उचित है कि गोस्वामी जी की सर्वाङ्गीण योग्यता हम जैसे लोगों की बुद्धि से परे है। एक और तरह से भी इस पुस्तक के लिखने का समय निर्णीत हो सकता है वह यह है कि इसमें गोस्वामी जी ने राजा के व्यवहारों का भी वर्णन किया है। और जो रूप समकालीन राज्यतन्त्र का उन्होंने लिया है उससे यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि उस समय राजा का व्योहार प्रजा के साथ अयोग्यता और अत्याचार से भरा

था। गोस्वामी जी की मृत्यु सम्वत् १६८० में हुई थी और जहांगीर का शासनकाल १६६२ से १६६५ तक रहा। अकबर के समय में हिन्दू जाति पर कुव्यवहार बहुत कम हुए। परन्तु उसके मरते ही मुसलमान जाति ने हिन्दूजाति और धर्म पर अत्याचार और आक्रमण आरम्भ कर दिया। जिसका अन्तिम और भयङ्कर दृश्य औरंगज़ेब के समय प्रकट हुवा। इससे यह निश्चत हुवा कि यह ग्रन्थ उनके अन्तिम आयु के समय का है।

गोस्वामी जी की प्रचलित जीवनियों से विदित है कि वे समय २ पर दोहों के द्वारा लोगों के प्रश्नों का उत्तर दे दिया करते थे जैसा कि मीराबाई, रहीम इत्यादि के सम्बन्ध में कहा जाता है। इस लिये यह कहना उचित मालूम होती है कि यह पुस्तक गून्थ रूप में कभी नहीं लिखी गई किन्तु गोस्वामी जी ने अपनी अन्तिम आयु में बहुत से दोहों का संग्रह कर के रख दिया है। अपनी आजन्म प्रक्रिया के अनुसार गोस्वामी जी ने जो कुछ लिखा वह केवल राम जी या परमार्थ के सम्बन्ध में है। उनके अन्य गून्थों का विशेष भाग केवल श्री रामजी के सम्बन्ध ही में है। इस पुस्तक के अन्त में एक विषय सूची लगा दी गई है। उस के अवलोकन से विदित होगा कि इस गून्थ का बड़ा भाग महाराज जी तथा उनके बन्धु माता सखावों के सम्बध ही में है।

दोहावली का स्थान गोस्वमोजी के ग्रन्थों में कौन है और अन्य ग्रन्थों से उस की क्या विशेषता है इस का निर्णय करने के लिये हम को एक चलती दृष्टि गोस्वाजी के बड़े ग्रन्थों की ओर

करना पड़ेगी। रामचरित मानस तो सर्वाङ्ग पूर्ण है। गोस्वामी जी स्वयं ही कहते हैं—

निज संदेह मोह भ्रम हरणी। करौं कथा भव सरिता तरणी॥

कवितावली में मानस के कहे हुये कुछ चरितों का विस्तार पूर्वक वर्णन है जैसे लङ्का दहन इत्यादि। विनय का तात्पर्य उस के नाम ही से प्रकट है। गीतावली में श्री महाराज जी का अनूप-स्वरूप, उनके हृदय की कोमलता जन पर प्रीति, प्रबल प्रताप, गुप्तचरित और अद्भुत घटनाओं का वर्णन किया गया है। इन सब पुस्तकों से हम पद पद पर शिक्षा यद्यपि प्राप्त कर सकते हैं लेकिन चरितात्मक होने से वह कुछ खोजने पर मिलेगी। उन सब पुस्तकों में जो उपदेशात्मक बातें भी हैं उन्हें गोस्वामी जी ने अपने मन को ही लक्ष्य करके लिखा है परन्तु दोहावली में यह विशेषता है कि इसका लक्ष्य संसारी जीव है। इसमें गोस्वामी जी ने खुले तौर से दूसरों को उपदेश दिया है। और भक्ति मार्ग में चलने वाले मुमुक्षुजनों को जो कठिनाइयाँ प्राप्त होती हैं उनका दिग्दर्शन कराते हुए उनसे बचने की रीतियों को बतला दिया है। जैसे अभिमान, आलस्य, अफीम, आशा, दम्भ, गुरु अपमान, मूर्ख नीच सङ्ग, संशय, राम विमुखता, लोभादि से हानि और अहिंसा, सन्त, गुरु, सत्सङ्ग, दया, धर्म, दान, परमार्थ, विश्वास, वैराग्य, भलाई, भक्ति, सज्जन, सत्य, सन्तोष, सेवा, ज्ञान इत्यादि से जो लाभ होता है उनको भली भांति दिखलाया है। इसके अतिरिक्त चित्त, अहं, बुद्धि, मन, जीव, माया, जगत्, विवेक, सिद्ध भक्ति, लययोग, ब्रह्मदर्शन इत्यादि गूढ़ तत्वों की विवेचना, रूप और उनमें स्थिति या उनके प्राप्ति के

मार्गों को भी प्रकट कर दिया है। और साधकों के उपदेशार्थ जप और ध्यान की रीति का वर्णन अलौकिक, और आध्यात्मिक रूप से खोल दिया है।

लेकिन जब हम परमार्थिक वस्तुवों को छोड़कर गोस्वामी जी के लिखे हुए प्राकृतिक विज्ञान की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमको उनके लौकिक वस्तुवों और सम्बन्धों में अलौकिक प्रवीणता देखकर आश्चर्य होता है। आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में हजारों पुस्तकें राजा प्रजा तथा स्वराज्य के सम्बन्ध में मिलती हैं। लेकिन जो अटल और मार्मिक वर्णन गोस्वामी जी के छोटे २ दोहों में स्वराज्य, राजा और राजनीति के सम्बन्ध में मिलते हैं उनका अन्य किसी साहित्य में एक साथ और ऐसे निश्चित रूप में पता नहीं। योरोप का अर्थशास्त्र बहुत वृहत् है। और उसके बड़े २ ग्रन्थ प्रत्येक यूरोप की जाति में प्रचलित हैं। परन्तु उसी समूचे विज्ञान को गोस्वामी जी ने थोड़े से दोहों में अद्भुत सूत्र रूप से लिख दिया है। यदि हम उन दोहों को आदर्श मान कर आज कल की शासन प्रणाली पर दृष्टि डालें तो हमको प्रकट हो जायगा कि कर लेने की प्रचलित रीतियों में कितनी बड़ी त्रुटियां वर्तमान हैं।

भक्त और भक्ति भाव के सम्बन्ध में तो गोस्वामी जी की लेखनी अनुपम और अद्वैत है। और फिर श्रीराम जी के गुण ग्राम का वर्णन तो मानो गोस्वामी जी के हिस्से ही में पड़ा है। जो विषय सूची अन्त में लगी हुई है उसमें राम शब्द के पेटे में देखने से मालुम होगा कि दास और भगवत् के बीच में कौन २ भाव होने

चाहिए और क्या न होना चाहिए। चातक भक्ति का वर्णन जो गोस्वामी जी ने २७७ से ३१२ दोहे तक किया है जिसका संक्षिप्त विवरण उन दोहों के पूर्व में कर दिया गया है, उसके देखने से यह विदित होगा कि सारे संस्कृत साहित्य में इसके जोड़ का चातक-भक्तिभाव कहीं नहीं है।

इस टीकाके लिखनेमें यद्यपि एक वर्ष अवश्य लगा मगर हम यह नहीं कहते कि इसमें अशुद्धियाँ नहीं रहीं। क्योंकि सर्वज्ञता होना प्रायः सर्वत्र ही असम्भव है। तब भी जो कुछ अपनी शक्त्यानुसार हो सका हिन्दी माता के चरणों में अर्पित किया। विवेचना करना प्रेमी पाठकों पर निर्भर है। यदि पाठकवर्ग इसे पढ़कर इसकी त्रुटियों का ज्ञान हमें करायेंगे और द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होगा तो अवश्य ही कृतज्ञता पूर्वक उनका सुधार कर देंगे। ओम् शमस्तु।

निवेदकः—

१८ अक्टूबर सन् १९२४ कार्तिक बदी ४ शनिवार सम्वत् १९८१	**कालीप्रसाद शास्त्री,** **प्रयागनारायण वकील** **उन्नाव.**

अकारादि क्रम से दोहावली की,

अनुक्रमणिका ।

११८ अनुदिन अवध बधावने,
१३४ अस बिचारि मन धीर,
१६४ अविचल राज बिभीषनहिं,
२४० अपनी बीसी आपु ही,
३१२ अनजल सींचे रूख ते,
३१४ आपु व्याध को रूप धरि,
३२८ अमिय गारि गारेउ गरल,
३४४ अवसर कौड़ी जो चुके,
३७६ अमर दानि याचक भरहिं,
४५४ अपनो ऐपन निज हथा
४६४ अतुलित महिमा बेद की,
४६७ अनहित भय परहित किये,
४८६ अनसमुझे, अनुसोचनो,
४९२ अपजस जोग की जानकी,
४९९ अधिकारी वस औसरा,
५४१ अनुचित उचित विचार,
५५० अशुभ भेष भूषण धरे,

आ

५९ आपु आपने ते अधिक,
३०६ आलवाल मुकुता हलनि,
३१४ आपु व्याध को रूपधरि,
३५७ आपु आप कहँ सब भलो,
३६६ आखर जोरि विचारि करू,
५३४ आनन छोड़ो साथ जब,

उ

२८३ उपलि बरषि पाहन पपद,
३२१ उष्णकाल अरु देहखिन,
३५२ उत्तम मध्यम नीच गति,
५३५ उरबी परि कुलहीन होइ,

ऊ

४५७ अगुन शगुन वि अज,

ए

६ एक छत्र एक मुकुट मनि,
२७७ एक भरोसो एक बल,
३१३ उरबी परि कुलहीन होइ,

औ

२४१ और करै अपराध कोउ,

अं

२५२ अङ्क अगुन आखर सगुन,
३०३ अण्ड फोरि कियो चेटुवा,

क

१४ काली विधि बम्नि तनु तजै,
७१ करिहौ कोसलनाथ तजि,
७८ कै तोहि लागिहैं रामप्रिय,
९९ करमठ कठमलिया कहैं,
११२ कियो सुसेवक धरम कपि,
१२६ कहँहिं विमल मति सन्त,

१५६ कहा विभीषन लै मिलो,
१६१ कुलिसहु चाहि कठोर अति,
१६५ कहा विभीषन लै मिलो,
१७१ कृपिन देइ पाइय परो,
१७७ काल करम गुन दोष जग,
१८६ कोपे सोच न पोच कर,
२१२ कौसल्या कल्यान मयि,
२२८ केवट निसिचर विहँगमृग,
२४४ केहि मग प्रविसिंत,
२४६ करम खरी कर,
२५० कहिबे कहँ रसना रची,
२६० करत न समुझत,
२६६ काम क्रोध लोभादि मद,
२६७ कोह न पावक जरि सके,
२७० काम क्रोध मद लोभरत,
२७३ कहत कठिन, समुझत कठिन
२७५ कोउ विस्राम कि पाव,
२८१ को को न ज्यायो जगत में
३२२ कुदिन हितू सो हित सुदिन,
३२३ कै लघु कै बड़ मीत भल,
३२५ कहिय कठिन कृत कोमलहु,
३३५ कुसधन सखहिं न देवदुख,
३६७ करु विचारु, चलु सुपथ,
३८१ कै निदरहु कै आदरहु,
४१० कपट सार सूची सहस,
४१६ कलह न जानव छोट करि,
४२८ कौरव पाण्डव जानिये,
४५१ कै बुझिबो कै जूझिबो,
४८७ कूप खनत मन्दिर जरत,
५०३ कारन ते कारज कठिन,
५०४ काल बिलोकत ईस रुख,
५१४ कण्टक करि करि परत गिरि,
५१५ काल तोपची, तुपक महि,
५१८ करके कर, मन के मनहिं,
५३७ कलि कुचालि सुभ मति हरनि
५६२ कलियुग सम जुग आन नहिं
५६५ कुपथ कुतर्क कुचालि कलि,
५६६ कलि पाषण्ड प्रचारि,
५७२ का भाषा का संस्कृत,

ख

१४७ खेलत बालक ब्याल सँग,
१८४ खेती, बनि, विद्या, बनिज,
२७४ खल प्रबोध, जग सोध,
३६८ खल उपकार विकारफल,
४४२ खग, मृग, मीत, पुनीतकिय,

ग

१८६ गौतमतियगति सुरतिकरि,
२७१ ग्रह गृहीत सुनि बात बस,
३०० गरज आपनी सबन को,
३५६ गुरु संगति गुरु होइ सो,
३६४ ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट,
४५३ गठिबँध ते परतीत बड़ि,
५२६ बोलीवान सुमन्तसर,
५३८ गोखग, खेखग, वारि खग,
५५६ गोंड़ गवार नृपाल महि,

घ

१०६ घर घर मांगे टूक पुनि,
२५८ घरकीन्हे घर जात है,

च

४ चित्रकूट सब दिन बसत,
१५१ चारि चहत मान अगम,
२७६ चातक तुलसी के मते,
२८१ चढ़त न चातक चित कबहुँ,
२८३ चातक जीवन-दायक हि,
३०१ चरग चङ्गुगत चातक हि,
३३३ चरन चोंच लोचन रँगौ,
४६६ चलब नीत मग,
५१३ चढ़े बघूरे चङ्ग ज्यौं,
५४६ चोर, चतुर, बटमार, नट,

छ

४३८ छिद्यौ न तरुनि कटाच्छसर,

ज

३७ जलथलनभगतिअमित अति
५६ ज्यों जग बैरी मीन को,
६१ जे जन रूखे विषय रस,
८४ जैसो तैसो रावरो केवल, कोसल पाल,
६१ जौं जगदीस तो अति भलो,
६८ जाने जानन जोइये,
१०३ जाय कहब करतूति बिनु,
१२८ जो चेतन कहँ जड़ करइ,
१३६ जरउसो सम्पत्ति सदनसुख,
१४२ जहि शरीर रति राम सों,
१४३ जानि राम सेवा सरस,
१५६ जाति हीन, अघजनम महि,
१६३ जो संगति शिव रावनहिं,
२०३ जानी राम, न कहि सके,
२२१ जीवन मरन सुनाम,
२३८ जरत सकल सुरबृन्द,
२४६ जीव सीव सम सुख सयन,
२६८ जनम पत्रिका बरति कै,
२७८ जौ घन बरषै समय सिर,
२६४ जीव चराचर जँह लगे,
३०५ जियत न नाई नारि,
३०७ जाचै बारह मास,
३१६ जरत तुहिन, लखिवनजवन,
३४८ जलचर थलचर गगनचर,
३६५ जनम जोग में जानियत,
३६६ जड़ चेतन गुन दोषमय,
३७१ जो जो जेहिजेहि रसमगन,
४०० जोंक सूधिमन कुटिल गति,
४०५ जासु भरोसे सोइये,
४३० जो परिपाँय मनाइये,
४३१ जूझे ते भल बूझिवो,
४३२ जा रिपु सों हारेहु हँसी,
४३३ जो मधु मरै न मारिये,
४७२ जाय जोग जग छेम बिनु,
४८६ जो सुनि समुझि अनीत रत,
५५१ जे अपकारी चारि,

ठ

२८२ ठाढ़ो द्वार न दै सकैं,

ड

२६५ डोलत विपुल विहँग वन,

त

२१ तुलसी हठिहठि कहत नित,
३६ तुलसी प्रीति प्रतीत सों,
४८ तुलसी रामहिं आपु ते,
४६ तुलसी जाके होयगी,
५५ तुलसी स्वारथ रामहित,
६३ तुलसी जो पै राम सों
६४ तुलसी श्री रघुबीर तजि
६५ तुलसी परिहरि हरि हरहिं,
६७ तुलसी हरि अपमान ते,
६८ तुलसी रामहिं परि हरे,
७५ तुलसी उद्यम करम जुग,
७६ तुलसी दुइ महँ एक ही,
८३ तुलसी जौ लौं बिषय की,
८८ तुलसी सुखी जो राम सों,
६४ तुलसी ममता राम सों,
६६ तुलसी राम कृपालु सों,
१०६ तुलसी राम जो आदर्‌यो,
१०७ तनु विचित्र कायर वचन,
११० तुलसी राम सु दीठि तें,
१११ तुलसी रामहुँ ते अधिक,
१३१ तब लगि कुशल नजीव कहँ
१४४ तुलसी रघुवर सेवकहिं,
१४८ तुलसी दिन भल साहु कह,
१४६ तुलसी जाने सुनि समुझि,
१६० तुलसी कोसल पाल सों,
१६७ तेहि समाज कियो कठिनपन,
१६० तुलसी बिलसतनखत निसि,
१६८ तिल पर राखेउ सकल जग
२१५ तुलसी केवल कामतरु,
२१६ तुलसी जान्यो दशरथ हि,
२३४ तुलसी तनुसर, सुख जलज
२४८ तुलसी देखत अनुभवत,
२५८ तुलसी अद्भुत देवता,
२६४ ताततीन अति प्रबलखल,
२७२ ताहि कि सम्पति सगुनसुभ
२८६ तुलसी चातक ही फबै,
२८७ तुलसी चातक मांगनो,
२८८ तीनि लोक तिहुँकाल जस,
३०४ तुलसी चातक देत सिख,
३०८ तुलसी के मत चातक हिं,
३१५ तुलसीमनिनिजदुतिफनिहिं
३१६ तुलसी मिटै न मरि मिटेहु,
३२१ तुलसी जप तप नेम व्रत,
३२६ तुलसी वैर सनेह दोउ,
३४६ तुलसी जग जीवन अहित,
३५५ तुलसी अपनो आचरन,
३५८ तुलसी भलो सुसंगते,
३६० तुलसी गुरुलघुता लहत,
३६१ तुलसी किये कुसंग थिति
३८४ तुलसी देवल देव को.

३८६ तुलसी जे कीरति चहहिं,
३६० तनु, गुन, धन, महिमा, धरम,
३६६ तुलसी खलबानी मधुर,
४४६ तुलसी मीठी अमी ते,
४४७ तुलसी असमय के सखा,
४४६ तुलसी तोरहु के चले,
४५० तुलसी जस भवितव्यता,
४७१ तुलसी सो समरथ सुमति,
४७६ तूठहि निज रुचि काज करि,
४८१ तुलसो स्वारथ सामुहो,
४९३ तुलसी जु पै गुमान को,
४६५ तुलसी भेड़ी की धँसनि,
४६७ तुलसी निरभय होत नर,
४६८ तुलसी तोरत तीर तरु,
५२६ तुलसी भल वट तरुवढ़त,
५३१ तुलसी निज करतूत बिन,
५३३ तुलसी दान जो देत हैं,
५३६ तुलसी संगति पोच की,
५४४ तुलसी तृनजल-कूल को,
५६४ तुलसी पावस के समय,
५६६ तुलसी सहित सनेह नित,

द

२४ दम्पति-रस, रसना दसन,
१७२ दण्डक बन पावन करन,
१८५ दण्ड जतिन कर भेद जहँ,
२१८ दशरथ नाम सुकाम तरु,
२२७ दशरथ ते दशगुनि भगति,
२५७ दिये पीठ पाछे लगै,
२६६ दीपशिखा सम युवति जन,
३१७ देउ आपने हाथ जल,
४१४ देस काल करता करम,
४७० दोहा चारु विचारु चलु,
४७७ दीरघ रोगी दारिदी,
५४८ दम्भ सहित कलि धरम सब

ध

२३० धीर वीर रघुवीर प्रिय,
४७६ धाय लगे लोहा ललकि,
५१२ धरनि धेनु चारितुभरत,
५५७ धातुवाद निरुपाधि वर,

न

१३ नाम गरीब निवाज को,
७७ निज दूषन, गुनराम के,
८० निगमअगम साहब सुगम,
८६ नातो नाते राम के,
१२० नाम ललित लीलाललित,
१२४ निज इच्छा प्रभु अवतरै,
१५५ नीच मीचु लै जाइ जो,
२११ नाम शत्रु सूदन सुभग,
२६० नहिं जाचत, नहि संग्रही,
३३७ नीच निचाई, नहिं तजै,
३५४ नीच निरादर ही सुखद,
३७७ नीच निरावहिं निरस तरु,
३८५ निज गुन घटत न नागनग,
४०१ नीच गुड़ी ज्यों जानिबो,
४६० नकुल सुदरसन दरसनी,
४७५ नगर, नारि, भोजन, सचिव,
४८८ निडर ईश तें वीस कै,

प

३ पञ्चवटी वट विटप तरु,
५ पय अहार फल खाइ जपु,
२३ प्रीति प्रतीति सुरीति सों,
५० प्रभु तरु तर, कपि डार पर,
८६ प्रीति राम सों नीति पथ,
६२ परहुँनरक,फलचारि, सिसु,
१२५ परमानन्द, कृपायतन,
१४६ पुन्य पाप जस अजस के,

१९२ प्रभु गुन गन भूषन वसन,
२२२ प्रभुहि विलोकत गोदगत,
२४२ प्रेम सरीर, प्रपञ्च रुज,
२५३ परमारथ, पहिचानि मति,
२८४ पवि, पाहन, दामिन, गरज,
२८६ प्रीति पपीहा पयद की,
२९८ प्रेम न परखिय परुषपन,
३४३ पियहिसुमनरसअलिविटप
३५३ पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ,
३७० पाट कीट तें होइ,
३७५ प्रभु सन्मुख भय नीच नर,
३७६ प्रभु समीप गत सुजन जन,
३८८ परसुख सम्पतिदेखिसुनि,
४०३ पेरत कोल्हू मेलि तिल,
४०७ पर द्रोही परदार; रत,
४१९ पाँडु सुवन की सदसि ते,
४३७ पेट न फूलत विनु कहे,
४५२ पात पात को सींचिवो,
४६८ पुरुषारथ, पूरव करम,
४७८ पाही खेती, लगन वट,
५०१ प्रभु तें प्रभु गनदुखद लखि,
५१० पाके, पकये विटप दल,
५१७ प्रीत रामपद, नीति रत,
५२७ प्रभु समीप छोटो बड़े,
५४६ पात पात को सीचवो,
५४७ प्रीति सगाई सकल गुन,
५६१ प्रगट चारि पद धरम के,
५७० पुरुषारथ स्वारथ सकल,

फ

४९४ फूलै फरै न वेंत,
५६० फोरहिं सिल लोढ़ा सदनि,

व

२२ विगरी जनम अनेक की,
२५ वरषा ऋतु रघुपति भगति,
३१ ब्रह्मराम ते नाम वड़,
४६ वारक सुमिरत तोहिं,
७२ विन्ध न इन्धन पाइये,
७३ वरषा को गोवर भयो,
१०० वाधक सव सव के भये,
१०२ विलग विलग सुख संग दुख
११७ वालविभूषन वसन वर,
१२२ वालक कोसल पाल के,
१२६ वारि मथे घृत होइ वरु,
१३२ विनु सतसङ्ग न हरि कथा
१३२ विनु विश्वाश भगति नहिं,
१३७ विनु गुरु होइ कि ज्ञान,
१५३ वेष विसद बोलनि मधुर,
१५४ वचन वेष तें जो वनै,
१५७ वन्धु वधूरत कहि कियो,
१५८ वालि वली वल,सालि दलि,
१६२ वलकल भूषन, फल असन,
१६६ वैरि वन्धु निसिचर अधम,
१७३ विन ही ऋतु तरुवर फलत,
२२३ विग्मत, करमत, भगत मुनि,
२३६ वाहु विटप, सुखविहँग छलु,

२३६ बासर ढासनि के ढका,
२६३ ब्याधि रहेउ संसार महँ,
२८२ बरषि परुष पाहन पयद,
२६७ बास, वेष, बोलनि, चलनि,
३०२ बध्यो बधिक पस्यो पुन्यजल
३१३ पिवि रसना तनु स्याम है,
३४६ बलि मिस देखे देवता,
३५६ बुधसो बिबेकी बिमलमति,
३६२ बसि कुसङ्ग चह सुजनता,
३७४ बिरुचि परखियो सुजनजन
३९८ बरषि बिस्व हरषित करत,
३६३ बड़े बिबुध दरबार तें,
३९४ बिनु प्रपञ्च छल भीख भलि,
३६६ बिबुध काज बावन,
४०८ बचन बेष क्यों जानिये,
४११ बचन बिचार अचार, तन,
४१३ बढ़े पाप बाढ़े किये,
४२६ बोल न मोटे मारिये,
४३४ बैर मूलहर हित बचन,
४४० बचन कहे अभिमान के,
४६५ बुध किसान सरबेद निज,
४७३ बढ़ि प्रतीत गठिबँध ते,
४८२ बिनु आँखिन की पानहीं;
४६० बहु मुख, बहु रूचि बहु बचन
५०२ ब्यालहुते बिकराल बड़,
५०८ बरषत हरषत लोग सब,
५३२ बड़ो गहे ते होत बड़,
५५२ ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर,
५५३ बादहिं शूद्र द्विजन सन,
५६८ बीज राम गुन गन,

भ

१२३ भगत हेतु भगवान प्रभु,
१२३ भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि,
१३५ भावबश्य भगवान,
१८० भव भुअङ्ग, तुलसी, नकुल,
२०५ भरतहि होहिं न राजमद,
२०६ भरत स्याम तन, राम सम,
२३५ भुजतरु कोटर रोग अहि,
३३८ भलो भलाई पै लहै,
३८७ भलो कहे बिन जानेहु,
३६५ भलो भले सों छल किये,
४०२ भरदर बरसत कोस सत,
४२२ भरूहाये नट भाँट के,
४२४ भागे भल आड़ेहु भलो,
४६२ भरत, शत्रुसूदन, लषन,
५०६ भलेहु चलत पथ पोचभय,
५१६ भूमि रूचिर रावन सभा,

म

१५ मीठो अरू कठवत भरो,
१८ मोर, मोर, सब कहँ कहसि
१७६ मुए जि आए भालु कपि,
१७६ मोसम दीनन दीन हित;
१८७ मुकुर निरखि मुख रामभ्रू
२०० मायाजीव, सुभाव, गुन,

२१६ मातु सकल सानुज भरत,
२२४ मुप भरत मरिहैं सकल,
२२५ मुपमुकुत जीवन मुकुत,
२२६ मञ्जुल मङ्गल मोद मय;
२३७ मुकुति जनम महि जानि,
२८५ मान राखिवो माँगिवो,
२९६ मुख मीठे मानस मलिन,
३१८ मकर, उरग, दादुर, कमठ,
३२४ मान्य मीत सों सुख चहै,
३३१ माखी, काक, उलूक, वक.
३३४ मिलै जो सरलहि सरल है,
३३६ मिथ्या माहुर सज्जनहिं,
३५१ मनि भाजन मधु,
४०६ मार खोज लै सौंह करि,
४३६ मधुर बचन कटु बोलिवो,
४८३ मूरख को उपदेसिवो,
४९४ माँगि मधुकरी खात ते,
५०७ माली भानु किसान सम,
५२२ मुखिया मुख सो चाहिये,
५२४ मंत्री, गुरु अरु वैद जो,
५४० मातु पिता गुरुस्वामिसिख,
५७१ मनिमय दोहा दीप जहँ,
५७३ मनि मानिक महँगे किये,

य

२६ यथा भूमि सब बीज,
६२ यथा लाभ सन्तोष सुख,
५०५ यथा अमल पावन पवन,

र

१ राम वाम दिसि जानकी,
६ राम नाम मनि दीप धरु,
१० राम नाम को अङ्क है,
११ राम नाम को कल्पतरु,
१६ राम नाम सुमिरत सुयश,
२० राम नाम अवलम्ब विनु,
२६ राम नाम नर केसरी,
२७ राम नाम कलि काम तरु,
२८ राम नाम कलि काम तरु,
३३ राम नाम पर राम ते,
३८ राम भरो सो, रामबल,
३९ राम नाम रति राम गति,
४० रसना साँपिनि बदन बिल,
४२ रामहिं सुमिरत रन भिरत,
४५ रहै न जल भरि पूरि,
५१ रे मन! सब सों निरस ह्वै,
५७ रामप्रेम विनु दूवरो,
५८ राम सनेही रामगति,
६९ रामदूरि माया बढ़ति,
८२ राम प्रेम पथ पेषिये'
९५ रामहिं डरु, करु राम सों,
१०५ राम निकाई रावरी,
११९ राज अजिर राजत रुचिर,
१२१ राम भरत लछिमन ललित,
१३८ रामचन्द्र के भजन विनु,
१४५ रावन रिपु के दासतें'
१७८ रोग निकर तनु, जरठ पुनि,

१८२ राम राज राजत सकल,
१८३ राम राज संतोष सुख,
१९१ रघुपति कीरति कामिनी,
१९३ रामचरित राकेस कर,
१९४ रघुबर कीरति सज्जननि,
१९५ रामकथा मन्दाकिनी,
१९६ राम ! स्वरूप तुम्हार,
२०८ राम सराहे भरत उठि,
२२० राम बिरह दसरथ मरन,
२२६ रघुबर विकल बिहंग लखि
२८० रटत रटत रसना लटी,
३२७ रुचै मांगनेहि मांगिवो,
३३३ रामकृपा तुलसी सुलभ,
३८६ राकापति षोड़ष उवहिं,
४१६ राज करत बिनु काज ही,
४१७ राज करत बिनु काज ही,
४२७ रोष क्षमा के दोष गुन,
४३५ रोष न रसना खोलिये,
४५८ रवि हरदिसि गुनरसनयन
४६३ राम लषन कौशिक सहित,
४८५ रीझि आपनी बूझि पर,
५११ रीझि खाझि गुरु देतसिख,

ल

३४ लङ्क विभीषन राज कपि,
१०४ लोग मगन सब जोग ही,
१०८ लहै न फूटी कौड़िहू,
१३० लव निमेष परमान युग,
२१० ललित लषन मूरति मधुर,
२६५ लोभ के इच्छा दम्भ बल,
२७३ लोक वेद हू लौं दगो,
३८० लखि गयन्द लै चलत भजि
४२३ लाकरीन फूटी लहै,
४४३ लखै अघानो भूख ज्यों,
४४४ लाभ समय को पालिबो,
४९१ लोगनि भलो मनाव जो,
४९६ लही आंखि कब आंधरे,
५२६ लकड़ी डौआ करछुली,

श

३२ शवरी गीध सुसेवकनि,
४४ श्रवै न सलिल सनेह,
१०१ शङ्कर प्रिय मम द्रोही,
११६ शुद्ध सच्चिदानन्द मय,
१२८ श्री रघुवीर प्रताप ते,
२६२ श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि,
४५६ श्रुतिगुन, करगुन, पुजुग, मृग
५२० शत्रु सयानो सलिल ज्यों,
५५५ श्रुति सम्मत हरि भक्त पथ,
५६३ श्रवन घटहु पुनि दृग घटहु,

ष

२५५ षरिसा, खरी, कपूर सब,

स

२ सीता लषन समेत प्रभु,
८ सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं,
१७ स्वारथ सुख सपनेहु अगम

३० सकल कामना हीन जो,
४७ साहिब होत सरोष,
५३ स्वारथ सीताराम सों
५४ स्वारथ परमारथ रहित,
६६ सेये सीताराम नहिं,
७० साहिब सीतानाथ सों।
७४ सबहिसमरथहिंसुखद प्रिय,
८१ सन्मुख आवत पथिक ज्यों,
८७ सत्य वचन, मानस विमल,
९० सब साधन को एक फल,
९७ सुमिरन सेवाराम सों,
१४० सेइ साधु, गुरु समुझि सिख
१४१ सबै कहावत राम के,
१५० सेवा सील सनेह बस,
१५२ सूधे मन सूधे वचन,
१६८ सभा सभासद निरखि,
१७० सुख जीव न सब कोउ चहत
१७४ सिला सुतिय भइ गिरितरे,
१७५ सिला साप मोचन चरन,
१८८ सहसनाम मुनिभनितसुनि
१९६ स्यामसुरभिपयबिसद, अति
२०२ सीय सुमित्रा सुवन गति,
२०४ सवविधिसमरथ सकलकह,
२०६ सम्पति चकई भरत चक,
२०७ सघन चोर मग मुदित मन,
२१३ सुमिर सुमित्रा नाम जग,
२१४ सीता चरन प्रनाम करि,
२१७ सहज सरल रघुवर वचन,
२३१ सुखमुदमङ्गल कुमुदविधु,
२३२ सकल काज सुभसमउ भल
२३३ सूर सिरोमनि साहसी,
२४५ सुख सागर सुख नींदबस,
२४७ सपने होइ भिखारि नृप,
२५४ सीस उघारन किन कहेउ,
२५६ सोई सेंवर तेइ सुआ,
२७६ सुरनर मुनि कोउ नाहिं,
२९२ साधन सांसति सब सहत,
३०६ सुनरे तुलसी दास,
३२० सुलभ प्रीत प्रीतम सबै,
३२९ सदा न जे सुमरत रहहिं,
३३६ सङ्ग सरल कुटिलहि भये,
३४० सन्त सङ्ग अपवर्ग कर,
३४१ सुकृत न सुकृती परिहरै,
३४२ सुजन सुतरु वन ऊख,
३४७ सुनिय सुधा देखिय गरल,
३५० सुजन कहत भल पोच पथ
३७२ सम प्रकाश तम पाख दुहुँ,
३९१ सासु, ससुर, गुरु मातुपितु
३९२ सठसहिं साँसति पतिलहत
३९७ सरल वक्र गति पञ्चग्रह,
४०४ सहवासी काचो गिलहिं,
४१२ सारदूल को स्वांग करि,
४१५ साहस ही कै कोप बस,
४१८ सभासुयोधन की सकुनि,

४२१ सहज सुहृद गुरुस्वामिसिख,
४२५ सुमति बिचारहिं परिहरि,
४३६ सूर समर करनी करहिं,
४४५ सिंधु तरन कपि गिरि हरन,
४४८ समरथ कोउ न राम सों,
४५६ ससि, सर, नव, दुइ, छ, दस, गुन,
४६१ सुधा, साधु, सुरतरु सुमन,
४६६ सहि कुबोल साँसति सकल
४७४ सिष्य, सखा, सेवक सचिव
४८० सोचिय गृही जो मोहबस,
५०६ सुधा सुनाज, कुनाज फल,
५२३ सेवक कर पद नयन से,
५२८ साहब ते सेवक बड़ो,
५३० सधन, सगुन सधरम सगन
५३६ साधन समय सुसिद्धि लहि,
५४२ सहज अपावनि नारि,
५४३ सरनागत कहँ जे तजहिं,
५५४ साखी सबदी दोहरा,
५५६ सकल धरम बिपरीत कलि,
५५८ सुरसदननि, तीरथ, पुरिन,

ह

७ हिय निर्गुन नयननि्ह सगुन,
१९ हम लखि लखहि हमार लखि,
३५ हरन अमङ्गल अघ अखिल,
४१ हिय फाटहु फूटहु नयन,
४३ हृदय सो कुलिस समान,
५२ हरो चरहिं तापहिं बरत,
८५ है तुलसी के एक गुन,
९३ हित सों हित रति राम सों,
११५ हिरन्याक्ष भ्राता सहित,
१२७ हरिमाया कृत दोष गुन,
१८१ हौंहु कहावत सब कहत,
९७१ हरिहर जस सुर नर गिरहु,
२०७ हित उदास रघुबर बिरह,
२४३ हम हमार आचार बड़,
२९६ होइ न चातक पातकी,
३३० हित पुनीत सब स्वारथहि,
३३२ हृदय कपट; बर बेष धरि
३६८ होइ भले के अनभलो,
४०६ हँसनि, मिलनि, बोलनि, मधु
४२० हित पर बढ़ै बिरोध जब,

त्र

१६९ त्राहि तीन कह्यौ द्रोपदी,
५०० त्रिविध एकविध प्रभु अनुराग

ज्ञ

११४ ज्ञान गिरा गोतीत अज,
२५१ ज्ञान कहै अज्ञान बिनु,
२६१ ज्ञानी, तापस, सूर, कवि,
३४५ ज्ञान अनभले को सबहि,

प्रकाशक के अतिरिक्त इस पुस्तक की प्राप्ति के स्थान।

१

बाबू हरनारायण जी
अहियापुर आटाचक्की
इलाहाबाद।

२

बाबू भगवती सिंह जी
शार्टर डाक
रानी का बाजार लखनऊ।

३

बाबू श्रीनारायण जी
मैनेजर उन्नाव कमर्शियल बैंक लि०
मनीराम की बगिया कानपुर।

४

पं० कालीशरण त्रिपाठी
मु० चिलौली पो० टेढ़ा जि० उन्नाव।

॥ ॐ नमो भगवते श्री राम चन्द्राय ॥

दोहावली

मंगला चरण

राम वाम-दिशि जानकी, लषन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यान-मय, सुर-तरु तुलसी तोर ॥१॥

→ कौमुदी ←

श्री सीता-राम-चरण से चित्रित पवित्र चित्रकूट की चोटी पर विराजमान् भगवान् श्री रामचन्द्र जी का पावन ध्यान वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण से तुलसीदास जी करते हैं। जिनकी बाईं ओर श्री जानकी जी, जिनकी दाहिनी ओर श्री लक्ष्मण जी हैं, ऐसे श्री राम जी का ध्यान सकल कल्याण करने वाला है। अपने लिए भक्त-वर श्री तुलसीदास जी कहते हैं, कि हे तुलसी ! तुम्हारे लिए तो यह श्री सीता-लक्ष्मण-युक्त श्री राम जी का स्मरण कल्पवृक्ष स्वरूप है।

वह भी कैसा धर्म, अर्थ काम के अतिरिक्त त्रिविधदुःखों से निवृत्ति कराने वाला मोक्ष का दाता है।

ध्यान सुर-तरु के समान है, ऐसा कहने से उपमालङ्कार हुआ। जैसे—

उपमायत्र सादृश्यं, लक्ष्मीरुल्लसतिद्वयोः ।
हंसीवकृष्णते कीर्तिः, स्वर्गंगामव गाहते ॥

(कुवलयानन्द)

जहाँ पर उपमेय के सदृश उपमा होती है, और उपमा उपमेय की शोभा तुल्य होती है, वहाँ उपमालङ्कार होता है। यहाँ ध्यान और कल्प-तरु दोनों कल्याणमय हैं। एवम् ध्यान कल्पतरु है ऐसा कहने से रूपकालङ्कार हुआ। जैसे—

(२) "रूपकं रूपिता रोपाद् विषये निरपह्नवे"।

(सा० द०)

अथवा—"रूपयति" उपमानोपमेययोरभेद रूपेण एकतां नयति रूपकम्।

उपमान और उपमेय को अभेदरूप से जो एकमें मिलाता है, उसे रूपकालङ्कार कहते हैं। यहाँ उपमान ध्यान को उपमेयँ कल्प-तरु से कल्याण-मय के कारण एकता की है। तीसरा सामान्यालङ्कार भी यहाँ है। यथा—

सामान्यं प्रकृतिस्यान्यतादात्म्यं सदृशैर्गुणैः।

उपमान को उपमेय के तुल्य-गुणों से बरोबर करने से सामान्यालङ्कार होता है। यहाँ भी दोनों कल्याण मय हैं।

वैदेही यस्य वामे जयति जय जनिर्दक्षिणे लक्ष्मणोऽपि

सीता लषन समेत प्रभु, सोहत तुलसी दास।
हरषत सुर, बरषत सुमन, सगुन सुमंगल वास॥२॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि जिस समय सगुण-स्वरूप प्रभु श्री रामजी श्री सीताजी तथा श्री लक्ष्मण जीसे संयुक्त होकर शोभित होते हैं, उस समय देवतालोग प्रसन्न होते हैं। और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। तब अमङ्गल अर्थात् दुःख कहाँ? प्रसन्नता तो अवश्यही होगी।

नोट—(१) प्रकृतिगोपन ह्नुन्यम् अपह्नवः तत्शून्ये निरपह्नवे।

पञ्चवटी-वट-विटप तरु, सीता लखन समेत।
सोहत तुलसीदास प्रभु, सकल सुमंगल देत ॥३॥

पञ्चवटी के (विटप[१]) विस्तृत बरगद वृक्ष के नीचे श्री सीता और श्री लक्ष्मण जी के समेत शोभायमान श्री राम जी सम्पूर्ण प्राणियों को अच्छी भांति सुख देते हैं। कवि के हृदय की ध्वनि यह है, कि हे मन। जहाँ पर नित्यही इस तरह सुख बंटता है, वहाँ तूभी चल। इसी बात को आगे के दोहे से स्पष्ट करते हैं।

यहाँ टकार सकार की अधिकता से छेकानुप्रास है यथा—

छेको व्यञ्जन संघस्य सकृत् साम्य मनेकधा।

अर्थात् व्यञ्जन समूह को अनेक वार एक तरह करने से छेकानुप्रास होता है। तथा टकार सकार की अधिकता से वृत्यनुप्रास भी होता है।

चित्र कूट सब दिन बसत, प्रभु सिय लषन समेत।
राम नाम जप जापकहिं, तुलसी अभिमत देत ॥४॥

भक्तश्रेष्ठ तुलसीदास जी कहते हैं, कि चित्रकूट पर्वत पर श्री सीता जी तथा श्री लक्ष्मण जी के साथ प्रभु श्री राम जी सदा निवास करते हैं। और नाम जपने वाले को अभीष्ट फल देते हैं। यह बात भी गोस्वामी जी ने अपने अनुभव की कहीः क्योंकि इनको वहाँ पर कराल कलिकाल में भी श्री राम जी के दर्शन हुए थे।

२-(चित्रकूट १) चित्तरूपी मकान में अन्तर्यामी रूप से प्रभु (श्री राम जी) सीता स्वरूपिणी बुद्धि और लक्ष्मण रूप अहङ्कार के साथ सदा निवास करते हैं। वे निज नाम के जपने वाले को मन वाञ्छित फल देते हैं। यथा रामायण में—

१ विस्तारो विटपो[स्त्रियाम्]।

राम नाम सुख मंगल दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

१-चित्रकूट—(चित्तरूपी मकान) यथा रामायणे—

प्राण प्राण के, जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

एवम् प्राण प्राणके, जीव के जिय, सुख के सुख, राम।

यहाँ स्वाभावोक्ति अलङ्कार है। यथा—

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्यवर्णनम्।
कुरँगे रुत्तरँगाक्षैः स्तब्ध कर्णौ रुदीक्ष्यते॥

प्रकृति इत्यादि में स्थित स्वभाव के वर्णन को स्वभावोक्ति कहते हैं। जैसे, आंख खोले कान उठाये हरिण देखते हैं।

पय अन्हाय, फल खाय, जपु, राम नाम षट मास।
सकल सुमँगल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास॥५॥

सिद्धिप्राप्त तुलसीदास जी कहते हैं, कि अगर तुम मेरी पूर्वोक्ति को नहीं मानते तो (पय) पयस्वणी नदी में स्नान करके और फल खाकर केवल श्री राम जी का नाम जपो। बस सम्पूर्ण सुमङ्गल तथा सारी सिद्धियां अपने हाथ में ही समझो।

यहाँ हेत्वलङ्कार है। यथा—

हेतुर्हेतुमता सार्द्धं वर्णनं हेतुरुच्यते।

कारण हेतुमान् के साथ कार्य के वर्णन करने से हेत्वलङ्कार होता है।

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार॥६॥

तुलसीदास जी कहते हैं, कि यदि (भीतर) अन्तरात्मा (बाहिर) व हजगत् इन दोनों में उजेला चाहते हो तो राम नाम मणि के स्वयं प्रकाशमान दीपक को (जीह) जीभ के दरवाजे की देहरी पर धरो। अर्थात् कंठसे जपो । यह उक्ति भी प्रथम दोहे की सिद्ध के लिए है। अर्थात् बहिर्जगत् में सकल सुमंगल, अन्तर्जगत् में सारी सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी. किन्तु जब छः महीने तक बराबर मन और वाणी से श्री राम जी का नाम जपा जायगा।

यहाँ राम नाम मणि से अज्ञानान्धकार नाश होने के कारण 'फलोत्प्रेक्षा' है। यथा—

'सम्भावना स्यादुत्प्रेक्षा' वस्तुहेतुफलात्मना ।

वस्तु, हेतु, फल, इन तीन रूप से सम्भावना उत्प्रेक्षा कही जाती है

हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन, रसना नाम सुनाम।
मनहुँ पुरट[१] सम्पुट लसत, तुलसी ललित ललाम[२] ॥७॥

भावार्थ। तुलसीदास जी कहते हैं कि हृदय में निर्गुन, नयनों में सगुन, जीभ में श्री राम जी का नाम अर्थात् हृदय में यह हो कि भगवन् आप मन वाणी से भी अगम्य हो, किन्तु भक्तों की रक्षा करने के लिए सगुन अर्थात् सुन्दर लक्षणों से युक्त धनुधारी अनेक नर कर्म करने वाले आँखों के सामने प्राप्त हुए हो। और उसी क्षण जीभ से निकले श्री राम जी का नाम यह तीनों क्रियायें कैसी शोभित होती हैं जैसे सोने के सम्पुट में सुन्दर रत्न, तात्पर्य यह कि शून्य और ज्ञेय पदार्थ का अनुभव कर्त्ता हृदय का ज्ञान है और अप्रत्यक्ष एवम् ज्ञातव्य पदार्थ का अनुभव करने वाली शक्ति है। इन दोनों अर्थात् ज्ञान और भक्तिसे युक्त होकर श्रीराम जीका पवित्र नाम जपो

१ सोना। २ रत्न।

(२) निर्गुन यानी तीनों गुणों से परे श्री सीताराम जी का स्वरूप जिसे कि शतरूपा और मनु ने देखा था हृदय में, तथा प्रत्येक पदार्थ में व्यापक होने के कारण आखों में, यथा वासुदेवःसर्वमिति। जैसे सृष्टि में जो कुछ देख पड़ता है वह सब वासुदेवमय है। और रसना में श्री राम जी का नाम, यह तीनों क्रियायें सोने के सम्पुट में रक्खे हुए रत्न के समान शोभित होती हैं। सम्पुट का रूप रुद्राक्ष की एक गुरिया के दोनों ओर लगे सोने का है इससे रत्न दोनों ओर के सुवर्ण को प्रकाशित करता हुआ आप भी प्रकाशित होता है। यथा रामायणे, अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी।

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं, निर्गुन मनते दूरि।
तुलसी सुमिरहु राम को, नाम सजीवन मूरि ॥८॥

यदि सगुन अर्थात् मूर्तिमान भगवान् के ध्यान में सरस स्नेह नहीं और यदि निर्गुण निराकार मन से परे है। अर्थात् निराकार ईश्वर तक मन नहीं पहुंचता, तो तुलसीदास जी कहते हैं, फिर राम का नाम स्मरण करो। क्योंकि वह सञ्जीवन औषधि की जड़ है। भाव यह कि संसाररूपी भयङ्कर रोगग्रसित काल के मुख में बैठेहुए जन्तु सगुन तथा निर्गुण परमात्मा की ओर न जाकर सांसारिक विषयों में फंसे रहने के कारण मरता और जीता है, अतः उस के उपकार के लिए संजीवनी महौषध श्री राम जी का नाम है।

एक छत्र, इक मुकुट मनि, सब वरनन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, वरन विराजत दोउ ॥९॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री राम जी के नाम के दोनों अक्षर (राम) सम्पूर्ण वर्णों के ऊपर शोभित होते हैं, जैसे कि पहिला रकार छत्र (ॅ) के रूप में दूसरा मकार मणि (ं) के रूप में। भाव यह कि बिना इन दोनों वर्णों के अक्षर समूह की शोभा नहीं, इस

लिये प्रत्येक वार्ता को शोभित करने लिये श्री राम जी का नाम अवश्यम्भावी है, 'श्वाश श्वाश में राम कहु, श्वास वृथा जनि होय, श्वाश बिचारी पाहुना, आवन होय न होय।

(२) यदि वर्ण शब्द से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का बोध किया जाय तो श्री राम जी के नाम का प्रथम वर्ण (र) छत्ररूप से सबकी रक्षा करने वाला है और मणि (ं) रूपसे यावत् सुखों के देने वाला है यथा विनय पत्रिका में गोस्वामी जीं असन वसन पशु वस्तु विविध विधि सब मणि महँ रहे जैसे, इसीलिये श्री राम जी का नाम सब वर्णों के ऊपर है इसके ग्रहण करने का अधिकार सबको सम है। फिर यह दोनों वर्ण सूक्ष्म रूप (व्यापक) होने से जैसे सब वर्णों पर विराजमान हैं वैसे ही पूर्णरूप (सगुण) से भी छत्तीस वर्णों में प्रधान हैं। रामायणे—

'राम नाम शत कोटि महँ लिय महेश जिय जानि'

राम नाम को अंक है, सब साधन हैं शून।
अंक गये कछु हांथ नहिं, अँक रहे दस गून ॥१०॥

श्री राम जी का नाम अंक अर्थात् एक दो तीन की संख्या है शेष सम्पूर्ण साधन कर्मकांड ज्ञानकांडोपसनादि सुन्न हैं, अंक के जाने पर हाथ कुछ नहीं रहता अर्थात् सुन्न (शून्य) रहने से हाथ में कुछ नहीं शून्य से प्रयोजन क्या निकल सकता है और यदि अङ्क रहे तो दसगुना लाभ होता है जैसे एक के दस दो के बीस तीन के तीस इत्यादि।

प्रयोजन यह चाहे कितने ही साधनों के साधन करने वाला साधक क्यों नहो बिना श्री राम जी का नाम लिये कल्याण का भागी नहीं। इसी बात को आगे के दोहे से पुष्ट करते हैं। इस में राम नाम को अङ्क के आरोप से रूपकालङ्कार हुआ।

नाम राम को कल्पतरु, कलि कल्यान निवास ।
जेहि सुमिरत भय भांगते, तुलसी तुलसीदास ॥११॥

कल्याण का स्थान श्री राम जी का नाम कलियुग में कल्पतरु मनोऽभीष्ट फल के देने वाला है यथा 'कलौ तु केवला भक्तिः' कलियुग में केवल भक्ति ही कल्याण कारिणी है अथवा 'कलौ केशव कीर्तनम्' कलि में केशव के नाम की रटना ही मङ्गल कारिणी है।

जिस श्री राम जी के नाम का स्मरण करके तुलसी दास जी भांग जैसी प्रमाद उत्पन्न करने वाली अग्राह्य वस्तु से तुलसी होगये।

भांग से तुलसी की समान तुलसीदास हुये ऐसा कहने से लुप्तोपमालङ्कार हुवा। भांग नेस्वगुण को त्याग कर तुलसी के गुण को ग्रहण किया इसलिये तद्गुणालङ्कार हुआ। जैसे—

तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यदीय गुणग्रहः ।
पद्मरागायते नासा मौक्तिकं ते धरत्विषा ॥

(कुवलयानन्द)

तद्गुन, तजि गुन आपनो, सँगति का गुन लेय ।
वेसर मोती, अधरमिलि, पद्मराग छबि देय ॥

(भाषाभूषण)

कहीं कहीं (भागते) पाठ है वहां ऐसा अर्थ होगा श्री राम जी का नाम कल्पतरु है और कलियुग का निवास है भाग्य से जिसका स्मरण करके जो तुलसी थे वे तुलसीदास होगये अर्थात् जिन्हें पहिले लोग तुलसी तुलसी कह कर पुकारते थे उन्हें अब श्री राम नाम का स्मरण करने के कारण लोग श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ऐसा कहके पुकारते हैं। धन्य है श्री राम नाम की महिमा जो कलिकाल में थोड़े ही परिश्रम से सन्तुष्ट होकर अभीष्ट फल देती है

कहा भी है 'कलियुग केशव हरिगुण गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा। और भी 'हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

राम नाम जपि जीह जन, भये सुकृत सुख सालि।
तुलसी इहां जो आलसी, गयो आजु की कालि॥१२॥

केवल जीह (जीभ) से श्री राम जी का नाम जपकर (लोग) पुण्यमान और सुख से संयुक्त हुये श्री तुलसीदास जी कहते हैं किन्तु संसार में जो नाम लेने में असमर्थ नहीं, आलसी[१] है वह आज गया या कल। अर्थात् उसका जीवन व्यर्थ है और सुकृत तथा सुख से संयुक्त नहीं हो सकता पाप और दुःख से युक्त जन जीभ से श्री राम नाम जपकर सुकृत और सुखसालि हुवा इसलिये यहां परिणामालङ्कार है। यथा—

परिणामः क्रियार्थश्चेद्विषयी विषयात्मना।
प्रसन्नेन दृगब्जेन वीक्षते मदिरेक्षणा॥

(कुवलयानन्द)

विषयी जब विषय से कार्य के साधन करने वाला होता है तब परिणामालङ्कार होता है जैसे मदिरेक्षणा प्रसन्न नयन कमल से देखती है। इसी राम जी के नाम का माहात्म्य बहुत ही भला किसी ने कहा है—

मधुर मधुर मेतन्मंगलं मंगलानाम्,
सकल निगम वल्ली तत्फलं चित् स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतम् श्रद्धया हेलया वा,
स भवति भव पारं रामनामानु भावात्॥

---

१ यः सामर्थ्ये प्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते। शक्ति होने पर भी जो अनुत्साह होता है उसे आलस्य कहते हैं।

अत्यन्त मीठा मंगल को भी मंगल करने वाला सम्पूर्ण वेद-रूपी लता का फल, और चित् स्वरूप श्री राम जी का नाम जिस पुरुष से एक वार भी गाया गया है वह पुरुष श्री राम जी के नाम के प्रताप से भव पार होजाता है।

नाम गरीबनेवाज को-राजदेत, जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं, घुरविनियां की वानि॥१३॥

गरीबनेवाज (गरीव को सवाँरने वाले) श्री राम जी का नाम जापक को अपना भक्त समझ कर राज देता है गोस्वामी जी कहते हैं कि मगर मन घुरविनियां (मुर्गी) की वानि (आदत) नहीं छोड़ता। अर्थात् मुर्गी को कैसा भी सुभक्ष्य पदार्थ क्यों न दिया जाय पर वह घूरे को खोदना नहीं छोड़ती मन जानता है कि श्री राम जी का नाम राज्य के देने वाला है पर उसे नहीं पकड़ता। इसमें दृष्टान्तालङ्कार है यथा।

दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनःप्रतिविंवनम्।

तुल्य धर्म वाली वस्तु के प्रतिविंव को दृष्टान्त कहते हैं, मुर्गी चंचल है सुभक्ष्य नहीं ग्रहण करती मनभी चंचल है वह सुखद की ओर न जाकर दुःखद पदार्थ को ग्रहण करता है।

काशी विधिवसि तनु तजे, हठि तनु तजे प्रयाग।
तुलसी जो फल, सो सुलभ रामनाम अनुराग॥१४॥

काश्यां मरणान्मुक्तिः काशी में मरने से मुक्ति होती है ऐसा समझ के विधि पूर्वक काशी जी में निवास करके शरीर त्यागने से जो फल प्राप्त होता है और तीर्थराज प्रयाग कामक्षेत्र है वहां मरने के समय जो इच्छा होती है वह दूसरे जन्म में अवश्य मिलती है ऐसा जान के प्रयाग में हठ करके अर्थात् त्रिवेणी आदि में बरबस

देह छोड़ने से जो फल मिलता है वह केवल श्री राम जी के नाम की प्रीति सेही सुलभ है तात्पर्य यह कि उन दोनों देशों में जो दुर्लभ फल कष्ट से मिलता है वह श्री राम जी के नाम की प्रीति से आनन्द पूर्वक सुखसे मिलता है यहां सौकर्यातिशयोक्ति अलङ्कार है इससे अधिक सुकर और क्या हो सकता है। अलङ्कार का लक्षण—

वस्तुनां वक्तुमुत्कर्षमसम्भाव्यम् यदुच्यते ।
वदन्त्यतिशयाख्यं तमलंकारं बुधा इति ॥

(वाग्भट्ट भूषण)

असम्भव वस्तु को सुकर करना सौकर्यातिशयालंकार है।

मीठो अरु कठवनि भरो, रौताई अरु खेम।
स्वारथ परमारथ सुलभ, राम नाम के प्रेम ॥१५॥

मीठा और कठवति भरि (बहुत) रौताई (हुकूमत) और कल्याण अर्थात् निःशंक राज्यभोग यथा—स्वारथ और परमारथ श्री राम जी के नाम के प्रेम में सुखसे प्राप्त होता है। अथवा मीठा और बहुत हुवा स्वारथ रौताई और खेम हुवा परमारथ यह परस्पर बिरुद्ध होने पर भी श्री राम जी के नाम के प्रेम से सुलभ है। यहां विपरीतालङ्कार है। यथा—

आयाते हि विरुद्धत्वं यत्र वाक्येनतत्वतः ।
शब्दार्थ कृतमाभाति स विरोधःस्मृतो बुधैः ॥

(वाग्भट्टालङ्कार)

जहां पर शब्द के पठन या श्रवण से विरोध जान पड़े किन्तु पूर्ण वाक्य समझने पर न जान पड़े वहां विरोधालंकार है। दोहे के तीनों पद परस्पर बिरुद्ध हैं। परन्तु चौथा पद मिलाने से बिरोध दूर हो जाता है। वाग्भट्ट के मत से इसी अलंकार को बिरोधाभास भी कहते हैं। यथा—

एष विरोधाभास नाम्नापि प्रसिद्धः ।

इस दोहे में स्वारथ और परमारथ की प्राप्ति श्री राम जी के प्रेम से होती ऐसा कहा है—

करहु कल्पभरि राज तुम मोहिं सुमिरो मन मांहि,
पुनि मम धाम सिधारेहू जहां संत सब जाहिं ।

राम नाम सुमिरत, सुयश-भाजन भये कुजाति ।
कुतरुक सुरपुर राजमग लहत भुवन विख्याति ॥१६॥

श्री राम जी के नाम का स्मरण करते हुये कुजाति अर्थात् व्याध गीध, यवन, किरात, खस, श्वपचादि लोग सुयश के पात्र हुये । स्वर्ग की सड़क के ऊपर लगा हुवा खराब भी वृक्ष भुवन भर में प्रसिद्धि को प्राप्त करता है ।

(२) श्री राम जी का नाम स्मरण करने वाले बुरी जाति के लोग अच्छे यश के पात्र हुये और उनकी (कुतरुक) कहां रोक है अर्थात् कहीं नहीं, वे स्वर्ग की चौड़ी सड़क से जाते हुये भुवन भर में बिख्यात (परमपद) प्राप्त करते हैं । यहां अर्थान्तरन्यासालङ्कार है । यथा वाग्भट्टे—

उक्त सिद्ध्यर्थमन्यार्थ न्यासो व्याप्ति पुरःसरः
कथ्यतेऽर्थान्तरन्यासः—वाग्भट्टालंकार ।

उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात् सामान्यविशेषयोः
हनुमानब्धिमतरद्दुष्करं किं महात्मनाम् ।
गुणवद्वस्तु संसर्गात् याति स्वल्पोऽपि गौरवम्
पुष्पमालानुसंगेन सूत्रं शिरसि धार्यते ॥

—(कुवलयानन्द)

जिसमें कहे हुये वाक्य की सिद्धि के लिये युक्ति पूर्वक अन्य अर्थ का उपयोग किया जाये उसे अर्थान्तरन्यास कहते हैं। वाग्भट्ट, सामान्य और विशेष की उक्ति अर्थान्तरन्यास कही जाती है हनूमान समुद्र को लांघे, महात्मा क्या नहीं कर सकते, गुणवान वस्तु के संसर्ग से छोटा भी गौरव को प्राप्त होता है पुष्प की माला के साथ सूत्र भी शिरमें धारण किया जाता है। कुवलयानन्द। श्री राम जी के नाम के दोनों वर्ण पतितों का उद्धार करने वाले हैं. देखिये पण्डित-राज जगन्नाथ जी क्या कहते हैं।

वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्य सिद्धौषधं
मिथ्याज्ञाननिशा विशाल तमसस्तिग्मांशु बिंबोदयः
क्रूरक्लेशमहीरुहामुरुतरज्वालाजटालः शिखी
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते रामेति वर्णद्वयम्।

पाप पर्वत को वज्र, संसार सम्बन्धी महान रोग की औषध, मिथ्याज्ञान रूपी निशा के विस्तृत अन्धकार को सूर्य के बिंब का उदय, प्रचंड क्लेशरूपी वृक्ष को अत्युग्र ज्वाला से प्रज्वलित अग्नि मोक्ष के मकान का दरवाजा, ऐसे यह 'राम' दोनों वर्ण विजय को प्राप्त हों।

स्वारथ सुख सपनेहु अगम, परमारथ न प्रवेश।
राम नाम सुमिरत मिटहि, तुलसी कठिन कलेश॥१७

श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसको स्वार्थ वहिर्जगत का सुख सपने में भी नहीं मिलता, जिसका परमार्थ मोक्षसुख में प्रवेश नहीं उसका कठिन कलेश आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक त्रिताप श्री राम जी के नाम का स्मरण करने से मिट जाता है। श्री राम नाम का स्मरण करने के कारण कठिन कलेश मिटता है अतः हेत्वलंकार है काव्यलिङ्गालङ्कार भी है। यथा—

समर्थनीयस्यार्थस्य कतव्यलिंगं समर्थनम् ।
जितोऽसि मन्द कन्दर्प मच्चितेऽस्ति त्रिलोचनः ॥

समर्थनीय अर्थ का समर्थन करना काव्यलिङ्ग हैं समर्थनीय अर्थ कठिन कलेश के प्रतिवन्धक दोहे के पूर्वोक्ति दो पद थे किन्तु वह श्री राम नाम स्मरण से मिटता है ।

मोर मोर, सबकहँ कहसि, तू को, कहु निज नाम ।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥ १८

श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि तुम सबको अपना अपना कहते हो, किन्तु यहतो बताओ तुम कौन हो, अर्थात् जब अपनापन सिद्ध करलोगे तभी तो किसी भी पदार्थ पर अपना अधिकार जमावोगे क्या तुम कुछ बिना हुये ही स्वामी बनना चाहते हो, सो कैसे, इसलिये इस भेद को कि हम कौन हैं किसी से सुनकर और स्वयं समझ कर यातो चुप होजावो अर्थात् ज्ञान प्राप्तकर अन्तरात्मा में लीन हो जावो, नहीं तो श्री राम जी का नाम जपो ।

तात्पर्य यह कि बिना अहंता और ममता नाश के भगवत् पद की प्राप्ति असम्भव है, इसके दो ही मार्ग हैं एकतो ज्ञान दूसरा भक्ति, यदि ज्ञान मार्ग प्रिय है तो गुरु और शास्त्रादिकों के उपदेश सुनकर और 'सोऽहमस्मि, इति वृत्ति अखंडा, का अवलम्बन करके मौनावलम्बन करो, नहीं तो श्री सीताराम जी के परम पावन नाम का आश्रय लो ।

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच ॥ १९

अलख अलख पुकारते आते हुए किसी साधु से श्री गोस्वामी जी ने कहा कि तेरा-जो (हमलखि) सोऽहमस्मि का भाव है उसे

देख, (लखहि हमार) हमारे जो श्री राम जी हैं उन्हें देख, और (हम हमार के बीच लखि) इन दोनों भावों के रूप गुण सौन्दर्यानन्द कल्याण सुगमता में जो अन्तर है उसे देख, इतना देखने के पश्चात भी क्या कोई संशय शेष रहजाता है, कभी नहीं? इसलिये हे नीच (राम नाम जपु) श्री राम जी के नाम को जपो (अलखहि का लखहि) और उस प्रभु की अनन्त और अलख माया को जिसे वेदभी नहीं जानते हैं, क्या देखता है।

(२) मोहजाल में फँसा हुवा जीव जगन्नियन्ता की सुशक्ति होनेपर भी अल्पज्ञ होने के कारण परात्पर देव को अलख अलख कहके पुकारता है तथा पाञ्चभौतिक देहमें अपना अधिकार समझ कर मैं और मेरा का अभिमान करता है किन्तु मैं और मेरे के बीच में जो कोई मैं और मेरे को मिलाने वाला है वह भी अलख है उस अलख को क्या देखता है अरे नीच श्री राम जीके नाम को जप। यह अर्थ विवर्तवाद की दृष्टि से है।

(३) श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि उन बस्तुवों को देख जिन्हें जीव हम करके मानता है जैसे शरीरादि और उन्हें देख जिन्हें जीव अपना करके मानता है जैसे धन स्त्री पुत्रादि और हम हमारे के बीच में जो यावत् संसार है उसे देख। यथा रामायणे–

मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।

जो अलख वस्तु है उसे क्या देखता है अरे नीच श्री राम जी का नाम जप।

राम नाम अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
वरषत वारिद बूंद गहि, चाहत चढ़न अकास॥२०॥

जो कोई श्री राम जी के नाम के अवलम्ब के बिना और किसी तरह से मुक्ति की अभिलाषा करता है वह बरसते हुये मेघ के जलबिन्दु पकड़के आकाश में चढ़ने की इच्छा करता है। मेघ

पाणिक हैं बूंद अधोगति करते हैं मेघसे आकाश से कोई सम्बन्ध नहीं इसलिये मेघ के बूंद से आकाश में चढ़ना अत्यन्त असम्भव है। ज्ञान आदि से परमारथ की प्राप्ति नहीं होसकती बिना श्री राम जी के स्मरण धन के। यथा—

पठित सकल वेदश्शास्त्रपारंगतो वा
यम नियम परो वा धर्म शास्त्रार्थकृद्वा
अटित सकल तीर्थ व्राजको वाहिताग्नि
र्नहि हृदि यदि रामः सर्वमेतद्वृथा स्यात्।

जिसने सकल वेद शास्त्रों का अध्ययन किया है जो यम नियम पर है धर्म शास्त्रार्थ के जानने वाला है जिसने सकल तीर्थों में भ्रमण किया है हवन किया है यदि हृदय में श्री राम जी नहीं हैं तो पूर्वोक्ति सब कुछ वृथा है। वर्ण २८ छन्द वानर है।

तुलसी हठि हठि कहत नित, चितसुनि हितकरि मानि
लाभ रामसुमिरत बड़ो बड़ी बिसारे हानि ॥ २१ ॥

श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं रोज बारम्बार कहता हूं उसे चित से सुनो और अपना हित करने वाला मानो श्रीराम जी के स्मरण करने से बड़ा लाभ है और उनके बिसारे से बड़ी हानि है।

विगरी जनम अनेक की, सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को, नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु ॥२२

श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि अनेक जन्म की विगरी आजु और अभी सुधर जाय और तू श्रीराम जी का हो जाय किन्तु बुरा समाज छोड़कर अर्थात् सत्संग करके क्यों कि 'सत्संगति संसृति कर अन्ता' या 'सत्संगाद्भवतिहि साधुता' श्रीराम जी का नाम जपो।

(२) श्री गोस्वामी जी अनेक कष्टों से दुष्प्राप्य वस्तु को अत्यन्त सरलता से प्राप्त करने की रीति इस भांति बतलाते हैं कि जन्म जन्मान्तर की बिगड़ी हुई दशा आजही नहीं किन्तु अभी इसी क्षण में सुधर जाय केवल पूर्णरूप से श्रीराम जी के चरणारविन्द में आत्म समर्पण करो और बुरा संग छोड़कर श्रीराम जी के नाम का जाप करो । आत्म समर्पण करने वाले के अर्थ भगवान रामजी बाल्मीकी में स्वयं कहते हैं ।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मिति च याचते
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।

अगर कोई पीड़ित एकवार भी कहदे कि राम मैं अब तुम्हारा हूं तो ऐसे सम्पूर्ण प्राणियों को मैं अभय देता हूं, यह मेरा नियम है। औरभी—

सन्मुख होहि जीव मोहिं जबहीं, जन्म कोटि अघ नाशहुं तबहीं ।

वर्ण छत्तीस है छन्द वानर है ।

प्रीति प्रतीति सुरीति सों, राम नाम जपु राम ।
तुलसी तेरो है भलो, आदि मध्य परिनाम ॥२३॥

श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रीति से प्रतीति से और सुरीति से राम नाम जपो वह नाम कौन, बताते हैं 'राम' अर्थात् राम राम जपो दोहे का द्वितीय चरण ऐसा भी है 'राम राम जपु राम' अब ऐसा अर्थ सुन्दर होगा प्रेम से राम जपो तो आदि अर्थात् बाल्यावस्था श्रद्धा से राम जपो तो मध्य आयु का द्वितीय भाग यौवन और सुरति अर्थात् नाम का अर्थ समझते हुये जपने की सुन्दर विधि से राम जपो तो आयु का तृतीय भाग वार्द्धक्य तुम्हारा भला हो। जब तुम्हारी तीनों अवस्थायें भली होजायँगी तब साकेत लोक के वासी तो अवश्यहीं होंगे फिर चिन्ता किस बात की है यथा

'नाम के भरोसे परिनाम की न सोचरे' यहां द्वितीय चरण में यदि तीनों बार राम शब्द का पाठ किया जाय तो लाटानुप्रास होता है यदि हे राम, मुहाविरे में हे मन, राम राम जपो ऐसा कहा जाय तो पाद यमक होगा इसमें यथासंख्यालंकार है। यथा—

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः
शत्रु मित्रं विपर्त्ति च जय रञ्जय भञ्जय ॥

क्रम से प्राप्त हुये पदार्थों का क्रमसे अन्वय यथा संख्य कह लाता है यथा शत्रु को जीतो मित्र को प्रसन्न करो विपत्ति को हटावो यथा संख्य का एक उदाहरण और भी उपस्थित करते हैं—

वालो वत्सः सुरो रोगी राजा गोपः किमिच्छति
पयः कीललममृतं जीवनं भुवनम् वनम्। स्पष्ट है।

(२) गोस्वामी जी इस दोहे के द्वारा श्री राम नाम जपने की उत्तम बिधि बताते हैं क्योंकि 'राम राम सब कोइ कहे, ठग ठाकुर और चोर, बिना भक्ति रीझे नहीं तुलसी नन्द किसोर' जापक को प्रीति पूर्वक हृदय में पूर्ण विश्वास रखके श्रीगुरु देव से जपने की सुरीति प्राप्त करके क्योंकि सुरीति बिना गुरुदेव की अनुग्रह के नही प्राप्त होती। यथा 'गुरु बिनु होय कि ज्ञान ज्ञान कि होहि बिराग बिनु, गावहिं वेद पुरान, गति कि लहहि हरिभक्ति बिनु' श्री राम जी के नाम का जप करना चाहिये तब तीनों ही काल में शुभ ही शुभ होगा।

दम्पति-रस रसना, दसन, परिजन, वदन सुगेह।
तुलसी हरहितवरन सिसु, सम्पति सहज सनेह ॥२४

श्री तुलसीदास जी नाम और पुत्र की समता का चित्र खींचते हैं (रस रसना) शब्द और जीभ (दम्पति) स्त्री पुरुष

(दसन परिजन) दांत कुटुम्बी (वदन सुगेह) मुख सुन्दर मकान (हरहित वरन सिसु) शंकर जी का हित करने वाले वर्ण (राम) बालक (सम्पति सहज सनेह) स्वाभाविक प्रेम धन है । यहीं रूपकालंकार है ।

जिस घरमें समस्त कुटुम्बी रहते हैं । उनके बीचमें संकोच से रहते हुये बिचारे स्त्री पुरुष प्यारे पुत्र की रक्षा प्रेम धन से करते हैं सो भी कुछ खिला पिला नही सकते धन्य है संकोच को और धन्य है सिसु को जो जबर्दस्ती कभी न कभी अपनी ओर प्रेम कराने को खींचही लेता है ।

कुटुम्ब के चित्र से यह सिद्ध होता है कि श्री राम जी का नाम घर बाहर सर्वत्र हो सकता है यही नहीं कि जंगल में ही होगा केवल मौका खोजना चाहिये । पुत्र का प्रेम घरमें भी हो सकता है चाहे कितना ही शर्मदार पिता क्यों न हो समय पाकर वह मिलही सकता है। इस दोहे से गुप्तरीति से भजन करने की ध्वनि निकलती है! यह वर्ण (राम) शंकर के भी हित करने वाले हैं देखो भगवान् शंकर अध्यात्म रामायण में स्वयं कहते हैं ।

अहं भवन्नामगृणान् कृतार्थो,
वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहम्,
दिशामि मन्त्रं तव राम ! नाम ॥

शंकर जी कहते हैं कि हे राम । मैं आपके नामको लेता हुवा पार्वती जी के साथ काशी जी में निवास करता हूं और काशी में मरने वाले को विमुक्ति (मोक्ष) देने के लिये तुम्हारा नाम (राम) तारक मंत्र सुनाता हूं । वर्ण बयालिस ४२ छन्द शार्दूल है ।

वरषाऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर वरन युग, सावन भादौं मास ॥२५॥

वर्षाऋतु श्री रघुनाथ जी की भक्ति है गोस्वामी श्री तुलसी दास जी सुगन्धित धान हैं, और श्री राम जी के नाम के दोनों सुन्दर वर्ण (राम) सावन भादौ महीना है। भाव यह कि भक्तरूप धान की खेती को लहलहाने वाली रघुपति भक्ति रूपिणी वर्षा ऋतु है और श्री राम जी के नाम के दोनों वर्ण (राम) सावन और भादौं के महीना हैं। इसमें रूपकालंकार है।

राम नाम नरकेसरी कनककशिपु कलिकालु।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालहिं दलि सुरसालु ॥२६

श्री राम नाम रूपनृसिंह देवतावों के सालने या खटकने वाले यथा 'राक्षसं देवकण्टकम्' हिरण्य कशिपु रूप कलियुग को दलकर नामके जप करने वाले जनकी प्रहलाद की समान रक्षा करते है। यहां उपमा है। देखिये प्रहलाद क्या कहते हैं—

रामनामजपतां कुतो भयम्
सर्वताप, शमनैकभेषजम्
पश्य तात! मम गात्र सन्निधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना

सम्पूर्ण तापों के शान्ति करने वाली अकेली औषधि श्री राम का नाम जपने वालों को कहां भय है, कही नहीं! हे पिता (हिरण्य कशिपु) देखो मेरे शरीर के समीप में यह अग्नि भी जल बना जा रही है। 'हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः' उन्तालीस वर्ण त्रिकलस दोहा है उपमालंकार है।

राम नाम कलि कल्पतरु, सकल सुमंगल-कन्द।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, पग पग परमानन्द ॥२७॥

कलिकाल में सकल कल्याण के देने वाले कल्पवृक्ष की जड़ श्री राम जी का नाम है जिसके स्मरण करने से सम्पूर्ण सिद्धियां हस्त में प्राप्त होती हैं और पग पग में परमानन्द अर्थात् अत्यन्त सुख या ब्रह्म प्राप्ति का आनन्द मिलता है। स्वभावोक्ति अलंकार है।

राम नाम कलि कामतरु, राम भगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूल जग, गुरुपद पंकज रेनु ॥२८॥

कलियुग में श्रीराम जी का नाम कल्पवृक्ष है और श्रीराम जी की भक्ति कामधेनु है (इन दोनों चीज़ों की प्राप्ति स्वर्ग ही में है किन्तु श्री राम जी का नाम जपने वाले और उनके चरण में भक्ति करने वाले को यह दोनों दुर्लभ पदार्थ मृत्यु लोक में ही प्राप्त हो जाते है और स्वर्ग का सुख देते हैं अर्थात् भक्तों को यहीं स्वर्ग है क्यों कि स्वर्ग का लक्षण है कि—

यत्र दुःखेन संभिन्नं नच ग्रस्त मनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतञ्च तत् सुखं स्वःपदास्पदम् ॥

जो दुःख से नहीं मिला है जहांपर कोई विघ्न बाधा नहीं है जहां पर मनमाने पदार्थ की प्राप्ति होती है उसका नाम स्वर्ग है। इस स्वर्ग की प्राप्ति के लिये वेद कहता है अगर स्वर्ग पाना चाहते हो तो यज्ञ करो यथा 'स्वर्ग कामो यजेत' वह स्वर्ग केवल श्री राम जी के नाम से ही सुलभ है धन्य है नाम की महिमा को जो दुर्लभ पदार्थ हस्ता मलकवत् कर देती है। और संसार में सम्पूर्ण कल्याणों की जड़ श्री गुरुचरण कमल की धूल है जिसके द्वारा अज्ञानान्धकारकी निवृत्ति होती है क्यों कि गुरु शब्द का अर्थ है अज्ञान ध्वान्त निवारण करने वाला यथा

'गुशब्द स्त्वन्धकारे स्यात् रुशब्दस्तत्प्रवर्तकः
अन्धकार नियोगित्वात् गुरुरित्यभिधीयते, ।

गु शब्द का अर्थ है अंधकार, रु शब्द का अर्थ है हटाने वाला अन्धकार हटानें वाले को गुरु कहते हैं । और भी किसी हिन्दी के भक्तनें कहा है ।

'गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पांय
बलिहरी उन गुरुन की (जिन) गोविन्द दिये दिखाय,

गुरु चरण धूलके द्वारा संसार का यावत् सुख मिलता है और सकल कल्याण प्राप्त होता है.वर्ण उन्तालीस दोहा त्रिकल है ।

यथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास ।
राम नाम सब धरम मय जानत तुलसी दास ॥२६॥

यथाबीज मयी पृथ्वी नक्षत्रनिलयं नभः
सर्वधर्ममयं रामनाम जानाति श्रीकरः

इस दोहे के द्वारा गोस्वामी जी अपना अनुभव प्रकट करते हैं जैसे पृथ्वी सम्पूर्ण बीजों से पूर्ण है और आकाश यावत् नक्षत्रों के रहने का स्थान है, तैसे ही श्री राम जी का नाम सर्व धर्म स्वरूप है या सब धर्मों के टिकने की जगह है श्री तुलसीदास जी इस बात को भली भाति जानतें हैं पाठक इस दोहे को बारबार पढ़के परमानन्द का अनुभव करें, परमानन्दप्रद इसे जानकर ही गोस्वामी जी (जानत) लिखते हैं। श्री राम जी के उपासकों का भाव भी 'जहां देखो वहीं मौजूद मेरा राम प्यारा है' पदारथ लोक में कोई न ओकर उससे न्यारा है, होना चाहिये क्यों कि महारामायण में ऐसाही लिखा है ।

भूमौ जले नभसि देव नरासुरेषु
भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु राम रूपं
रामस्य ते भुवितले समुपासकाश्च ॥

जो प्राणी पृथिवी जल आकाश देव नर असुर में ही क्या चर अचर के यावत् प्राणियों में शुद्ध मनसे रामरूप देखते हैं पृथिवी पर वही श्री राम जी के सच्चे उपासक हैं। वर्ण छत्तीस है पयोधर वृत्त है।

सकल कामना हीन जे, रामभक्ति रस लीन।
नाम प्रेम पीयूष ह्रद, तिनहुं किये मनमीन ॥३०॥

जो सनकादिक (सकल कामना हीन) सम्पूर्ण इच्छा का त्यागे रहे केवल श्री राम जी की भक्ति के रस में लीन रहे अर्थात् हृदय पटल पर श्री राम जी की मूर्ति खींचके निष्काम प्रेम पूर्वक अन्तर्दृष्टि से देखते रहे उनने भी नामके प्रेम कुण्ड में अपने मनको मीनरूप बनाया अर्थात् उन्हें भी जिव्हा से भजन करना भाया। देखो शुकदेव जी नवम स्कन्ध भागवत में क्या कहते हैं—

यस्यामलं नृप सदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगभेदपट्टम्।
तन्नाकपाल वसुपाल किरीट जुष्टम्
पदाम्वुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥

नृप की सभा में मधुर शब्दों में ऋषिगण पापके नाश करने वाले जिनके यश को आज भी गाते हैं स्वर्ग के राजा और पृथ्वी के राजाओं के मुकुटों से जो सेवित होते हैं श्री राम जी के उन्हीं

चरणारविन्दों की शरण में हम प्राप्त होते हैं। वर्ण सैंतीस वृत्तबल है। गोस्वामी जी ने भी सनकादिकों के विषय में क्याही भला कहा है–

आशावसन, व्यसन यह तिनहीं, रघुपति चरित होहि तँह सुनहीं।

ब्रह्म रामते नाम बड़, वरदायक वरदानि।
राम चरित शतकोटि महँ, लिय महेश जियजानि॥३१

सरूप ब्रह्म श्री राम जी से श्री राम जी का नाम बड़ा है जो बरदान के देनेवाले ब्रह्मादिकों को भी वरदान देने वाला है हृदय में यही बात समझ के श्री शंकर जी ने सौ करोड़ रामायण में केवल नाम (राम) लिया। किसी ने वताया है कि रामायण क्या है जिस में नीचे लिखे विषय वर्णित हों वही रामायण है। यथा—

आदौ राम तपोवनादि गमनं हत्वा मृगं काञ्चनम्
वैदेही हरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्।
वालेर्निग्रहणं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनम्
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननम् चैतद्धि रामायणम्॥

अर्थ स्पष्ट और प्रसिद्ध है और भी किसीने कहा है—

वालक्रीड़न मिन्दुशेखर धनुर्भङ्गावधि प्रह्वता
ताते कानन सेवनावधि कृपा सुग्रीव सख्यावधि।
आज्ञा वारिध वन्धनावधि यशो लंकेश नाशावधि
श्री रामस्य पुनातु लोकवशता जानक्यपेक्षावधि॥

जिन भगवान श्री रामचन्द्र जी ने बचपन में ही महज़ खेल खेलवाड़ में शशिमौलि श्री शङ्कर भगवान के धनुष का भङ्ग किया, जिन्हों ने अपने पूज्य पितृ चरणों के प्रति अपनी नम्रता अरण्यवास

स्वीकार करके प्रकट की, दया के सागर होते हुये जिन्हों ने अति दीन सुग्रीव को सखाभाव से अपनाया, जिन की आज्ञा से समुद्र पर भी पुल बँधगया, जिन्हों ने अति बलशाली लङ्काधिपति दशानन को समर में जीतकर पञ्चत्व (मरण) को भेज दिया। और जिन्हो ने प्रजानुरञ्जनार्थ अपनी प्रिय पत्नी साध्वी सीता देवी का भी त्याग किया, उन राजाधिराज श्री रामचन्द्र महाराज का नाम हम सबको पावन करे। दोहे के वर्ण ३८ हैं इस छन्दका नाम बानर है

शबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमितखल, वेदविदित गुनगाथ ॥३२॥

श्री राम जी ने शबरी (भिल्लनी) गीध (जटायु) जैसे अच्छी भांति सेवा करने वालों को अच्छी गति दी, किन्तु वेद में प्रसिद्ध है गुण की महिमा जिसकी ऐसे श्री राम जी के नाम ने असंख्य खलों का उद्धार किया अतः श्री राम जी से नाम का अधिक माहात्म्य हुवा। ऐसाही पद्मपुराण में लिखा है—

सकृदुच्चारयेद्यस्तु राम नाम परात्परम्
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति।

जो कोई एक वार भी श्री राम जी का नाम उच्चारण करता है वह शुद्धान्तःकरण हो के शान्ति को प्राप्त होता है। वर्ण ३६ त्रिकल दोहा है। (वेदविदित गुनगाथ) देखिये वेद क्या कहता है—

यश्चाण्डालोऽपि रामेति वाचं वदेत्, तेन सह संवसेत्
तेन सह संवदेत् तेन सह भुञ्जीत।

चण्डाल भी यदि राम राम कहे तो उस के साथ परस्पर भाषण करे और उसके साथ भोजन करे, तो कोई हानि नहीं है।

रामनाम पर रामते, प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल कोस॥३३

अपने को श्री राम जी से जिस श्री राम जी के नाम पर प्रेम और बिश्वास तथा भरोसा है गोस्वामी जी शुभगणों का शुभमंगलों का जो भंडार है उसी नाम का स्मरण करते हैं।

(२) जिन श्री राम जी के अनेकानेक चरित्रों के कारण नाम पर प्रीति प्रतीति भरोस हुआ (जो) उसी (सगुन) सगुम स्वरूप का तुलसीदास जी सदा स्मरण करते हैं जो सम्पूर्ण शुभों का खजाना है। यथा—

श्री रामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेश संक्षयः
भक्तिं प्रयाति विप्रेन्द्र ! तस्य विघ्नो न वाधते।

श्री राम जी के स्मरण करने से समस्त क्लेशों का नाश होता है और एकभी विघ्न तकलीफ नहीं देता। वर्ण ३७ हैं दोहे का नामवल है

लंक विभीषन, राजकपि, पति मारुति, खगमीच।
लही रामसों, नामरति चाहत तुलसी नीच॥३४॥

जिन श्री राम जी से विभीषण ने लङ्का पाई सुग्रीव ने राज्य पाया, जटायु ने मुक्ति पाई, उन्हीं के नाम की भक्ति गोस्वामी श्री तुलसीदास जी चाहते हैं। जिनसे अनेक लोगों ने अच्छी से अच्छी वस्तुवें पाई उनसे भी प्रीति न करके उनके नाम की प्रीति चाहता हूं इसीलिये गोस्वामी जी अपने को कहते हैं 'तुलसी नीच' नीच के इतनी हिम्मत कहां जो ऊंचे का साथ करे और ऊंची वस्तु मांग सके वहतो दूरसे केवल नामही सुनता है और उसी की गुणावली गाता है इतने ही में प्रसन्न रहता है। वर्ण ३७ दोहा बल है। स्मरणालङ्कार है।

हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान।
राम नाम नित कहत हर, गावत वेद पुरान ॥३५॥

समस्त पाप और दुःख के हरने वाले और सकल कल्याण करने वाले श्री राम जी के नाम को श्री महादेव जी रोज जपते हैं यह बात वेद और पुरान बखानते हैं।

तुलसी प्रीति प्रतीति सों, राम नाम जपु जाग।
किये होय विधि दाहिनों, देइ अभागेहि भाग ॥३६॥

श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रेम से और विश्वास से श्री राम जी के नाम का जप रूप यज्ञ करने से टेढ़ा ब्रह्मा या दैव सीधा यानी अनुकूल होजाता है और वह फिर अभागी को भी भाग्यवान बनाता है। भाव यह कि ब्रह्मा जी जिस व्यक्ति के भाग में कुछ भी नहीं लिखते उस अभागे को भी विवश होकर भाग्यवान बनाते हैं देखिये गोस्वामी जी कहते हैं कि—मन्त्र महा मणि विषय व्यालके, मेटत कठिन कुअङ्कभाल के। अथवा प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम नाम जप और जाग पड़ ऐसा करने से बिधि दाहिनों होजाय यथा—नाम जीह जपि जागहिं जोगी, बिरति विरञ्चि प्रपञ्च वियोगी।

जल थल नभ गति अमित अति, अग जग जीव अनेक।
तुलसी तो सों दीन कहँ, राम नाम गति एक ॥३७॥

जल थल और आकाश में निर्वाह करने वाले बहुत जीव हैं, एवं चेतन और अचेतन अनेक जीव हैं, किन्तु हे तुलसी तुम्हारे जैसे दीन की गति केवल श्री राम जी का नाम है। भाव यह कि जैसे संसार में अनेक प्राणी हैं वैसे ही उनके कल्याणार्थ कर्म ज्ञान उपासनात्मक अनेक मार्ग भी हैं किन्तु गोस्वामी जी अपने को कहते हैं

कि अपना तो केवल राम नाम ही का अवलम्ब है। वर्ण उन्तालिस छन्द का नाम त्रिकल है।

राम भरोसे रामबल, राम नाम विश्वास।
सुमिरत सुभ, मंगल, कुशल, मांगत तुलसीदास॥३८॥

श्री तुलसीदास जी श्री राम जी के सहारे का स्मरण करके कल्याण, श्री राम जी के बल का स्मरण करके हित, तथा श्री राम जी के नाम पर विश्वाश का स्मरण करके कुशलता मांगते हैं।

(२) श्री तुलसीदास जी मांगते हैं कि श्री राम जीका सहारा और श्री राम जी का बल तथा श्री राम जी के नाम पर विश्वास और श्री राम जी के स्मरण ही की शुभ मंगल कुशल हो अर्थात् वह भी न छूटे और कुछ न चाहिये।

(३) इस दोहे के द्वारा श्री गोस्वामी जी अपनी मनो वाञ्छा प्रकट करते हैं कि मुझे श्री राम जी का भरोसा हो और उन्हीं का मुझेबल हो और उन्हीं के नाम पर विश्वाश हो और उन्हीं के स्मरण में अपने जन्म को व्यतीत करूं इस तरह कि कोई अशुभ अमंगल और किसी तरह की अकुशल न होवे।

रामनामरति, रामगति, रामनाम विश्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुशल, चहुँदिशि तुलसीदास॥३९

शुभप्रद श्री राम जी के नाम का प्रेम, मंगलदायक श्री राम जी के नाम का भरोसा, और कुशल करने वाले श्री राम जी के नाम का विश्वास, स्मरण करने से चारो दिसावों में शुभ मंगल कुशल है यह श्री तुलसीदास जी का अनुभूत कथन है! बेशक आप श्री राम जी के नाम पर कहीं चले जाव कल्याण ही होगा श्री राम नाम से बढ़के मुहूर्त और क्या होगा। देखो—

तदेवलग्नं सुदिनंतदेव, तारावलं, चन्द्रवलं, तदेव,
विद्यावलं दैववलंतदेव, सीतापतेर्नाम यदास्मरामि।

लग्न सुदिन तारावल चन्द्रवल विद्यावल दैववल तभी है जभी सीतापति का स्मरण किया जाय। वर्ण ३७ दोहा वल है।

रसना सांपिन, बदनबिल, जेन जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि विधाता वाम ॥४०॥

श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि उनकी जीभ सर्पिणी है, और मुख बिल है जो श्री हरि के नाम को नहीं जपते। और जो श्री राम जी से प्रेम नहीं करते उन्हें ब्रह्मा भी टेढ़े हैं अर्थात् उनका दुर्भाग्य है। वर्ण ३६ पयोधर वृत्त है।

हिय फाटहि, फूटहि नयन, जरइ सो तनु केहिकाम।
द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकहिं, नहीं तुलसी सुमिरत राम॥४१

श्री तुलसी दास जी कहते हैं श्री राम जी के स्मरण से जो हृदय पिघल नहीं उठता वह फट जाय, जो नयन आंसुवों को नहीं छोड़ते वे फूट जांय, तथा वह शरीर किसी काम का नहीं जलजाय, जिसके रोयें आनन्द से खड़े नहीं हो जाते। भाव यह कि जो जगदीश के सुन्दर चरित सुनके रोमाञ्चित पुलकित होकर अश्रु नहीं त्यागते उन शरीरों का फटना नेत्रों का फूटना मृतकवत् देहों का जलनाही भला है। इसमें यथा संख्यालंकार है।

रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत परत गुरुपांय।
तुलसी जिनहिं न पुलकतनु, ते जग जीवत जाय॥४२

तुलसी दास जी कहते हैं श्री राम जी के स्मरण करनें के, संग्राम में लड़नें के, दान देने के, श्री गुरुचरण का नमस्कार करनें

के समय जिनके शरीर के रोयें नहीं खड़े हो जाते वे जगत में बेकार (व्यर्थ) जीते हैं उनका संसार में कोई काम नहीं, वे संसार में गये बीते मृतक के तुल्य हैं ।

सोरठ ।

हृदय सो कुलिस समान, जो न द्रवहि हरिगुन सुनत,
कर न राम गुन गान, जीह सो दादुर जीह सम ॥४२॥

वह हृदय वज्र की समान कठोर है, जो भगवान् के गुणानुवाद सुनते ही पिघल नहीं जाता, और जो जीभ श्री राम जी के गुण का गान नहीं करती वह (दादुर) मेंढक की जीभ के तुल्य है ।

श्रवहिं न सलिल सनेहु, तुलसी सुन रघुवीर जस,
ते नयना जनि देहु, राम करो वरु आंधरो ॥४३॥

श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि जो श्री रघुवीर के जस को सुन के प्रेम के आंसू नहीं छोड़ते, हे राम। वे नयन न दो आंधरो भले ही बनावो।

रहे न जल भरि पूरि, राम सुजस सुनि रावरो ।
तिन नयनन में धूरि, भरि भरि मूंठी मेलिये ॥४४

हे राम। आपका सुयश. सुनके जो आंखें जल से भरकर पूरी न हो जांय। उनमें मूठी भरकर के मांटी (मेलिये) छोड़ देना चाहिये आंखें फूट जाने पर आपके सुयश का स्मरण करेंगे खुला रहने से तो वास्तविक सुख माया जाल संसार को देखनें के कारण इन्हें कभी मिलता ही नहीं।

बारक सुमिरत तोहिं, होहिं तिनहिं सन्मुख सुखद ।
क्यों न सम्हारहि मोहिं, दया सिन्धु दसरत्थ के ॥४५

जो कोई एक बार भी आपका स्मरण करते हैं उनके सामनें सुख के देनें वाले आप हो जाते हैं। अर्थात् उन्हें दर्शन देते हैं। अथवा सुखद यानी सुखके देने वाले यावत् पदार्थ या देवगण सामनें आ जाते हैं। या उनपर तुरन्त कृपा करके सुख देते हैं। अर्थात् उनके कष्टों को निवारण कर देते हैं। जैसे गजेन्द्रादि। तो फिर हे दया के सागर दशरथ जी के पुत्र श्री राम जी मुझे क्यों नहीं सम्हारते। सोरठ का तृतीय चरण 'क्यों न सम्हारिहि मोहिं, ऐसा भी है तब अर्थ होगा कि जो एक बार भी आपका स्मरण करते हैं उनके सन्मुख सुख के देने वाले समस्त सिद्धिगण हो जाते हैं। तो फिर हे दयानिधे राम। आप मुझे क्यों नहीं सम्हारते हो।

साहिब होत सरोष, सेवक के अपराध सुनि।
अपने देखे दोष, सपनेहु राम न उर धरेउ ॥४७॥

सेवक का अपराध सुनकर प्राकृतिक स्वामी बिगड़ जाते हैं किन्तु हमारे प्रभु श्री राम जी ऐसे दयालु हैं कि हमारे अपराध देखते हुये भी कभी हृदय में नहीं लाते। गोस्वामी जी रामायण में लिखते हैं कि जेहि कारण मारा प्रभुवाली, सोइ सुमित्र पुनि कीन्ह कुचाली, सोइ करतूति बिभीषण केरी, सपनेहु सो न राम फिर हेरी।

दोहा।

तुलसी रामहिं आपुते, सेवक की रुचि मीठि।
सीतापति से साहवहिं, कैसे दीजै पीठि ॥४८॥

श्री तुलसी दास जी कहते हैं कि श्री राम जी को अपनी इच्छा से अपने सेवक की रुचि मीठी है अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा चाहे टूट जाय, पर अपनें भक्त की कामना में किसी तरह की त्रुटि न होवे। तो फिर सीता पति जैसे स्वामी को पाकर पीठ कैसे दी जाय,

अर्थात् उनकी सेवा से कैसे विमुख हुआ जाय। ऐसा भला स्वामी कहां मिलेगा जो अपनी बान जाने पर भी सेवक की बान रखता है। देखिये भरत जी का वाक्य राम जी के प्रति रामायणे

'निज प्रण तजि, राखेहु प्रण मोरा' 'छोभ सनेह कीन्ह नहिं थोरा'

आगे राम जी का वाक्य भरत जी के प्रति।

'राखेहु राउ सत्य, मोहिं त्यागी
तनु परि हरेउ प्रेम पन लागी
तासु वचन मेटत अति सोचू
तेहिते अधिक तुम्हार सँकोचू
तापर गुरु मोहिं आयसु दीन्हा
अवशि जो कहो चहौं सोइ कीन्हा'

तुलसी जाके होयगी, अन्तर बाहिर दीठि।
सो कि कृपालुहि देइगो, केवट पालहिं पीठि ॥४६

श्री तुलसी दास जी कहते हैं कि (अन्तर) भीतर की दृष्टि सगुण रूप से जगदीश की जगत में व्याप्ति और उसपर भक्ति, जिसके होगी या जिसकी बाहरी दृष्टि अन्तर्मुख होयगी, वह केवट के पालन करने वाले कृपालु श्री राम जी से पीठ क्यों देगा। अर्थात् उन से विमुख क्यों होवेगा। तात्पर्य यह कि जब केवट जैसे अधम हिंसक ज्ञान वैराग्य हीनने भी योगियों से अप्राप्य गति पाई तब भीतर बाहिर ज्ञान भक्ति दृष्टि से पूर्ण पुरुष कृपालु श्री राम जी की सेवा से विमुख होगा।

प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कबहुं न राम सों, साहिब सील निधान ॥५०

प्रभु श्री राम जी वृक्ष के नीचे बैठे हैं कपि (बन्दर) उसी वृक्ष की डार पर ऊपर बैठे हैं मतलब यह कि जिन्हें ऊंचनीच का ज्ञान नहीं ऐसे भी कपि को अपनी समान बनाया। इस लिये श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि शील के भंडार श्री राम जी के समान कहीं कोई दूसरा स्वामी नहीं है।

रे मन। सबसों निरसि ह्वै, सरस रामसों होंहि।
भलो सिखावन देत है, निशिदिन तुलसी तोंहि॥५१

रे मन! सबसों ' जाति विद्या महत्वं च रूपयौवन मेव च ' यत्नेन परिवर्ज्याः स्युः पञ्चैते भक्तिकंटकाः। जाति, विद्या, महत्व, रूप, यौवन, यह सब यत्न से छोड़ना चाहिये क्योंकि यह पांचों भक्ति मार्ग के कांटे हैं इन सब से इच्छा को हटाकर श्रीराम जी का ध्यान कर यह भलो शिक्षा रातदिन तुझे तुलसीदास जी देते हैं। वर्ण ३८ वृक्ष बानर है।

हरो चरहिं, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हांथ।
तुलसी स्वारथ मीन सब, परमारथ रघुनाथ॥ ५२॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि इस संसार में ' स्वारथलागि करैं सब प्रीती, देखो जो वृक्ष हरे होते हैं उन्हें स्वारथबस मनुष्य, पशु, पक्षी, सभी चर लेते हैं, और जब वे सूख जाते हैं तब जलाकर तापते हैं, और जब वे फरते हैं तब स्वार्थी उनके सामने हांथ पसारते हैं, अतः सब कोई स्वार्थ के ही मित्र हैं परन्तु श्री रघुनाथ जी निःस्वार्थ सबके उपकार करने वाले हैं, बिनुकारण दीनदयालु हितम्।

(२) लौकिकभाव इसमें यह है कि जो हरे, अर्थात् हर तरह से परिपूर्ण हैं उनके गिराने की कोशिश लोग करते हैं, और जो बिगड़ रहे हैं उनकी बिगड़ी दशा देखने की कामना रखते हैं,

किन्तु जो लोग किसी तरह भी न्यून नहीं, विपत्ती जिनका कुछ भी नहीं करसकते, उनके सामने हांथ पसारते, प्रार्थना करते, हां हुजूरी बजाते, अपनी अशक्ति प्रकट करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रघुनाथ! इसी तरह से सब संसार अपना ही लाभ चाहनेवाला है. किन्तु आप ही केवल सर्वाङ्गपूर्ण लाभ के देनेवाले हैं।

दोहे के प्रथम तीन पादों में एककर्ता की कई क्रियायें आने के कारण दीपकालङ्कार है यथा कुवलयानन्दे

क्रमिकैक गतानां तु गुम्फः कारकदीपकम् ।
गच्छत्यागच्छति पुनः पान्थः पश्यति पृच्छति ॥

एक कारक में लगनें वाली क्रियावों के समूह को कारक दीपक कहते हैं जैसे पथिक जाता है, और फिर लौट आता है, देखता है, और फिर पूंछता है। कारक दीपक का एक उदाहरण बहुत ही अच्छा भर्तृहरि जीने दिया है यथा—

तृष्णां छिन्धि, भज क्षमां, जहि मदं, पापे रतिं माकृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं, सेवस्व विद्वज्जनान् ।
मान्यान्मानय, विद्विषोऽप्यनुनय, प्रख्यापयस्वान्गुणान,
कीर्तिं पालय, दुःखिते कुरु दयामेतत् सतांचेष्टितम् ॥

तृष्णा को त्यागो, क्षमा को धारण करो, मदको छोड़ो, पाप में प्रीति मत करो, सत्यबोलो, साधुवों के मार्ग में चलो, विद्वज्जनों की सेवा करो, मान्यों को मानो, शत्रुवों पर दयाकरो, अपने गुणों को प्रसिद्धकरो, कीर्ति की रक्षाकरो, दुःखित पर दयाकरो, यह सज्जनों का काम है। वर्ण ३८ दोहा वानर है।

स्वारथ सीताराम सों, परमारथ सियराम ।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम ॥ ५३ ॥

जब तुम्हारे 'स्वार्थ' लौकिक कार्य की सिद्धि श्री राम जी से होती है, और 'परमार्थ' भी श्री युगुल सरकार ही हैं, तो हे तुलसी ! कहो फिर दूसरे के द्वारपर तुम्हारा क्या काम है ? यहां पर सत्कृति ऐसी है यथा—

लोके हरिं सकल साधन दानदक्षम् ।
लोकान्तरे सुगतिदान कृतैकपक्षम् ॥
ज्ञात्वापि यानि धनिनां यदहं समक्षम् ।
तन्मे दुरन्तदुरितं कृत पुण्यभक्षम् ॥

लोकमें सम्पूर्ण साधन के देने में कुशल, लोकान्तर में सुगति देनें को जिन्हों नें एक पक्ष लिया है, ऐसे हरिको जानके भी जो मैं धनियों के समीप जाता हूं यह मेरा बहुत बड़ा पाप है जिसने पुण्य का भक्षण कर लिया है। वर्ण २३ दोहा नर है।

स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एकही ओर ।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥ ५४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जब स्वार्थ और परमार्थ की सिद्धि एक ही ओर अर्थात् श्रीराम जी के ही समीप में भलीभांति मिलती है, तब दूसरे के दरवाज़े अपनी दीनता दिखाना तुझे उचित नहीं यही शिक्षा दूसरे शब्दों में किसी ने क्या ही भलीभांति दी है।

'धीरज मति छोडो, अरे ! जावो नहीं धाम धाम
दीन बचन भाषे नहीं दीनता सरेगी ए'

चिन्ता मति करो चित्त चातुरी न त्यागो, शिर
अधमन सों जाये नहीं आपदा हरेगी ए ।
अधमन के आगे मति भाषो विनीत ह्वै के
शेखी के छोड़े अपलेखी का करेगी ए,
जादिन रघुनाथ हाथ होइहौ शिरछत्र धरे,
तादिन सुख सम्पति आय पायँन परेगी ए ॥

३६ वर्ण पयोधरवृत्त है ।

तुलसी स्वारथ रामहित, परमारथ रघुवीर ।
सेवक जाके लषन से, पवनपूत रनधीर ॥ ५५ ॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि स्वार्थ में हित करने वाले श्रीराम जी हैं, और परमार्थ में भी हित करने वाले श्री रघुवीर हैं, जिनके सेवक रनधीर लक्ष्मण और हनुमान जी जैसे हैं। भाव यह कि जिसके ऐसे समर्थ सेवक हैं उस स्वामी की सामर्थ्य को कहना ही क्या है ।

यहां पर 'काव्यार्थापत्ति' अलंकार है यथा 'कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्ति रिष्यते, अधरोऽयमधीराक्ष्याः वन्धुजीव प्रभाहरः अन्यजीव प्रभां हन्त ! हरतीति किमद्भुतम्; कैमुतिक न्याय से जहां कार्य सिद्धि होती है, वहां 'काव्यार्थापत्ति' अलंकार है जैसे चञ्चलनेत्र कामिनी का वन्धूक पुष्प की कान्ति हरने वाला अधर यदि वन्धुभूत प्राणियों की शोभा हरने वाला है तो क्या आश्चर्य है। वर्ण ३७ दोहावली

ज्यों जग वैरी मीन को, आपु सहित विनु वारि ।
त्यों तुलसी रघुवीर विनु, गति आपनी विचारि ॥५६

गोस्वामी जी कहते हैं जैसे जलके बिना अपने कुटुम्बियों के साथियों के समेत सारा संसार मछली का वैरी है, अर्थात् मछली ही मछली को खा जाती है, साथी सर्पादिकों की बातही क्या है तैसे ही तुमभी अपनी गति बिना श्री रघुवीर जी के समझ जावो, यानी जिन स्त्री पुत्र सुख सम्पदादिकों को अपना हितूमानते हो वास्तव में वह तुम्हारे बन्धन का कारण हैं 'सुख सम्पति परिवार बड़ाई, सब परिहरि करिहौं। सेवकाई' 'ये सब रामभगति के बाधक, कहहिं सन्त तव पद आराधक,

रामप्रेम विन दूबरो, रामप्रेम ही पीन।
रघुवर ! कबहुंक करहुगे, तुलसी ज्यों जलमीन ॥५७

हे रघुवर ! तुलसीदास को क्या कभी ऐसा बनावोगे कि बिना श्रीराम जी के प्रेम के दुर्बल रहें और श्रीराम जी के प्रेम ही से मोटे रहें जैसे जल की मछली । 'जल संकोच विकल भइ मीना' यहां पर उपमालंकार है क्यों कि हमें तो और कुछ भी न चाहिये यथा-

"न धनं नजनं न सुन्दरी कवितां वा जगदीश कामये मम जन्मनीश्वरे, भवतात् भक्तिरहैतुकी त्वयि, नयनं गलदश्रुधारया, वदनं गद्गदरुद्धया गिरा पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति"

हे जगदीश ! न धनको, न कुटुम्बको, न सुन्दरी स्त्री को, न सुन्दरी कविता को, मैं चाहता हूं तो केवल जन्म जन्मान्तर में तुम्हारी निष्काम भक्ति। प्रेम से छूटती हुई अश्रुधारा से युक्त नयन, गद्गद होने के कारण रुद्ध वाणी से युक्त मुख, और तुम्हारे नाम लेने में रोमाञ्चयुक्त शरीर वाला हे भगवान् मैं कब हूंगा। और भी—

"युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे"

भगवान ! आपके विरह का निमेष काल भी मेरेलिये युग के समान, नेत्रों की अश्रुधारा वर्षा काल के समान, और समस्त संसार शून्य के समान, आपके वियोग में मुझे कब लागे गा । वर्ण ३६ दोहा पयोधर है ।

राम सनेही रामगति, रामचरनरति जाहि ।
तुलसी फल जगजनम को, दियोविधाता ताहि ॥५८

जो श्रीराम जी का प्रेमी है, जिसकी गति श्रीराम जी हैं, जिसकी श्री राम जी के चरण में प्रीति है श्री तुलसी दास जी कहते हैं कि ब्रह्मा जी ने उसे संसार में उत्पन्न होने का फल देदिया, अर्थात् वह कृतकृत्य हो गया अब उसे कुछ न चाहिये इस मोक्ष साधन धाम शरीर की प्राप्ति का फल यही है ।

आपु आपनें ते अधिक, जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहि के पग की पानहीं, तुलसी तनुको चाम ॥५९

जिसको अपने शरीर से और अपना जिन पर अधिकार है जैसे कुटुम्बादिक उनसे श्री सीताराम जी अधिक प्रिय हैं, उसके पदकी पनहीं होने के योग्य गोस्वामी जी कहते हैं कि मेरी देहका चमड़ा है । एक कवि व्रजाङ्गना की चरण धूलि का प्रणाम करता है । यथा

"वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्"

मैं उन नन्द के ब्रज की स्त्रियों की चरण धूलि का बारम्बार प्रणाम करता हूं, जिनका हरिचरित गान तीनों भुवनों को पवित्र करता है।

स्वारथ परमारथ रहित सीताराम सनेह।
तुलसी सो फल चारिको फल हमार मत एह ॥६०

गोस्वामी जी कहते हैं कि हमारा सिद्धान्त तो यह है कि धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों का फल स्वार्थ और परमार्थ को त्याग कर श्री सीताराम जी पर प्रेम करना है क्यों कि 'बहूनां जन्मनामन्ते कृष्णे भक्तिः प्रजायते,

धर्म न अर्थ न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म २ रति रामपद, यह बरदांन न आन ॥ रामायणे ॥

जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम को, कानन बसैं कि गेह ॥ ६१ ॥

जो जन विषय शब्द रूप रस गंध स्पर्श इनसे 'रूखे' अर्थात् प्रेम नहीं करते, और श्री राम जी के प्रेम से चिकनें अर्थात् उनके चरणों में लगे रहते हैं, वे श्रीराम जी को प्रिय हैं, तुलसी दास जी कहते हैं वे चाहे घरमें रहें, चाहे वन में उनके लिये दोनो ही बराबर हैं यानी ' सयोगी सच सन्यासी न निरग्निर्न चाक्रियः, अग्नियुक्त, क्रियावान्, भक्त योगी है, सन्यासी है।

यथालाभ संतोष, सुख, रघुवर चरन सनेह।
तुलसी जो मन खूंदसम, कानन बसौं कि गेह ॥ ६२ ॥

तुलसी दास जी कहते हैं कि यदि भाग्यानुसार प्राप्त पदार्थ में संतोष है, और श्री रघुवर जी के चरण में स्नेह है, तो सर्वत्र ही

सुख है। किन्तु मन यदि घोड़े की समान उछलता कूदता है तो चाहे वन में रहो चाहे घर में दोनों ही तुल्य हैं। देखो ' कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्, इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः सउच्यते, गीता। कर्मेन्द्रियों को रोक कर मनसे विषयों का स्मरण करता हुवा जो विमूढ़ात्मा बैठता है वह मिथ्याचार कहलाता है ।

तुलसी जो पै राम सों नाहिन सहज सनेह ।
मूड़ मुड़ायो, वादिही, भांड़ भयो तजि गेह ॥ ६३ ॥

तुलसी दास जी का कथन है कि यदि श्री राम जी से स्वाभाविक प्रेम नहीं, और मकान छोड़ा मूड़ मुड़ाया, तो व्यर्थ है। और ' भांड़भयो ' अर्थात् भांड़ों की जैसी नक़ल हो गई, तब कुछ अब कुछ, इससे कोई लाभ नहीं कि बाहर 'मूड़ मुड़ायि भये सन्यासी, भीतर विषय गांठ घरघांसी,

तुलसी श्री रघुवीर तजि, करे भरोसो और ।
सुखसम्पति की का चली, नरकहु नाहीं ठौर ॥ ६४ ॥

तुलसी दास जी कहते हैं कि यदि श्री रघुवीर जी को छोड़के दूसरे का भरोसा करे तो सुख सम्पति की तो बातही नहीं कहता यानी वह तो मिल ही नहीं सकती नर्क में भी ठहरने की जगह उसके लिये ख़ाली नहीं, ऐसे पापी के तो 'सुनि अघ' नर्कहुनाक सिकोरी, ।

तुलसी परिहरि हरिहरहिं, पामर पूजैं भूत ।
अन्त फजीहति होति है, ज्यों गनिका के पूत ॥ ६५

श्री गोस्वामी जी महाराज कहते हैं कि नीच लोग विष्णु और शंकर जी की पूजा छोड़के भूतों की पूजा करते हैं उनकी अन्त

में ऐसी ख़राबी होती है जैसे गनिका के पूत की। भाव यह कि गनिका के पूत का निश्चित पिता न होने से जैसे उसका सन्मान किसी सत्सभा में नहीं होता, इसी तरह से हरिहर पद से बिमुख मनुष्य किसी तरह से सुगति को नहीं प्राप्त हो सकते। अथवा भूत पूजने वालों की अन्त में ऐसी फज़ीहत होती है कि आप भी भूत हो जाते हैं। देखिये भरत जी क्या कहते हैं।

'जो परिहरि हरिहर चरन, भजें भूतगन घोर।
तेहिके गति मोहिं देहि विधि जो जननी मत मोर,॥

सेए सीताराम नहिं, भजे न शंकर गौरि।
जनम गवांयो वादिही, परत पराई पौरि॥६६॥

जिसने श्री सीताराम जी की सेवा नहीं की, जिसने शंकर और पार्वती जी का भजन नहीं किया, दूसरे के द्वार पर पड़े हुये उसने व्यर्थ ही अपना जन्म बिताया। यहां पर सत्कृति ऐसी है—

भक्तिः कृता भगवतश्चरणारविन्दे,
सीतापतेर्यदुपतेर्गिरिजापतेर्वा।
तज्जन्म पुराय फलकं बिपरीत मेतद्,
धिग् धिग् धिगस्ति धरणी भरमाढ्यभारम्॥

तुलसी हरि अपमानते, होइ अकाज समाज।
राज करत रज मिलिगये, सदल सकुल कुरु राज॥६७

हे तुलसी ? भगवान का अपमान करने से समाज की बड़ी हानि होती है (अकाज) या नाश होजाता है गोस्वामी जी अकाज का अर्थ नाश ही करते हैं यथा रामायणे-'मानहुं नृपति अकाजे आजु'

देखो सेना की सहित, कुलके समेत राज्य करते हुये कुरुराज दुर्योधन माटी में मिल गये। भगवान कृष्ण के समझाने परभी अभिमानी दुर्योधन ने कहा था 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव, और अपमान किया था परिणाम सभी जानते हैं।

तुलसी रामहिं परिहरे, निपट हानि सुनु ओझ।
सुरसरिगत सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ॥ ६८॥

हे बुद्धिमान! सुनो, श्रीराम जी के परित्याग करने से अत्यन्त हानि है, अर्थात् पहिले उनपर प्रेम किया फिर त्याग किया इससे बुराई ही बुराई जानो, जो जल पहिले गंगा जी में मिला था वह गंगा जी के सदृश था किन्तु ज्यों ही उसने भगवती की विमल धारा त्यागी त्यों ही मदिरा के तुल्य हुवा पाठको! यह बात केवल उस गंगा जल के लिये है जो गंगा की धारा से छूटकर वन्द सोता बन कर एक ही स्थान में स्थिर हो जाता है, सो भी केवल गंगाजल की यह बात है दूसरी नदियों का जल ऐसा नहीं होता। यथा—

"गंगायाः निस्सृतं तोयं पुनर्गङ्गां न गच्छति
तत्तोयम् मदिरातुल्यम् पीत्वा चान्द्रायणं चरेत"

यदि गंगा जी से पृथक हुवा जल फिर गंगा जी में नहीं जाता, तो वह जल मदिरा के तुल्य हो जाता है उसको पीकर चान्द्रायण व्रत करे।

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मनमांह।
भूरि होति रवि दूरिलखि, सिरपर पगतर छांह॥ ६९

श्रीराम जी यदि दूर हुये अर्थात् उनका भजन नहीं किया जाता तो 'माया' सांसारिक प्रपञ्च बढ़ता है, अर्थात् उस में चित्त बहुत खिंचता है और जब वे मनमें आजाते हैं, तो माया भागती

है जैसे सूर्य के दूर होने पर परछांही बड़ी हो जाती है, और जब सूर्य सिरपर आजाता है तब परछांही पांवके नीचे आजाती है, भगवान राम सूर्य की तरह माया छाया की भांति हैं।

साहेब सीतानाथ सों जब घटि है अनुराग।
तुलसी तबहीं भालते भभरि भागि है भाग॥ ७० ॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि स्वामी श्री सीतानाथ जी से जब प्रेम घटेगा तभी भाल से सौभाग्य (भभरि) घबड़ा के भाग जायगा।

करि हौ कोशलनाथ तजि, जबहिं दूसरी आस।
जहां तहां दुख पाइहौ तबहीं तुलसी दास॥ ७१ ॥

श्री कोशलनाथ श्रीराम जी की आशा छोड़के जब दूसरे की आशा करोगे, तभी तुम हे तुलसी दास ! सर्वत्र दुःख पावोगे, भगवान् की आशा करने वालों को तो दुःख हो ही नहीं सकता गीता में भी मुख से ही यह महावाक्य निकला है—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्"

उनकी आशा करके फिर दूसरे की आशा करना ही दुःख की जड़ है यथा रामायणे 'मोर दास कहाय नर आशा करिय तो कहो कहा विश्वाशा'।

विंध न ईंधन पाइये, सायर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेर घर, जो विपच्छ रघुबीर॥ ७२ ॥

जिसनें श्रीराम जी की शरण नहीं लिया उसे वृक्षों से पूर्ण विन्ध्याचल पर भी लकड़ी जलानें को नहीं मिल सकती, समुद्र में

नीर नहीं जुट सकता, धनाधिप कुबेर के घर में रहते हुये भी उपवास पड़ सकता है।

वर्षा को गोवर भयो, को चाहे, को करे प्रीति।
तुलसी तू अनुभवहि अब राम विमुख की रीति॥ ७३

वर्षा के गोबर को न कोई चाहता है न उस पर प्रीति करता है, तुलसीदास जी कहते हैं कि इसी बात से अब तुम अनुभव करो कि राम विमुख की भी यही चाल है, अर्थात् फिर उसे भी कोई नहीं चाहता।

सबहिं समरथहिं सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय, तुलसी कहा विचारि ७४॥

समर्थ को सुख देने वाले, प्यार करने वाले सभी हैं किन्तु असमर्थ का प्रिय और हित करने वाला कोई कभी नहीं, यदि प्यार करने वाला कोई है तो श्रीराम जी, यह बात तुलसीदास जी ने विचार के कही है।

(२) जितने लोग यज्ञादिक कर्म करने में समर्थ हैं, उन्हें यज्ञादि से प्रसन्न होकर सुख देने वाले देव गण प्यारे हैं, और जो यज्ञादि करने में असमर्थ हैं उन्हें भी हित करने वाले मनुष्यादि प्यारे हैं, श्री तुलसीदास जी विचार कर कहते हैं कि हित और प्रिय को त्याग कर निष्काम, श्री रामजी से प्रेम करने वाला कोई भक्त न दिखा पड़ा।

तुलसी उद्यम करम जुग, जब जेहि राम सुदीठि।
होइ सुफल सोइ, ताहि, सब सन्मुख प्रभु तनु पीठि ७५

श्री गोस्वामी जी का वक्तव्य है कि पूर्व जन्म के कर्मानुसार उसी का उद्योग सुफल होता है जिस के ऊपर श्रीराम जी

की कृपा दृष्टि होती है, और वह कार्य भी सुफल होता है, और उस कार्य के करने वाले के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होजाते हैं, तथा भगवान सामने हो जाते हैं और वह कर्मठ अपने देह से विमुख हो जाता है

(२) गोस्वामी जी कहते हैं कि (जब जेहिं) जब जिस के ऊपर (राम सुडीठि) श्रीराम जी की कृपा दृष्टि (होइ) होगी, तभी (ताहि सब) उस के सब होंगे, और (सोइ) वही (उद्यम करम जुग) उद्यम और कर्म का जोड़ा (होइ सुफल) सफल होगा, और जब (तन पीठ) देह से विमुख होगा तब (संमुख प्रभु) श्रीराम जी सामने प्राप्त (होई होंगे।

(३) गोस्वामी जी कहते हैं कि जितना परिश्रम मनुष्य व्यापारादि के द्वारा धन प्राप्ति के लिये करता है। अथवा आत्यन्तिक कल्याण के लिये जितने यज्ञादिक कर्म वह करता है, वह सब सुफल तभी होते हैं, जब श्री रामजी अपनी कृपा दृष्टि उस पर डालते हैं और उसी के साथ यह भी होता है कि सब लोग उसके (सन्मुख) अनुकूल हो जाते हैं, और श्रीराम जी का दर्शन अथवा ब्रह्मदर्शन भी उसे प्राप्त होता है और सब देहाभिमान उसका जाता रहता है।

प्रेम कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूंठ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूठ ॥ ७६ ॥

लोग श्रीराम जी के प्रेम स्वरूप मनोवाञ्छित फलके देनेवाले वृक्ष को त्याग कर विषय स्वरूप कलिकाल वृक्ष के ठूंठ का सेवन करते हैं, और चाहते हैं स्वार्थ' लौकिक सुख, 'परमार्थ' मोक्ष सुख, यह सब मनोरथ झूंठे हैं। वर्ण ४७ दोहा कच्छ है।

कै तोहिं लागें रामप्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहिं।
दुमहँ रुचै जो सुगम, सो, कीबे, तुलसी तोहिं ॥ ७७ ॥

याते श्रीराम जी तुझे प्यारे लगे, जैसे "कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमिदाम, तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागो मोहिं राम" तथा युवतीनां यथा यूनि, यूनां च युवती तथा, "मनोऽभिरमते तद्वन् मनो मे रमतां त्वयि" इसी बात को भर्तृहरि जी कहते हैं कि कैसे राम जी प्रिय लगें

"सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारा रवीन्दुषु
विनामे मृगशावाद्या: तमोभूतमिदं जगत्"

प्रदीप के रहते हुये, अग्नि के भी रहते हुये, तारा सूर्य, चन्द्रमा इनके भी रहते यह सारा संसार मुझे उस मृगशावाक्षी के बिना अन्धकारमय दिखाता है। उदाहरण में जैसे शबरी आदि,। अथवा तूही श्रीराम जी का प्यारा हो, अर्थात् उनकी ऐसी सेवा करें जिससे वही तेरा प्यार करें जैसे हनुमदादिक। हे तुलसी इन दोनों कामों में जो काम सुगम समझ पड़े वही तुम्हें करना चाहिये। वर्ण ३४ दोहा नर है।

निज दूषण, गुण राम के, समुझे तुलसी दास।
होय भलो कलिकालहूं, उभय लोक अनयास॥ ७८॥

गोस्वामी जी कहते हैं अपने दूषण समझे कि मुझ में क्या दोष है, या मैं दोषस्वरूप हूं. और श्रीराम जी के सब गुण ही समझे या उन्हें साक्षात् गुणदेव ही समझे, यथा "राम सुस्वामि, कुसेवक मो सों, निज दिशि देखि दयानिधि पो सों" तो कलियुग में भी अचानक ही दोनों लोक भले हो जायँ, यथा

"समुझि समुझि गुणग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाऊं
तुलसीदास अनायास रामपद पइहौं प्रेम पसाऊं"

तुलसी दुइमां एकही खेल, छांड़िछल खेलु ।
कै करु ममता राम सों, कै ममता परिहेलु ॥ ७९ ॥

श्री तुलसी दास जी कहते हैं, कि छलको छोड़के नीचे लिखे दो खेलों में एक खेल अवश्य खेल, या तो श्रीराम जी सों प्रेमकर, नहीं तो अपनापन यानी अभिमान का त्याग करदे, अर्थात् जब २ श्रीराम जी से प्रेम करेगा तब तो वे तुझे अपना ही लेंगे, संसार से वैराग्य कर लेगा तब भी उन्हीं का प्रेम अनायास तुझे प्राप्त होगा, जिससे बिगरी जनम अनेक की सुधरेगी । वर्ण ३४ वृत्त मराल है ।

निगम अगम साहब सुगम, राम सांचिली चाह ।
अम्बु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग मांहि ॥८०

भावार्थ—वेद से भी अप्राप्य त्रिगुणातीत विभु श्री ! रामजी उसी भांति सुगमता से प्राप्य हैं जैसे जल । बिना अन्न के तो भले ही कुछ दिन जीवन रह सकता है किन्तु जल के बिना क्षण भर भी काम नहीं चल सकता । क्योंकि तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राण विनाशिनी । तथा जीविनां जीवनं जीवः एवम् जीवै जीव अहार बिना जीव जीवै नहीं । इस लिये जल जैसा आवश्यक पदार्थ जैसे सब जगह प्राप्त है । वैसे ही आत्यन्तिक कल्याण के लिये श्री रामजी भी सर्वत्र प्राप्त हैं । केवल सांचिली चाह चाहिये । नहीं तो, ठाढ़े गंगा तटहु पै रटत पियास पियास, की कहावत चरितार्थ है ।

सन्मुख आवत पथिक ज्यों, दिये दाहिने वाम ।
तैसोई हो तसु आप को, त्यों ही तुलसी राम ॥ ८१

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे राम सीधे भक्ति मार्ग से आता हुआ पथिक (मुमुक्षु) दक्षिण और बाम मार्ग को त्यागता

है और ज्यों ही (तैयसीर) यह मार्ग समाप्त हुआ त्योंही वह आप का हो जाता है। अर्थात् दक्षिण बाम मार्ग को छोड़ के भक्ति मार्ग से आता हुआ पथिक अन्त में प्राप्य स्थान आप ही को पा जाता है। यथा माघे' त्वमग्र भूमिर्निरपाय संश्रयः, या, तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेयनाय' और जब आप को पा गया तब आप के उस धाम में पहुंच जाता है जिस के लिये गीता में श्रीमुख का ही वाक्य है । "यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमंमम।

(२) तुम्हारे दाहिने या बायें देने पर जैसे सामने आता हुआ पथिक भी दायाँ या बायाँ देता है वैसे ही हे राम आप के लिये भी है जब जीव आप की कृपा शरणागत होता है तब आप की कृपा से अनुग्रहीत होता है परन्तु जब आप को बिसार के दूसरी ओर चला जाता है तब वह अपने कर्मानुसार आप ही दुःख उठात है "भवदंघ्रिनिरादर के फलये।

राम प्रेमपथ पेषिये, दिये विषय तनु पीठि ।
तुलसी केंचुरि परिहरे, होत सांपहू दीठि ॥७२॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि विषय की ओर पीठ देके अर्थात् उसे त्याग के श्री राम जी के प्रेममार्ग को देखो, क्योंकि साँप के भी केंचुलि के गिरने पर ही दृष्टि उत्पन्न होती है, केंचुलि रहते तो वह अन्धा रहता है।

तुलसी जौ लौं विषय की-मुधा माधुरी मीठि ।
तौ लौं सुधा सहस्त्र सम--राम भगति सुठि सीठि ॥८३

तुलसी दास जी कहते हैं कि जबतक विषय की झूंठी मिठाई मीठी लगती है, तबतक हजारों सुधा के समान राम जी की भक्ति अत्यन्त निरस लगती है। विषय की मिठाई मीठी अवश्य है, क्योंकि

उसका अनुभव रसना द्वारा होता है, मगर है मुधा, अर्थात् निष्प्रयोजन, यानी रोग पैदा करने वाली क्यों कि "आपातारम्या विषयाः पर्यन्त परितापिनः विषय भोग ही के समय भले लगते हैं, पीछे तो परिताप देते हैं। उस मिठाई ने रसना में अपना अधिकार ऐसा जमाया कि सुधा भी उसके सामने फीकी पड़गई, किन्तु मेरे मित्रो! समझ लेना कि विषय की मुधा माधुरी ने जहां रोग उत्पन्न किया तहां खाट में पड़के सेरों कफ को उगलते ही मिलोगे। तब सुधा सहस्रसम रामभगति को चाहो गे, जिसका मिलना उस समय महा कठिन होगा, क्यों कि "प्राणप्रयाण समये कफवातपित्तैः कंठावरोधन विधौ स्मरणं कुतस्ते" इसलिये अभी से मुधा माधुरी त्यागो, और रामभगति सुधा सहस्रसम का आश्रय लो, नहीं 'तो पूरी खींचा तानी में पड़ोगे न मुधा माधुरी ही खा सकोगे न सुधा सहस्रसम रामभगति ही का पान कर सकोगे'।

जैसो तैसो रावरो, केवल कोसलपाल ।
तौ तुलसी को है भलो, तिहूँलोक तिहुँकाल ॥८४॥

हे कोसलपाल! चाहे जैसा बुरा या भला होऊं, यदि केवल आप का ही रहूं 'तो तीनों लोकों में' तीनों कालों में मेरा भलाही भला है, नहीं तो कुछ नहीं सिवाय कष्ट के ।

है तुलसी के एक गुन, अवगुन निधि कहैं लोग ।
भलो भरोसो रावरो, राम रीझिवे जोग ॥ ८५ ॥

लोग कहते हैं कि तुलसी अवगुण (बुराई) का भाण्डार है, किन्तु एक गुण है उसपर मुझे पूरा भरोसा है और हेराम! वह आपके प्रसन्न करने के योग्य है अर्थात् कितना भी बुरा क्यों न होऊं पर आपको प्रसन्न करना जानता हूं।

(२) वैसे तो लोग तुलसी को अवगुन की खान बताते ही हैं, और है भी ठीक। क्यों कि बाहरी कोई भी सम्पत्ति हमारे पास ऐसी नहीं है जिसपर सांसारिक लोग हमपर रीझैं। परन्तु एक बड़ाभारी गुण है वह है श्री रामजी का भरोसा। अर्थात् श्री सीताराम जी भलाई ही भलाई करना जानते हैं—

प्रीति रामसों, नीतिपथ, चलिय, रागरिस जीति।
तुलसी संतन के मते यहै भगति की रीति ॥८६॥

श्री राम जी से प्रीति करके मोह और क्रोध को जीति कर नीतिपथ पर चलिये, तुलसी दास जी कहते हैं कि संतो के मत से यही भक्ति की रीति है।

(२) अब गोस्वामी जी इस भाव पूर्ण दोहे के द्वारा स्पष्टरीति से भक्ति की प्राप्ति का सुगम मार्ग बताते हैं, वे कहते हैं कि श्री राम जी की प्रीति हृदय में रखकर अपने कुल व धर्म के अनुसार सत्य को ग्रहण कर, रागद्वेष को त्याग कर संतजनों के मत से चलिए। अर्थात् सत्संग करिये क्यों कि 'बिनुसत् संग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई, सत्संगति मुद मंगलमूला, सोई फल सिध साधन सब फूला।

सत्यवचन, मानस विमल, कपट रहित—करतूति।
तुलसी रघुवर सेवकहिं, सकै न कलयुग धूति ॥८७

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो सत्य बोलने वाला है, और जिसका मन पवित्र है, जिनके कार्य छल से रहित हैं ऐसे श्रीराम के भक्त को कलियुग धोखा नहीं दे सकता है।

तुलसी सुखी जो राम सों, दुखी सो निज करतूति।
करम बचन मन ठीक जेहि, तेहि न सकै कलिधूति ८८

श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि जिसको जितना सुख प्राप्त है वह केवल श्री राम जी की कृपा ही से है। और जिसको जितना दुःख प्राप्त है उस दुःख का कारण जीव स्वयं ही है क्यों कि हठ से भगवान की शरणागत नहीं होता। किन्तु जिस मनुष्य के मन वचन कर्म इन तीनों मे अभेद्यएकता है अर्थात् जो मन में सोई उसकी वाणी में तदनुसार ही कर्म भी करता है ऐसे जीव का कलियुग कुछ भी नहीं कर सकता।

नातो नाते राम के, राम सनेह सनेहु।
तुलसी मांगत जोरिकर, जनम जनम शिव देहु ॥८६

तुलसी दास जी कहते हैं, हे शिव! आप का और मेरा राम के नाते से नाता है, अर्थात् 'आप जिस स्वामी के भक्त हैं, मैं भी उसी का भक्त' हूं इस लिये हम हाथ जोर कर यही मांगते हैं कि जन्म जन्म में (सनेहु) दया करके श्री राम जी का (सनेहु) प्रेम देवो।

(२) कहीं २ इस दोहे के चतुर्थ चरण में शिवकी जगह 'विधि' है वहां अर्थ ऐसा करना चाहिये, गोस्वामी जी हाथ जोर कर मांगते हैं कि हे विधे! श्री राम जी के नाते दार हैं शिवादिक भक्त, उनसे मेरा नाता, तथा राम जी के प्रेम के जो प्रेमी हैं, उनसे मेरा स्नेह दीजिये।

(३) गोस्वामी जी शंकर जी से प्रार्थना करते हैं कि हे शिव! इस जन्म में तथा आगामी जन्मों में जो नाता हो, वह श्री राम जी के सम्बन्ध में ही हो और जिस किसी से स्नेह हो उसका भी कारण केवल श्री राम जी का प्रेम ही हो!

सब साधन को एक फल, जेहि जान्यो सोइ जान।
ज्यों त्यों मन मन्दिर बसहिं, राम धरे धनुबान ॥९०॥

जप, यज्ञ, यम, नियमादिक सम्पूर्ण साधनों का फल यह है कि जैसे हो तैसे मन रूप मकान में धनुष और बाण को धारण किये हुये, श्री राम जी निवास करें, यह बात जो जानता है, वही जानता है।

जो जगदीश तो अति भलो, जो महीश तो भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरन अनुराग ॥६१॥

यदि श्री राम जी जगत के मालिक हैं, तो बहुत अच्छा है, और यदि 'महीश' पृथ्वीपति राजा हैं तो भी हमारे सौभाग्य की बात है, तात्पर्य यह कि श्री राम जी के चरण का प्रेम तुलसी दास जी जन्म भर चाहते हैं।

परहुँ नरक, फलचारि सिसु, मींच डाकिनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को जो फल सो जरि जाउ ॥६२॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं नर्क में पड़ूं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप बालक को मृत्यु अथवा डाकिनी खाजाय, और भी अगर कोई राम जी के प्रेम का फल होता है सो भी जल जाय। मतलब यह कि राम के सनेही फलों की इच्छा ही नहीं करते वे तो नरलोक, स्वर्ग, मोक्ष, सब को तृण की भांति मानते हैं, वे तो केवल आराध्यदेव के पद की धूल के भूखे हैं, देखो भागवत में श्री शुकदेव जी क्या कहते हैं।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं,
न पारमेष्ठ्यम् न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिं न पुनर्भवं वा,
वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥

जो जगदीश के चरण की धूल के भिखारी हैं वे स्वर्ग, सम्राट्‌पद, ब्रह्मदेव का पद, चन्द्रलोक, योग सिद्धि, या संसार में पुनर्जन्म नहीं चाहते।

हित सों हित, रति राम सो, रिपु सो वैर तिहाउ।
उदासीन सब सों सरल, तुलसी सहज सुभाउ ॥६३॥

अपने कुटुम्बियों से हितकर, श्री रामजी से प्रेम कर, वैरियों से वैर को छोड़, इतना होने पर भी सबसे उदासीन रह, ऐसा सरल सीधा सुभाव हे तुलसी! तुम्हारा हो। अथात्‌ 'पुरुषस्तु पुष्कर पलाशवन्निर्लेपः, जैसे अथाह जल में अनेक ऊंची तरङ्गों से हिलता डुलता भी कमल कभी जल में डूबता नहीं, वैसे ही तुमभी जगत के यावत्‌ कार्यों के करने पर भी उनमें लिप्त न हो। केवल त्रिगुणातीत श्री राम जी के रूप का मन में ध्यान करो।

तुलसी ममता रामसों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये सब पार ॥६४॥

तुलसी दास जी कहते हैं जिन्हें श्री राम जी से प्रेम है, जो संसार भर को एक दृष्टि से देखते हैं, जिन के मोह, क्रोध और कोई दोष, तथा दुख नहीं है, और जो श्री राम जी के दास हो गए हैं, वे संसार से पार हैं या जीवन्मुक्त हैं।

रामहिं उर करु, राम सों ममता, प्रीति, प्रतीति।
तुलसी निरुपधि राम सों-भये हारे हू जीति ॥६५॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री राम जी को हृदय में ध्यान, करो उन्हीं को अपनावो, उन्हीं से प्रीति, करो उन्हीं पर विश्वास करो, अर्थात्‌ उन्हीं कोशलाधिपति को भजो तो निरुपाधि अर्थात्‌

उपाधिहीन त्रिगुणातीत भगवान् श्री राम जी से (हारे भये हू) भली भाँति भजन न करने पर भी जीत ही है अवश्य ही मन वाञ्छित फल प्राप्त करनें की सम्भावना है ।

तुलसी राम कृपालु सों, कहि सुनाव सव दोष ।
होय दूवरी दीनता, परम पीन सन्तोष ॥ ६६ ॥

हे तुलसी ! तुम कृपालु श्री राम जी से अपने सब दोष कह सुनावो, तो दीनता दुर्बल पड़ जाय और, संतोष अच्छी तरह से मोटा हो जाय, अर्थात् दीनता इतनी दुर्बल पड़ जाय, कि संतोष की मोटाई देखकर पास भी न फटक सके ।

सुमिरन सेवा, राम सों, साहव सों पहिचानि ।
ऐसेहु लाभ न ललक जो, तुलसी नितहित हानि ॥ ६७

श्री राम जी जैसे स्वामी का स्मरण करना, श्री राम जी जैसे स्वामी की सेवा करना, तथा पहिचान करना, इतनें वड़े लाभ में भी यदि प्रसन्नता न हुई, तो नित्य ही अपनें हितकी हानि है । ऐसा गोस्वामी जी का कथन है ।

(२) श्री तुलसी दास जी कहते हैं कि श्री राम जी का स्मरण, सेवन, पहिचान, जैसे बड़े कार्यों के लाभ में भी जो अभिमान से प्रसन्न नहीं होता अर्थात् उतावला नहीं हो जाता, उसकी समझलो कि नित के हित चाहनें वाले कुटुम्ब आदि से किसी तरह की हानि नहीं, अर्थात् कुटुम्बी अपनें प्रेम वन्धन में जकड़ते भी हैं किन्तु वह उनमें मिला हुआ भी प्रेम की फसरी में नहीं फँसता, क्योंकि उसका चित्तो श्री राम जी की छवीली छवि में अटक गया है दूसरी जगह वह प्रेम कैसे कर सकता है ।

करमठ 'कठमलिया' कहें ज्ञानी 'ज्ञान विहीन' ।
तुलसी त्रिपथ विहाय गो, राम दुवारे दीन ॥ ६८ ॥

कर्म कांडी लोग कहते हैं कि 'कठमलिया' है, व्यर्थ ही काठ की माला सरकाया करता है। ज्ञानी निर्गुण के उपासक कहते हैं कि यह अज्ञानी है इसकी दृष्टि स्थूल पदार्थ की ओर है। तुम्हारे पास आने की जल्दी के मारे उपासना को भी त्यागा, प्रिया इस भांति तुलसी तीनों मार्गों को त्याग कर दीन होकर श्री राम जी के दुवारे पड़ा है।

बाधक सब के सब भये, साधक भये न कोय।
तुलसी राम कृपालु से,—भलो होय सो होय ॥ ९९

उपरोक्त तीन कांडों के भक्तों से दुःखित होके श्री तुलसी दास जी कहते हैं कि हमारे बाधक सभी हो गये अर्थात् सभी हमारी चाल का खंडन करते हैं, मंडन कोई नहीं करता, अब तो श्री राम जी का भरोसा है, उन्हीं की कृपा से जो होना होय वह होय, अर्थात् वही जो चाहें सो मेरा उपकार करें, और तो किसी का भरोसा नहीं।

जाने जानन जोइये, बिनु जाने को जान।
तुलसी यह सुनि, समुझि हिय आन धरे धनुवान १००

इस दोहे में कुछ कूट का सा आभास है अतः पहिले इसके शब्दार्थ जान कर लेना चाहिये (जाने , जान कर के, या जानने वाला, (जानन) जानने की विधि या (जान) रस, या ज्ञान, (न) नहीं, (जोइये) खोजिये, या देखिये (बिनु जाने) बिना समझे, या न जानने वाला, या जो नहीं जाना गया है, या नहीं जाना जा सकता, (को) का, या कौन, ।

(जाने जानन जोइये) जान करके जानने की क्रिया में प्रवृत्त हो, क्योंकि (बिनु जाने को जान) बिना जाने कौन जान सकता है, भाव यह है कि जो कार्य तुझे सिद्ध करना हो उस में समझ

बूझ कर आगे बढ़, क्योंकि जब तक प्रारम्भिक कार्य समझ बूझ कर नहीं किया जाता, तब तक भावी कर्तव्य कार्य की सिद्धि सुलभ नहीं होती, इस लिये (तुलसी यह सुनि, समुझि) गोस्वामी जी कहते हैं कि पहिले श्रीराम जी के रूप, गुण, शील, दया, इत्यादि का ज्ञान, और उन की प्राप्ति का मार्ग शास्त्र, या सज्जनों द्वारा जान कर के और समझ कर के (हिय आन धरे धनुवान) हृदय में श्री धनुषधारी जी को लावो।

(२) (जाने जानन जोइये) जान ने वाले से अर्थात् सद्गुरु से जानने की विधि पूंछ, क्यों (बिनुजानेको जान) बिना जान ने वाले से अर्थात् अज्ञानी गुरु से किस ने तत्व को जाना है। अथवा (जाने) जान कर के अर्थात् अध्ययन वा गुरु द्वारा शिक्षा प्राप्त कर के (जानन जोइये) जानने में प्रवृत्त हो, किन्तु किसके जानने में प्रवत्त हो (बिनु जाने को जान) उस बिनु जाने को जिसे वेद भी नेति, नेति, कहता है, अर्थात् जिस का जानना अति दुस्तर है, क्योंकि जब साक्षात् श्रीराम जी स्वयं इस पुण्य भूमि में पधारे थे, उस समय उन के भ्रातवर्ग, महाराज दशरथ, और कौशल्यादि सब माता, एवं ज्ञानी गुरू वशिष्ठ, तथा सुमन्त जी को छोड़ के यह बात किस ने जानी थी कि परात्पर त्रिगुणातीत साक्षात् ब्रह्म यही श्रीराम जी हैं। महाराज जनक जैसे धुरन्धर तत्व ज्ञानी' जीवन मुक्त ने भी श्री विश्वामित्र जी के बताने ही पर जाना कि जिन के लिये 'जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं, यही हैं, फिर आज कल यदि परम वैष्णवों को छोड़ कर साधारण अन्य लोग महाराज श्रीराम जी को केवल राज पुत्र कहते हैं तो इस में आश्चर्य ही क्या? इसी लिये गोस्वामी जी कहते हैं कि उसी बिनु जाने को जान, इधर उधर के मिथ्या ज्ञान में भटकता मत फिर, यह मेरी बात सुन कर और फिर भली भांति समझ कर हृदय में धनुष और बाण के धारण करने वाले श्रीराम जी को लाकर रक्खे।

(३) इस बात को जान कर कि परात्पर ब्रह्म श्री जुगुल सरकार ही हैं, ज्ञान को मत खोज, यद्यपि गोस्वामी जी ज्ञान और भक्ति में किसी तरह का अन्तर नहीं मानते, क्योंकि उन्हों ने स्वयं कहा है 'ज्ञानहिं भक्तिहि नहिं कछु भेदा' तथापि इन दोनों में जो अन्तर का आभास कहीं कहीं झलकता है, उस की पूर्ण विवेचना उन्हों ने उत्तरकांड रामायण में स्वयं करदी है, जिस ज्ञान पर उन्हों ने कुछ कटाक्ष किया है वह है 'बिनु जाने' का ज्ञान, अर्थात् जिस का परिणाम शून्य वाद है गोस्वामी जी कहते हैं कि इस बात को किसी दूसरे से सुनो, और स्वयं समझो फिर हृदय में 'धनुष धारी, किसी अनिर्वचनीय व्यक्ति को सम्मान के साथ लाकर धरो।

(४) इस दोहे का तृतीय पाद। आनि धरे धनुजान भी है अतः उसका निम्न लिखित अर्थ होगा। केवल जानने में परिश्रम करने से ज्ञान नहीं मिल सकता, जो लोग यह कहते हैं कि पुराणादि कों में प्रभु का जो वर्णन है उसे हम केवल दूसरे के कथन मात्र से ग्रहण नहीं कर सकते, हम उसी बात को मानेंगे जिसे हमारी बुद्धि ग्रहण कर सकती है! गोस्वामी जी इसी का उत्तर यों देते हैं कि वह त्रिगुणातीत ब्रह्म मन बुद्धि का विषय नहीं हो सकता, क्योंकि वह बिन जाने का ज्ञान सर्वथा असम्भव है,

इस लिये गोस्वामी जो कहते हैं कि इस बात को मैंने भली भाँति सुना, और समझा, तब धनुषधारी श्री राम जी को हृदय में लाकर स्थापित किया।

संकर प्रिय, ममद्रोही, सिवद्रोही, ममदास।
ते नर पावहिं कल्पभरि घोर नरक महँ बास॥१०१

घोर नरक महँ बास मिलै नहिं तहूँ ठिकानो
ममरिपु शिवप्रिय, शिवरिपु ममप्रिय, हियजिन आनो।

'श्रीकर' दोनों एक, भक्त दोऊ के दूनों,
भेदी पावें नर्क, कौन कासों है नूनों ॥

हरिहर में भेद मानने वाले कल्प पर्यन्त भीषण नर्क में वास करते हैं, क्योंकि दोनों में अभेद्य ऐक्य स्थित है, 'यथा हरिस्तथा हरः' अथवा 'हरिहरयोर्न भेदः भेदश्चेत् प्रकृति प्रत्ययार्विभेदः, कलयति कश्चन मूढ़ः हरिहर भेदं विना शास्त्रम् । हरिहर में कोई भेद नहीं, यदि भेद है तो दोनों की प्रकृति (स्वभाव) और प्रत्यय (विश्वाश) में है। और भी देखिये 'हरिशंकरयोरभेदबोधो भवतु क्षुद्रधियामपीति यत्नात्, उभयार्थतया मयेद मुक्तम् सुधियः साधुतयैव शोधयन्तु, इस श्लोक से भी दोनो में ऐक्य स्थापन हुवा, और भी सुनिये 'भूतिभूषितभूषाय द्विजराजेन राजते, एकात्मने नमो नित्यं हरये च हराय च । एक विभूति से दूसरे लक्ष्मी से भूषित होते हैं, एक चन्द्रमा से दूसरे गरुड़ से शोभित होते हैं, ऐसे एकात्मा हरिहर को नित्य नमस्कार करताहूं', एक काशीजी में बैठके मृतकप्राय प्राणियों के कर्णकुहरों में पहुंच के मुक्ति देनेवाले 'राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे, सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम बरानने, इस मन्त्र को अपनी प्रिया से कहते नहीं अघाते, दूसरे उन भोले बाबा पै अपनी आंख के चढ़ाने में भी नहीं हिचकते, बात यह है कि भगवान् विष्णु, शंकरजी पर बराबर एक हजार कमल रोज चढ़ाते थे, एक दिन त्रिशूली के तरल चित्त में यह बात आई कि विष्णु हृदय से मेरी पूजा करते हैं या ऊपर से, इन की परीक्षा लेनी चाहिये, ऐसा विचार के भगवान् हरि के एक हजार कमलों में से एक कमल निकाल लिया, वही एक कमल हरि की पूजा के समय घटा, हरि बड़ी विचारगम्भीरता में पड़गये कि क्या करें, यदि फूल लेने जाते हैं तो पूजा खण्डित होती है, यदि नहीं जाते तो नियम भङ्ग होता है, अहा तत्क्षण उन्हें स्मरण आया मेरा नाम पुण्डरीकाक्ष (कमल नयन) है अतः मैं घटे कमल की जगह एक

नयन चढ़ा दूं, सोचा, और चढ़ा दिया, अपूर्व प्रेम है, अनन्य भक्ति है, अद्भुत उदाहरण है, एकता का सर्वोपरि नमूना है, इसी बात को श्री स्वामी शङ्कराचार्य जी ने अपने महिम्न में लिखा है इस मनोहर शिखरिणी को पढ़िये—

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर । जागर्ति जगताम् ॥

भगवान शंकर ने विष्णु के इस अचिन्त्य कार्य को देख कर भगवान् विष्णु को सुदर्शनचक्र दिया। अनेकों ऐसे उदाहरण हैं, अतः मानलेना चाहिये कि दोनों में किसी तरह का कोई अन्तर नहीं है।

विलग विलग सुख, संग दुख, जियन मरन सोइ रीति।
रहियत राखे रामके, गये ते उचित अनीति ॥ १०२

गये ते उचित अनीति सत्यही कहा गोसाईं,
राम राख के जियन, उचित, है सुखकर भाई।
तजना राम अनीति मरन जल्दी ह्वै जाई,
दुखकर जग सँग त्यागि, रामसों करो मिताई ॥

अन्वय-राम के राखे, विलग विलग रहियत, सुख, उचित,-जियन। राम के गये ते, संग रहियत, दुख, मरन, अनीति।

श्री राम जी का संग करके संसार से अलग अलग रहनेसे सुख की प्राप्ति होती है, और ऐसा जीना योग्य है, श्री राम जी को त्याग के संसार के साथ रहने से दुःख होता है, ऐसा करना अनीति है और शीघ्र मरण होता है।

(२) गये ते उचित अनीति राम को राखो इससे
पालक उनको त्यागि जगत पलता है किससे ?
हां ! जग सँग दो तोड़, रहो सबसों बिलगाई
वात पित्त कफ अलग जियहिं सबमिलि मरिजाई ॥

संसार में अलग अलग रहनें से सुख होता है, और संग करने से दुःख होता है यथा 'संगात् सञ्जायते कामः ।

जीने और मरने का भी यही तरीक़ा है जैसे वात, पित्त, कफ जब पृथक् होते हैं तब जीवन रहता है, जब एकमें मिलजाते हैं अर्थात् सन्निपात होजाता है तब जीवन जाता रहता है। हां! यदि सङ्ग किसी का भला है तो श्री राम जी का, क्योंकि 'रहियत राखे रामके' श्री राम जी का संग करने से जीव स्थिर रहता है, और उन के त्यागने पर बहुत बुराई होती है।

(३) (विलग विलग सुख) संसार से निर्लेप रहने से सुख की प्राप्ति होती है, और (संग दुख) जगत् के साथ संग दोष उत्पन्न करनें से दुःख मिलता है, और (जियन मरन सोई रीति) जियन, अमर जीवन, अर्थात् मोक्ष प्राप्ति करने के लिए, या उसके विपरीत 'मरन' आवागमन के चक्कर में पड़नें के लिए भी यही रीति है, अर्थात् सांसारिक सुख एवं पारमार्थिक सुख के प्राप्त्यर्थ एक ही मार्ग है, इस लिए गोस्वामी जी कहते हैं कि राम को हृदय में रखते हुए जीवन व्यतीत करो, क्यों कि उनके चले जाने से (उचित अनीति) मर जाना ही भला है ।

जाइ कहब करतूति विन, जाइ जोग बिनु छेम ।
तुलसी जाय उपाय सब, विना रामपद प्रेम ॥१०३॥

विना राम पद प्रेम व्यर्थ है कर्मकांड सब,
ज्ञान उपासन कांड होयँगे सफल कहो कब ।

जोग रोग करि देत भोग नेकहु चित लए,
तपो नियम हैं नष्ट, विना प्रभुके पद ध्याए ॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि जैसे बिना काम के कहना बेकार है, 'जोग' अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति, 'छेम बिनु, प्राप्त-पदार्थ की रक्षा के बिना व्यर्थ है, इसी तरह बिना राम के पद पर प्रेम के 'उपाय' कर्म ज्ञान उपासन सब व्यर्थ हैं।

लोग मगन सब जोग ही, जोग जाइ बिन छेम।
त्यों तुलसी के भावगत, राम प्रेम बिनु नेम ॥ १०४ ॥

राम प्रेम बिनु नेम छेम देता कब मन में,
नेकु चूक सों होय जोग सों सुपतन छन में।
जोगी जन को मान होत निज जोग ज्ञान का,
याते निश्चित पात, न भक्तहिं लेश मान का।

सब लोग अष्टाङ्ग योग में मग्न हैं मगर बिना क्षेम अर्थात् कल्याण के योग से पतित होने की बड़ी आशङ्का है, क्योंकि योगी को ज्ञान रहता है कि मैं योग की आठ सीढ़ियों में इतनी सीढ़ी चढ़ गया, बाक़ी सीढ़ियों पर मैं अभी चढ़ जाता हूं, इस ज्ञान के कारण उसमें अभिमान की मात्रा शेष रहती है। वैसे ही तुलसी दास जी के हृदय में यह बात है अर्थात् गोस्वामी जी का यह सिद्धान्त है कि बिना श्री राम जी के प्रेम के नियम जो जपादिसाधन हैं वे भी नष्ट हो जाते हैं।

राम ! निकाई रावरी है सबही को नीक।
जो यह सांची है सदा तो नीको तुलसीक ॥१०५

तौ नीको तुलसीक राम ! रावरी भलाई,
यदि सबही के अर्थ भली तो हमहुँ निकाई ।
जेहि को गुन है हितहि करन केवल, नहिं दूजो,
सो अनहित का करिहि, चहो जैसे ही हूजो ॥

तुलसी राम जो आदरै खोटो खरो खरोइ ।
दीपक काजल सिर धर्‌यो, धर्‌यो सो धर्‌यो धरोइ १०६

धर्‌यो सो धर्‌यो धरोइ तीन हूँ काल धर्‌यो है,
है उनकी यह वान झूंठ यामे न पर्‌यो है ।
चाहे जितनो बुरो, होय पर रघुवर पदरति,
तो श्रीकर, है भलो अगम पावत है सद्‌गति ॥

तुलसी दास जी कहते कि जो श्री राम जी से प्रेम करता है वह चाहे 'खरो खोटो' बहुत ही बुरा होय, या कैसा ही खोटा अथवा 'खरो' भला होय भला ही है,

जैसे काजल दीपक से प्रेम करता है तो दीपक भी उसे अपने शिरपे धरे रहता है दीपक विशुद्ध कान्ति होने पर भी खोटे खरे का विचार न करके काले काजल को बराबर अपने सिरपर धारण किए रहता है । धर्‌यो शब्द का कई वार प्रयोग करके भूत, भविष्य वर्तमान तीनों का निश्चय कहा है और अत्यन्त सत्यता सिद्ध की है ।

तनु विचित्र, कायर वचन, अहि अहार, मन घोर ।
तुलसी हरिभये पक्षधर, ताते कह सब मोर॥१०७

ताते कह सब मोर मुकुटु में पंख धरत अहि,
मोरेनहीं का दोष और गुण तनु आयो धरि ।
रंग विरंगी देह, मधुर भाषत, मन हरता,
पै खाता अहिवर्ग, कलुषता मन में धरता ॥

रंग विरंगी देह है, मधुर बोलता है, सर्प जैसे खल के भक्षण करने के लिए जिसका मन महाकठोर है, अर्थात् भलाई बुराई दोनों गुणों से युक्त है, किंतु जिसके पखने को भगवान कृष्ण अपने मुकुट में धारण करते हैं इसी लिये मयूर पक्षी को लोग 'मोर' कहके अपनाने लगे, जिसका पक्ष भगवान् स्वयं धारण करते हैं उसे कौन नहीं मानेगा, देखिये मयूर के पंख मयूर से कितने सकरूण, और सगर्व, शब्दों में कहते हैं ।

अस्मान् विचित्रवपुष शिचरपृष्ठलग्नान्,
कस्माद्विमुञ्चसि विभो ! नहि मुञ्च मुञ्च ।
हा ! हन्त ! केकिवर ! हानिरियं तवैव,
गोपाल मौलि मुकुटे भविता स्थितिनः ॥

हे विभो ! विचित्र शरीर वाले, बहुत दिन से पीछे लगे हुए हम लोगों को क्यों छोड़ते हो ? मत छोड़ो, मत छोड़ो, हे केकिवर । खेद है कि इस में तुम्हारी ही हानि है, हमारी किसी तरह की हानि नहीं क्यों कि हमारा तो तुमने जहां परित्यग किया तत्क्षण हम भगवान् कृष्ण के माथे के मुकुट में स्थिति करेंगे ।

(२) देखने में सुन्दर स्वरूप, या वढ़िया सम्पदा सूचक कपड़े पहिने, अथवा योगिया वस्त्र साजे हैं, बात बड़ी मीठी बोलते हैं, मतलब यह कि वह यथा कर्म और बाणी से बिल्कुल विमल हैं, किन्तु मन इतना दुष्ट है कि सर्प जैसे विषैले को भी खाने

की दम रखते हैं, या दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि 'मन मलीन तनु सुन्दर कैसे' विषरस भरा कनक घट जैसे, ऐसे होते हुये भी जिस आदमी का पक्ष भगवान् करते हैं उसको सब 'मोर ! मोर' कहके अपनाते हैं।

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहे केहि काज।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब निवाज॥१०८

राम गरीब निवाज दयाके सागर रघुवर,
कौड़ी जाके नहीं दियो ताके घर धनभर।
जाकी पूंछन रही ताहि विन सरत न कोइ विधि,
जो सस्तो था ताहि कियो महँगो करुणानिधि॥

घर घर मांगे टूक पुनि, भूपति पूजैं पांय।
जे तुलसी तब राम विनु, ते अब राम सहांय॥१०६

ते अब राम सहांय करत पद पूजा भूपति,
जे पहिले विन राम टूक मांगत थे घरप्रति।
'श्रीकर' ताकी बात कहा जाके हिय रघुवर,
भूपति की का चली नवत वहि सकल अमरवर॥

तुलसी राम सुदीठिते निबल होत बलवान।
वैर बालि सुग्रीव के कहा कियो हनुमान॥११०॥

कहा कियो हनुमान बालि सुग्रीव युद्ध में,
ह्वै विश्वासी सचिव, सखा नित के, विरुद्ध में।

तदपि हन्यो बलवान बालि को निबल प्लवगपति,
'श्रीकर' वह अति बली जासु है रघुवर गतिमति॥

श्री राम जी की कृपादृष्टि पड़ने पर निर्बल जीव बलवान हो जाता है, जैसे बालि और सुग्रीव के बैर में हनुमान जी ने क्या किया, अर्थात् कुछ भी नहीं मगर श्री राम जी की कृपादृष्टि होते ही हनुमान जी महावीर होगए।

तुलसी रामहिं ते अधिक, राम भगति जिय जान।
रिनियां राजा राम सों, धनिक भये हनुमान॥ १११

धनिक भये हनुमान अहा त्रिभुवन के ऊपर,
जाके रिनियां रहे रामसे राजा भूपर।
'श्रीकर' रघुवर भक्ति, राम जी सों है बढ़कर,
यह आनो हिय मांहि भक्त के चेरे रघुबर॥

कियो सुसेवक-धरम कपि, प्रभु कृतज्ञ जिय जानि।
जोरि हाथ ठाढ़े भये वरदायक वरदानि॥ ११२

वरदायक वरदानि जानि रघुवर को मारुति,
प्रभु कृतज्ञ कहुं वरन देंय याते करि शिर नति।
ठाढ़ भये करजोरि दास का धरम निभाये,
कछु न देहु हिय कहत, चरन दासता न जाये॥

श्री हनुमान जी ने सुसेवक अर्थात् अच्छे सेवक के धर्म को निबाहा। किन्तु जहां हृदय में यह बात उत्पन्न हुई कि (प्रभु कृतज्ञ) श्री राम जी किसी के किए को भूलते नहीं, वे प्रत्युपकार करते हैं,

वर देने वालों को भी वरके देने वाले हैं, इसलिये (जारि हाथ ठाढ़ेभये) हाथ जोड़ के खड़े होगये, अर्थात् आप मुझे कोई वर न देना, केवल अपनी सेवा ही इस दास से कराते रहना, क्योंकि सम्भव है कि आप कोई वर देदें जिस से श्री चरणों की सेवा से अनुपस्थित हो जाऊं।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥ ११३

प्राकृत नर अनुरूप किए प्रभु चरित सुहाये,
भगत हेतु भगवान भूप का तनु धारि आए।
पावन परम चरित्र पढ़त अरु सुनत सुखद जेहि,
मँगलमय कल्याण करत भूपर न कहो केहि॥

इस विषय का यह बहुत ही सुन्दर श्लोक है।

रामायणं भुवनपावनमेव कर्तुं
रामो भवँस्त्वमकृथा वनवासयात्रम्।
नो चेद्दशाननवधे जगदीशतुस्ते
भ्रूभँगमात्रमपि भूरितरप्रयासः॥

संसार के पवित्र करने वाला रामायण रचा जाय, इसी लिए आपने रामरूप धारण करके बनवास की यात्रा की, नहीं तो संसार के शासन करनेवाले आप के लिए दशानन के बध में भौं का टेढ़ी करना भी बड़ा भारी परिश्रम है।

ज्ञान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानन्दघन, करत चरित्र उदार॥ ११४

करत चरित्र उदार मनुज का सुन्दर तनु धर,
त्रिगुणातीत अजन्म ज्ञान मन चक्षु गिरा पर।
जेहि पर व्यापत नहीं जगत की कबहूं माया,
श्रीकर सोइ सच्चिदानन्दघन पावन आया॥

हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरे कृपासिन्धु भगवान॥११५

कृपासिन्धु भगवान भूमिभर हरने हारे,
हिरण्याक्ष अरु हिरण्यकशिप खल जिनने मारे।
मधुकैटभ वलवान दैत्य जिनने हनिडारा,
उन्हीं देवनें सदय राम का रूप सुधारा॥

सुद्ध सच्चिदानन्दमयकन्द भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥११६

संसृति सागर सेतु चरित शुचि करत मनुजकर,
शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म सुन्दर नर तनु धर।
सूर्यवंश अवतंस भानुकुल कमल दिवाकर,
'श्रीकर' सबपर सदय रहत रघुवर करुणाकर॥

बाल विभूषन, वसन वर, धूरि धूसरित अङ्ग।
बालकेलि रघुवर करत, बालवन्धु सब सङ्ग॥११७

बालवृन्द सबसङ्ग अङ्ग में धूरि लपेटे, *
लरिकाई के ललित गहन वर वसन समेटे।
बालकेलि प्रभुकरत हरत पुरवासी जन मन,
समुझि स्वजीवन सुफल कहत सब जयति अवध धन

श्रृणु सखि? कौतुकमेकं यन्नन्द निकेतनाङ्गणे दृष्टम्
गो धूलिधूसराङ्गो नृत्यति वेदान्त सिद्धान्तः॥

हे सखि। एक कौतुक सुनो जो नन्द के आंगने में मैने देखा है, गोधूलि से लदा फद है अङ्ग जिसका ऐसा वेदान्त का सिद्धान्त अर्थात् साक्षात् ब्रह्म नाच रहा है।

अनुदिन अवध बधावने नित तव मङ्गल मोद।
मुदित मातु पितु लोग लखि, रघुवर बाल विनोद ११८

रघुवर बाल विनोद नित्य नव देखि देखि करि,
मुदित होत पितु मातु लोग सब आनँद उर धरि।
डगर डगर में पौरि पौरि जन जन घर घर में,
बगर रही कल केलि बधाई अवधनगर में॥

राम अजिर राजत रुचिर बालक कोसल पाल।
जानु पानि चर चरित वर सगुन सुमंगल माल॥११६

सगुन सुमंगल माल बाल कोसल कृपाल के,
करत चरित शुचिचारु विनाशक पाप जाल के।

---

* नोट—क्या ही सुन्दर इस विषय में किसी ने कहा है।

नृप आंगन मे चलत हथेली घुटुवन के वल,
रघुवर नीके लगत भगत की करत कुसल कल ॥

नाम ललित, लीलाललित, ललित रूप रघुनाथ ।
ललितवसन, भूषनललित, ललितअनुज सिसुसाथ १२०

राम भरत लछिमन ललित सत्रुसमन सुभनाम ।
सुमिरत दशरथ सुवन सब पूजहिं सब मन काम ॥१२१

इन दोहों पर कुण्डलिया बांधना अथवा टीका या भाष्य करना सरासर शकर की शुद्ध चासनी में मिट्टी मिलाने का साहस करना है।

बालक कोसल पाल के, सेवक पाल कृपाल ।
तुलसी मन मानस वसत, मँगल मंजु मराल ॥१२२

मंगल मंजु मराल बाल कोसल कृपाल के,
सेवक पाल कृपाल नशावन क्लेशजालके ।
तुलसी क मन मानसरोवर राजहंस ह्वै,
वसत सदा सानन्द सिया सह नृपतितनयद्वै ॥

भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर हितलागि कृपाल ।
करत चरित धर मनुजतनु सुनत मिटहिं जगजाल१२३

सुनत मिटहिं जगजाल चरित इमि हैं रघुवरके
जिनहिं करत करुणेश मनुज का शुभतनु धरके।
जेहिं तनु धरत स्वभक्त भूमि भारत, अरु भूसुर
गऊ देव के सुहित करनहित दया धारि उर ॥

निज इच्छा प्रभु अवतरे सुर, महि, गो, द्विजलागि।
सगुन उपासक संग तहँ--रहे मोक्ष सब त्यागि ॥१२४

रहे मोक्ष सब त्यागि, साथमें अमर सिद्धवर,
सगुन उपासक लोग मोक्ष को मानि तुच्छतर।
जब सुर, द्विज, माहि, गऊ, सुमंगल करन हेतुहरि
अवधपुरी मे रहे मनुज का सुन्दर वपु धरि ॥

परमानन्द कृपायतन मन परि पूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्री राम ॥१२५

देहु हमहिं श्री राम आपनी प्रेम भगति को,
जो कमती नहीं परे 'नजेहि सों पाउँ विरति को'।
और न चाहत काम काम मनके पूरन प्रभु,
परमेश्वर आनन्दरूप करुणा के घरविभु ॥

वारि मथे घृत होय वरु सिकता ते वरु तेल।
विनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धांत अपेल १२६

यह सिद्धान्त अपेल बिना हरिभजन न कोई,
भवसागर तरिसकत बली कितनो किन होई।
जल मन्थन से भले निकरि घृत आये कबहूं,
बालू से हू तेल चहे हो जाये कबहूं ॥

हरिमाया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं,
भजिय राम सबकाम तजि अस बिचारि मनमाहिं १२७

अस बिचारि मनमाहिं बिना हरिभजन कियेसे
हरिमाया से जनित दोष गुन जा न सकत ए।
इस से भजिये राम काम सब तजके भाई
जो चाहत हो जगत दोष सारा छुट जाई ॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करत चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथकहिं भजहिं जीव ते धन्य ॥१२८

भजहिं जीव ते धन्य राम जैसे स्वामी को,
अति समरथ करुणेश सकल अन्तर्यामी को।
जो करुणाकर करत एक क्षण मे चेतन जड़,
जो जड़ कहँ चैतन्य करत को है वासों बड़ ॥

जो चेतन को जड़ वना देते हैं, और जड़को चैतन्य कर देते हैं ऐसे महाशक्तिमान् श्री रघुनाथ जी को जो जीव भजते हैं वे धन्य हैं। चेतन से जड़ और जड़ से चेतन होने के कुछ उदाहरण—

जीव का वास्तविक स्वरूप सत् चित् आनन्द है, परन्तु वह ब्रह्म से पृथक् होकर और प्रकृति के रूप में मोहित होकर—

यथा कपिल गीतायां

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः।
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥
स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः।
यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥

गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ।
विलोक्य मुमुहे सद्यः सइह ज्ञानगूहया ॥

क्रमशः नीचे उतरता २ स्थावरत्व को प्राप्त हो जाता है, पुनः अपनी दशा को देखकर ऊपर जाने के लिए उद्योग करता है, और अनेकानेक उपायों से ज्ञान प्राप्त करके अपने ब्रह्मस्वरूप को पुनः प्राप्त करलेता है, इस उतरने और चढ़ने के क्रम को भगवान श्री कृष्ण ने गीता में स्वमुख से ही कहा है यथा

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन पुरुषः परः ॥

पहिले जीव प्रकृति के कार्यों के देखने वाला रहा, फिर उसे मानने लगा, फिर उसका भर्ता बना पुनः उसका भोग करने लगा, पीछे जब अपना ज्ञान हुवा कि मैही प्रकृति को धारण करता हूं तब महेश्वर हुवा इसके बाद स्वरूप को प्राप्त हो कर परमात्मा बन गया इस उतरने चढ़ने का चित्र ऐसा है ।

(२) माताकी जड़ योनि में पुरुष का जड़ वीर्य प्रवेश करके चैतन्य ममुष्य स्वरूप को धारण करता है, और अन्त मे यानी अज्ञानावस्था में शरीर को छोड़कर पञ्चतत्वों में मिलकर बारम्बार अनेकानेक योनियों में भ्रमण करता है अर्थात् कभी जड़ कभी चेतन होता रहता है ।

(३) जड़ चेतन के अनेकों उदाहरण पुराणों में पाये जाते हैं नल और कूवर दो गन्धर्व महाराज नारद जी के शाप से वृक्षत्व को प्राप्त हो गये थे, जिनका श्री कृष्ण जी ने अपनी उलूखल लीला में उद्धार किया, इसी भांति पतिशापिता अहिल्या ने भी भगवान् के पदरज का स्पर्श करके पत्थर पने को छोड़कर, दिव्यज्ञानमय

देह धारण करके पति सामीप्य को पुनः प्राप्त किया, गोस्वामी जी यही बात भरत जी के बारे में कहते हैं 'जो न होत जग जनम भरत को', अचर सचर, चर अचर, करत को, ।

श्री रघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरे पाषान ।
ते मतिमन्द जे राम तजि भजहिं जाय प्रभुआन ॥१२६

भजहिं जाय प्रभुआन कौन उनसों है मूरुख,
तजि करके रघुनाथ, अनत जे कहुँ मानत सुख ।
सिन्धु तरे पाषान जासु बलते प्रताप के,
सुमिरत जाके मिटत महीधर बड़े पाप के ॥

तब लगि कुशल न जीव कहँ सपनेहुँ मंन विश्राम ।
जबलगि भजहि न राम कहँ सोक धाम तजिकाम ॥१३०

सोकधाम तजिकाम जगत के सारे जबतक,
जीव भजत नहिं रामचन्द्र को सुख से तबतक ।
कुशल कहां है धरी, मनोविश्राम कहां है,
चिन्ता चित में रहति दुःख ही दुःख महां है ॥

बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिन मोह न भाग ।
मोह गये बिनु राम पद होय न दृढ़ अनुराग ॥१३१

होय न दृढ़ अनुराग राम के पद पंकज में,
जब तक मोह न मिलत छार सम भू के रज में ।
बिनु हरि कथा न जाहि मोह यह बात ठीक है,
बिनु सतसंगति मिलति कहां हरि कथा नीक है॥

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्राम ॥ १३२

जीव न लह विश्राम कबहुं सपनेहुँ मां भाई,
रामचन्द्र की कृपा बिना यह सच है सांई।
किन्तु भगति बिन द्रवत नहीं भगवान राम हैं।
बिनु विश्वाश न होति भगति यह सच निकास है॥

सोरठा

अस विचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुवीर करुनाकरे सुन्दर सुखद ॥ १३३

सुन्दर सुखद सुजान राम श्री करुणाकर को,
यहि ते भजिए त्यागि मोह सब सीतावर को।
संसय तजिए सकल कामना पूरण होइ है,
मन मे धरिए धीर आपदा सारी खोइ है॥

भाववस्य भगवान, सुखनिधान करुणाभवन।
तजि ममता, मद, मान, भजिय सदा सीतारमन १३४

सीता रमन सदैव भजिय चित से सब भाई,
तज कर के निज भाव 'आपनी 'और 'पराई'।
विद्या, जाति महत्व, मान, मद, तजिए सारा,
सुख निधान भगवान भजो करुनाआगारा॥

कहँहि विमल मति सन्त, वेद पुरान विचारि अस,
द्रवैं जानकी कन्त, तब छूटे संसार दुख ॥ १३५

दुख छूटे संसारजनित जब सीता के वर,
भावबस्य श्रीराम सदय ह्वै द्रवैं स्वजन पर ।
कहते हैं यह बात विमल मति संत सकल जन,
चारों वेद विचारि, देखि कर निखिल पुरानन ॥

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु ।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिय हरि भगति बिनु १३६

विनु हरि भगति न कभी किसी को सुख मिलता है,
विनुविराग रवि कहां भक्ति पंकज खिलता है ।
बिना ज्ञान के नहीं कभी होता विराग है,
बिनु गुरु पावै ज्ञान किसी का नहीं भाग है॥

रामचन्द्र के भजन विनु जो चहै पदनिर्वान,
ज्ञानवन्त अपि सोइ नर पसु विनुपूंछ विखान॥ १३७

पशु विनु पूंछ विखान, नहीं तो क्या है भाई,
ज्ञानवन्त ह्वै जो न भजत रघुवर सुखदाई ।
पर चाहत निर्वान ज्ञान सों, कहां धरा है,
बिना भक्ति के भये भूल में निरा परा है ॥

जरउ सो सम्पति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ,
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ ॥ १३८

यह सम्पति, और मकान, तथा सुख, एवं मित्र, और माता, पिता तथा भाई जल जाय, अर्थात नष्ट हो जाय जो श्रीराम जी के चरणारविन्द के सन्मुख होने पर स्वभाव से सहायता नहीं करते।

सेइ साधु गुरु, समुझि, सिखि रामभगति थिरताइ,
लरिकाई को पैरिवो तुलसी बिसरि न जाइ॥ १३९

साधु और गुरु की सेवा करने पर, और उनकी बताई हुई शिक्षा के समझ लेने पर, श्रीराम जी की भक्ति स्थिर होती है, अर्थात् हृदय में दृढ़रूप से अचल हो जाती है, जैसे लड़कपन का सीखा हुआ पैरना सीखने के पश्चात् बहुत दिनतक काम में न लाने पर भी अवसर पड़ने पर स्वयं प्रकट हो जाता है।

भाव यह है कि श्रीराम जी की भक्ति अलख और अव्यक्त है और उस की प्राप्ति का द्वारा केवल साधुजन व गुरु हैं, गोस्वामी जी कहते हैं कि साधु और गुरुजन की शिक्षा को प्रथम बालबुद्धि से ग्रहण करना चाहिये! यद्यपि प्रारम्भ में उसका भली भांति समझना कठिन है, तथापि उस दीक्षा को भाव पूर्वक हृदय में धारण करने से भक्ति स्थिर हो जाती है, और आगे चल कर यह विदित होता है कि गुरुजनों की सेवा वृथा नहीं की गई।

सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस,
राम कहैं जेहि आपनो तेहि भज तुलसीदास॥ १४०

जगत में जितने जरायुज, स्वेदज, उद्भिज, अण्डज, आदि हैं वे सभी श्रीरामजी के कहाते हैं, और सभी को श्रीराम जी की ही आशा है, किन्तु श्रीराम जी जिसे अपना कहते हैं, ऐसे प्राणी भक्त को हे तुलसी दास! तुम भजो।

जेहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरैं सुजान।
रुद्र देह तजि नेह बस, वानर भे हनुमान॥ १४१

जिस शरीर से श्रीराम जी में प्रीति हो, बुद्धिमान लोग उसी देह का आदर करते हैं, जैसे हनुमान जी श्री शंकर शरीर को छोड़ कर प्रेमवश वानर हुए।

जानि राम सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुखा ते सेवक भये, हर ते भे हनुमान॥ १४२

श्रीराम जी की सेवा में परमानन्द है, यह बात तुम समझ करके अनुमान कर सकते हो, यदि उदाहरण चाहते हो तो देखो श्रीराम जी से आयु में बहुत बड़े होने पर भी श्री हनुमान जी सेवक बने। और श्री शंकर से हनुमान (बन्दर) हुए।

तुलसी रघुवर सेवकहिं, खल डाटत मनमांखि।
बाजराज के बालकहिं लवा दिखावत आंखि॥ १४३

गोस्वामी जी कहते हैं कि दुष्ट क्रोधित होकर श्रीराम जी के सेवक को डांटता क्या है, मानों पत्तियों में बड़े वीर बाज के बालक को बटेर आंख दिखाता है।

रावन रिपु के दास ते, कायर करहिं कुचालि।
खर दूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि॥ १४४

रावण के रिपु श्रीराम जी के सेवक से जो दुष्ट बुरा व्यवहार करते हैं, वे नीच खरदूषन मारीच की तरह तुरन्त मर जायँगे।

पुन्य पाप जस अजस के, भावी भाजन भूरि।
संकट तुलसीदास के, राम करहिंगे दूरि॥ १४५

गोस्वामी जी अपनी और प्रत्येक जीव मात्र की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस शरीर में अनेकानेक पाप और पुण्य उस से उत्पन्न होने वाले अयश और यश भरे हुए हैं। और उन से निवृत्ति पाने का कोई मार्ग सिवाय इसके नहीं है कि वह श्रीराम जी का हो जाय, क्योंकि वही समस्त संकट दूर करेंगे।

खेलत बालक व्याल सँग, मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु ज्यों, राखत सिय रघुनाथ १४६

सर्प के साथ खेलते हुए, अग्नि में हाथ छोड़ते हुए, बालक की रक्षा प्राकृतिक माता पिता की भांति जगत् के माता पिता श्री सीताराम जी करते हैं।

तुलसी दिन भल साहु कहँ, भली चोर कहँ राति।
निशि बासर ताकहँ भलो, मानै राम-इताति॥ १४७

गोस्वामी जी कहते हैं, कि साहु को दिन भलो है, चोर को राति नीकी है किन्तु दिन और राति दोनों उसकी भली हैं जो श्री राम जी की (इताति) 'इताअत, अर्थात् आज्ञा मानता है!

तुलसी जाने सुनि समुझि, कृपा सिन्धु रघुराज।
महँगे मनि कञ्चन किये, सौंधे जग जल नाज॥ १४८

तुलसीदास दूसरों के मुख से सुन कर, और फिर स्वयं समझ कर यह जानते हैं कि श्री राम जी कृपा के समुद्र हैं, देखो न, उन्हों ने जगत में अत्यन्त आवश्यक पदार्थ जल और अन्न को तो (सौंध) 'स्वर्घ, अर्थात् सस्ते कर दिये, जिस से उनके यावत् जीवों को किसी तरह का कष्ट न हो, और मणि, तथा, सोने को महँगा कर दिया।

सेवा सील सनेह बस करि परि हरि प्रिय लोग ।
तुलसी सेवा राम सों, सुखद सुयोग बियोग ॥ १४६

(प्रिय लोग) माता पिता बन्धु इत्यादि, सेवा और सील तथा स्नेह के वसीभूत हैं, इन्हें (परि हरि करि) त्यागि कर गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीराम जी की सेवा से सुख के देने वाला (सुयोग) अच्छा समय प्राप्तकर क्यों कि प्रियलोगों का (वियोग) अर्थात् संयोग चिरस्थायी नहीं हैं ।

(२) गोस्वामी जी कहते हैं कि प्रिय लोग सेवा, सील और स्नेह से प्रथम वश करके फिर त्याग कर के वियोग का दुख देते हैं, किन्तु श्रीराम जी की सेवा से सुख के देने वाला सुयोग प्रिय लोगोंका प्राप्त होता है अर्थात् इसमें कभी दुःख नहीं और इसका बियोग नहीं हो सकता, अथवा श्री राम जी की सेवा सुयोग और बियोग दोनों मे ही सुख देने वाली है, प्रियलोग जरा सी भी त्रुटि में त्याग कर देते हैं इसी बात को गोस्वामी जी अपनी विनय पत्रिका में लिखते हैं यथा 'सुत वनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबही ते, अन्तहुँ तोहिं तजेंगे पामर तू न तजै अबहीं ते,।

(३) गोस्वामी जी कहते हैं कि सांसारिक सम्बन्धियों के साथ इस तरह का व्यवहार कर, कि उनकी सेवा करते और उनके साथ शील और सनेह से कार्य करते हुए भी उनसे किसी सुख की आकाङ्क्षा न करके मानसिक स्नेह त्याग दे, और श्री राम जी की शरणागत हो जाय, तब इनका संयोग और वियोग सुख के देने वाला होगा ।

चारि चहत मानस अगम चनक चारि को लाहु ।
चारि परिहरे चारि को दानि चारि चख चाहु ॥१५०

इस दोहे के अर्थ करने के पहिले कुछ शब्दों के अर्थ जान लेना चाहिए यथा चारि इतने हैं, चारवर्ग, धर्म अर्थ काम मोक्ष ४ वेद ४ युग ४ वर्ण ४ आश्रम ४ अवस्था पैदा, वृद्धि, क्षीण, मृत्यु, ४ अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ४ रिपु काम, क्रोध, लोभ, मोह ४ गुण साम, दाम, दण्ड, भेद, ।

(चारि) चारों वेद और (अगम) शास्त्र (मानस चहत) मन से चाहते हैं, क्या (चारि को लाहु) धर्म अर्थ काम मोक्ष का लोभ, कैसे (चनक) अर्थात् बड़ी शान से, किन्तु यदि (चारि परिहरे) चारों वेद व धर्मादि नहीं प्राप्त हैं, तो (चारि को दानि) पूर्वोक्त चारों के देनेवाले श्री राम जी को (चारिचख) भीतर और बाहर की मिलकर चारों आंखों से (चाहु) चाहो ।

तात्पर्य यह कि वेद और शास्त्र बड़ी शान से चारों वर्ग चाहते, हैं सम्भव है कि उनसे मिलजाते हों, किन्तु यदि तुम उन चारों को नहीं जानते तो उन सबों के देने वाले की शरणागत होवो, जिससे पदार्थ चतुष्टय एकही साथ मिल जाय ।

(२) (चारि चहत) चारों वेद वर्ण व आश्रम (चनक) बड़े जोर से चाहते हैं क्या (मानस अगम) जो मनसे भी अप्राप्य है ! सो क्या (चारि को लाहु) धमार्थ काम मोक्षोंकी प्राप्ति, गोस्वामी जी कहते हैं कि यह परिश्रम बेकार है, अतः (चारिपरिहरे) इनचारों को छोड़कर (चारि को दानि) चारों पदार्थों के देनेवाले तथा (चारि चख) चारों तरफ़ जाने वाली है आंख जिनकी ऐसे कमलनयन को (चाहु) चाहो । अथवा हे चारिचख चारों ओर जाने वाली नेत्रो ! मनसे भी अप्राप्य जो है धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति उसे चारों वेद व वर्ण व आश्रम चाहते हैं, किन्तु बिना चारि के देनेवाले श्री राम जी के यह परिश्रम व्यर्थ है अतः तुम इधर उधर भटकते न फिर के श्री राम जी को चाहो ।

लव निमेष परमान जुग वरष कलप सरचंड।
भजहि न मन ! तेहि रामकहँ काल जासु कोदंड ॥१५१

गोस्वामी जी कहते हैं हेमन ! तू उन राम को क्यों नहीं भजता, जिनका काल धनुष है, और लव, निमेष, परमान, जुग, वर्ष, कल्प, तीक्ष्ण बाण हैं। भाव यह कि निरन्तर रहने वाला समय जिसमें अनेकों युग युगान्तर बीतगए धनुष हैं, और उस धनुष से निकलने वाला जो है 'लव' अर्थात् आंख का एकवार पलक भांजने का समय, तथा 'निमेष' यानी ६० लव का समय, और 'परमाणु' अर्थात् ६० निमेष का काल ६० परमाणु का १ पल और ६० पल की १ घड़ी और ६० घड़ी की दिनरात ३० दिन का महीना १२ महीने का वर्ष और १०० वर्ष की मनुष्य का आयुष्य है, इसके बाद सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग यह चारों युग हैं, और चारों युगों के एक हज़ार वार बीत जाने के समय को कल्प कहते हैं, वह कल्प ब्रह्मा का एक दिन होता है, ब्रह्मा के १०० वर्ष बीत जाने पर महाप्रलय या महाकल्प होता है, यह सब जिसके तीखे बाण हैं ऐसे श्री राम जी को हे मन। तू क्यों नहीं भजता !

सूधे मन सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति ॥१५२

यदि मन निश्छल है, और वचन स्वच्छ है, कर्म प्रशंसनीय है, तो हे तुलसी ! श्री राम जी में प्रेम उत्पन्न करने वाली सारी विधि भी सीधी ही है, क्योंकि भगवद्वाक्य है 'निर्मल मन जन सो मोहिं पावा, मोहिं कपट छल छिद्र न भावा'।

(२) गोस्वामी जी कहतेहैं कि भगवत् की प्रेम स्वरूपिणी माता सब-भांति अनुकूल ही है, अर्थात् उस में सब तरह की सुगमता ही है, 'प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्' इस दोहे में

कवितासौंदर्य सूधे शब्दों के कारण अत्यन्त सूधा हो गया है, सुधाई इस हद तक बढ़ गई है कि जो कोई उस रास्ते से जाता है उस को सीधा ही होकर चलना पड़ता है ज़रा भी टेढ़ा हुआ कि समझो अलग ही पड़ा है, हम समझते थे कि सीधा होने से रास्ता बड़ा ही सुगम होता है, परन्तु अब ज्ञात हुआ कि दुर्गम भी होता है, ज़रा भी टेढ़े हुए कि रास्ता ग़ायब ! वाहरी सिधाई !

वेष विशद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइए, भए विषय जल मीन ॥ १५३

वेष निर्मल, है वाक्य मधुर है, किन्तु मन कटु अर्थात् अत्यन्त निर्दयी है, और (करम मलीन) अर्थात् हिंसा करने में भी नहीं हिचकता, ऐसी दशा में तथा 'विषय' रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द स्वरूप जल की मछली होने से श्री राम जी को नहीं पा सकते। ऐसा गोस्वामी जी का कथन है।

(२) गोस्वामी जी ऊपर के दोहे द्वारा बता आए हैं कि मन वाणी और कर्म तीनों निर्मल होना चाहिये, उसी की पुष्टि इस दोहे द्वारा करते हैं कि वेष और वाणी विशुद्ध है परन्तु मन पवित्र नहीं है, तो कर्म अवश्य ही मलीन होगा, दूसरे चरण के द्वारा मन की अशुद्धता का कारण भी बताते हैं, कि मन रूप रसादि विषयों में लगा हुआ है, जब तक ऐसी दशा है तब तक भगवत् के पद की प्राप्ति दुर्लभ है।

वचन वेश तें जो बनै, सो बिगरै परिनाम ।
तुलसी मन ते जो बनै बनी बनाई राम ॥ १५४

गोस्वामी जी कहते हैं जो बात वेष से बनती है वह अन्त में बिगड़ जाती है, यथा 'उघरे अन्त न होहि निबाहू काल नेमि जिमि

रावण राइ' किन्तु जो मन से बनती है वह स्वयं बनी है, अगर फिर भी कुछ क़सर रह गई तो श्री राम जी के द्वारा बनाई समझो यथा 'किए कुबेस साधुसन्मानू। जिमि जग जामवन्त हनुमानू' विशेष बात इस दोहे में यह है कि मन के शुद्ध होने से बनी तो अवश्य. अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का साधन हुआ तो ज़रूर, किन्तु कैसे बनी, श्रीराम जी के द्वारा बनीं, बिना उनकी कृपा के दुर्लभ पदार्थ का लाभ दुर्लभ है।

नीच मींच लै जाइ जो, राम रजायसु पाइ।
तो तुलसी तेरो भलो, नतु अन भलो अघाइ ॥१५५

मृत्यु श्री राम जी की आज्ञा पाकर अगर नीचे ख़राब योनि या नर्क में भी ले जाय तो हे तुलसी ! तेरा भला है। इसके विपरीत यदि मृत्यु तुझे स्वर्ग में भी लेजाय तो तेरी अत्यन्त हानि हैं, अर्थात् श्री राम जी की इच्छा से यदि नीचे जायगा तो उनकी कृपा से उनका स्मरण बराबर बना रहेगा, और इस स्मृति सागर में प्रेम को तरङ्गों से निरन्तर उल्लसित रहेगा, किन्तु यदि उनकी विना इच्छा के उच्च पद पर भी भाग्यवश तू आरूढ़ हुवा तो भी तुझे कष्टही का अनुभव करना पड़ेगा देखिये कुन्ती क्या कहती है।

नाथ ! योनिसहस्त्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्ति रच्युतास्तु सदा त्वयि ॥

जातिहीन अघजनम महि, मुकुत कीन्ह अस नारि।
महामन्द मन! सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥१५६

जाति में छोटी पाप से जिसका पृथ्वी पर जन्म हुवा ऐसी नारी शवरी को जिन्हों ने मुक्त किया ऐसे प्रभु को भूलके रे महामूर्ख मन ! तू सुख चाहता है।

बन्धु वधूरत कहि कियो बचन निरुत्तर वालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि ॥१५७

जिन्हों ने छोटे भाई की स्त्री में तू रत है, अनुजवधू कन्या के के तुल्य होती है, ऐसा कहकर बालि को निरुत्तर किया, अर्थात् उसे मारा, गोस्वाभी जी कहते हैं कि उसी दोष से दूषित यानी बालि अनुजवधू में रत था तो सुग्रीव ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी जो कि माता की पदवी को प्राप्त है, उसमें निरत था तब भी उन्हीं प्रभु ने उसकी कुचालि पर ध्यान भी नहीं दिया। यथा 'जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि वाली, सोइ सुकण्ठ पुनि कीन्ह कुचाली' 'सोई करतूति विभीषण केरी, सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी'।

वालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को विरद गरीब निवाज ॥१५८॥

(बलसालि) बल से शोभित होनेवाले रावणादिकों में बली वालि को मार करके सखा सुग्रीव को कपियों का राजा बनाया, गरीबों की रक्षा करनें वाले कृपालु श्री राम जी की यही प्रशंशा है।

कहा विभीषन लै मिलो, कहा विगार्‌यो वालि।
तुलसी प्रभुसरनागतहिं सब दिन आए पालि ॥१५९

विभीषण क्या लेकर मिला था जिससे उसे लङ्का का अधिप बनाया, वालि ने क्या बिगाड़ा था जो उसे मारकर उसकी जगह दूसरा अधिकारी स्थापित किया। गोस्वामी जी कहते हैं इन बातों के विचारनें में कुछ लाभ नहीं, यह प्रभु की आदत है कि वे शरणागत को सदैव पालते हैं, यथा रामस्तवराजे 'वालि प्रमथनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम्' वालि के बध करने का कारण यह है कि शरणागत सुग्रीव को राज्य मिले।

तुलसी कोसलपाल सों, को सरनागत पाल।
भज्यो विभीषन वन्धुभय भंज्यो दारिद काल॥ १६०

गोस्वामी जी कहते हैं कि कोसलपाल श्री राम जी की समान शरणागत की रक्षा करने वाला कौन है, विभीषण भाई रावण के भय से श्रीराम जी की शरणागत हुआ, किन्तु भगवान राम ने उस की दरिद्रता और काल (मृत्यु) दोनों मिटा दिया।

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस! अस राम कर, समुझि परे कहु काहि॥ १६१

हे खगेस गरुड़! जो दुष्ट के लिये वज्र से भी कठोर है, और और ग़रीब के लिये कुसुम से भी कोमल है ऐसे श्रीराम जी के चित्त को कहो कौन समझ सकता है।

वलकल भूषन, फल असन, तृन सज्या, प्रभु प्रीति।
तेहि समयन लंका दई यह रघुवर की रीति॥ १६२

जिस समय छालों के कपड़ों से शोभित होते थे. फल खाते थे, तिन की सथरी पर सोते थे, वृक्षों से कौटम्बिक स्नेह करते थे उस समय विभीषण को लङ्का दी, यह रघुवर की दया की रीति है, अर्थात् जब समीप में ऐश्वर्य की दिखाऊ सामग्री पास नहीं थी तब स्वर्ण की पुरी प्रदान की इसलिये उनका जैसा दानी दुनियां में कौन हो सकता है।

जो सम्पति शिव रावनहिं, दीन्ह दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ १६३

शंकर जी ने जो ऐश्वर्य रावण को दस मस्तक देने पर दिया, वही सम्पदा श्री राम जी ने अपने शरणागत विभीषण को संकुचित

होकर दी, मतलब यह कि उस समय इस से बड़ी और कोई सम्पत्ति न थी जो देते, लङ्का का दान तो बहुत ही छोटा दान है नहीं देते तो अमोघ दर्शन का फल विभीषण को और क्या होता भगवान ने तो स्वयं ही यह कह कर लंका दी है कि 'यदपि तुमहिं कछु इच्छा नाहीं (मगर) दर्शन मम अमोघ जग माहीं।

अविचल राज विभीषनहिं, सकुचि दीन्ह रघुराज।
अजहुं विराजत लंक पर, तुलसी सहित समाज॥ १६४

रघुवंशियों के राजा राम ने शरणागत विभीषण को कभी न जाने वाला राज्य दिया, जिसे पाकर आज भी वह अपनी समाज के साथ लंकापुरी में विराज रहा है अर्थात् शरणागत को प्रभु ने ऐसा राज्य दिया जो कैसा भी कुसमय आने पर छूट नहीं सकता।

कहा विभीषन लै मिल्यो, कहा दियो रघुनाथ।
तुलसी यह जाने बिना, मूढ़ मीजि हैं हाथ॥ १६५

जो लोग विभीषण के चरित का केवल प्राकृतिक रूप लेते हैं उन्हें यह देख कर कि विभीषण ख़ाली हाथ भगवान से मिले थे जो कि धर्म शास्त्र से वर्जित है यथा 'रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं देवतां गुरुम्' इतने पर भी उन्हें लंका का राज्य तुरन्त मिल गया, एक तरह की डाह पैदा होगी जिस का कि वाह्यरूप हाथों का मलना है, परन्तु उसका आध्यात्मिक रूप देखने से यह भाव कदापि पैदा नहीं हो सकता है। विभीषण भक्त राजाओं की श्रेणी में हैं आप घोर पाप संयुक्त लंका में रहते हुए भी हमेशा भगवद् भक्ति में तत्पर रहते थे, जिसे कि उनका राम नामाङ्कित गृह सचित करता था, और उनका जीवन उन्हीं के कथनानुसार 'जिमि दसनन महँ जीभ विचारी' के भांति था। राजा के लघु भ्राता एवं मन्त्री होने की हैसियत से वह लंका का राज्य करते ही थे,

परन्तु इतना होने पर भी धर्मानुकूल व्रत धारण करके ज्येष्ठ भ्राता पिता सम रावण के कर्म का भरी सभा में घोर विरोध किया। और अपनी कुल राज्यलक्ष्मी तथा स्त्री पुत्रादिको त्यागकर भगवत् की शरण ग्रहण की। श्री राम जी नें उन्हें केवल राज्य ही नहीं दिया, बल्कि यह भी कहा 'पुनि (राज्य करने के पीछे) मम धाम सिधारेहु जहां सन्त सब जाहिं' यदि इतना ही देते जितना छोड़के वह आया था तो जगदीश्वर की उदारता में अधिकता ही क्या होती! बिना त्याग किए ही मूढ़ लोग हाथ मलते हुए जो कभी २ कहदेते हैं कि प्रभुनें किसी को भलेही क्यों न कुछ दिया हो, हमें तो कुछ नहीं देते, यह भूल है! अजी विभीषण का जैसा नहीं तो अपनी हैसियत के मुवाफ़िक कुछ त्याग करो और कुछ न मिले तभी ऐसा कहनें के अधिकारी होगे कि हमें कुछ नहीं दिया।

वैरिवन्धु निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलंक।
झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी साइँ असंक ॥१६६

विभीषण वैरी का भाई था, नीच निशाचर था, कलंको से भरा था, तब भी श्री राम जी नें उसका त्याग नहीं किया, किन्तु झूठे दोष के कारण सीता का परित्याग करदिया, इसी लिए गोस्वामी जी कहते हैं कि हमारे स्वामी बड़े असंक हैं, उन्हें किसी तरह की शंका नहीं कि कलंकी राक्षस का साथ करनें से तथा सती सीता का त्याग करनें से हमें समाज क्या कहेगा।

तेहि समाज कियो कठिन प्रन, जेहि तौल्यो कैलास।
तुलसी प्रभु महिमा कहौं सेवक को विस्वास ॥१६७

जिसने कैलास को हाथों से गेंद की भांति उठा लिया था उसी रावण की सभा में अङ्गद ने महाकठिन प्रण किया कि अगर मेरा पैर ज़मीन से कोई उठा दे तो 'फिरैं राम सीता मैं हारी,'। किन्तु

कोई पैर न उठा सका गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं प्रभुकी महिमा कहता हुं और सेवक का विश्वास बताता हूँ ।

कैलाश उठाने के बारे में महाकवि माघ देखिये क्या कहते हैं।

समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतांवरम्,
वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।
त्रसत्तुषाराद्रि सुतासस्सम्भ्रम-,
स्वयंग्रहाश्लेषसुखेननिष्क्रयम् ॥

भावार्थ—जिस रावण ने पृथ्वी के धारण करने वाले पर्वतों में श्रेठ कैलाश को उठाते हुए डरी हुई पार्वती का स्वयं शंकर जी के गले में लिपटने के द्वारा बदला दिया।

अर्थात् जिस समय रावण पर्वत कैलाश को उठा रहा था भगवती पार्वती ने देखो तो डरीं, और भंग पिए समाधिस्थ भगवान शंकर के गले में दौड़ कर लिपट गईं, यह लीला देख कर मतवाले औघड़ ने आंख खोल दी। और कहा रावण ने अच्छा ही किया, नहीं तो रूठी प्रिया को मनाते मनाते मेरी हालत तबाह हो जाती, तब भी ऐसा आलिंगन करती, इस ढंग से जो शंकर जी ने वर दिया था रावण ने उसका बदला दिया। उस की सभा में अङ्गद ने बहुत बहुत बड़ी बात कही. किन्तु सेवक को विश्वाश है कि मेरी बात करुणेश की कृपा से झूठी नहीं पड़ सकती। 'बिश्वाशो फल दायकः' प्रसिद्ध है।

एक अहीरिन सरजू पार कर के अयोध्या में रोज दही बेंचने आती थी, एक दिन कथा बांचते हु ए एक पंडित के मुख से सुना 'रामनामदृढ़ा नौका संसारार्णवतारिणी' अर्थात् राम नाम रूपिणी पोढ़ी नौका संसार समुद्र से पार करने वाली है, अहीरिन ने सोचा अगर ऐसा है तो सरजू का पार करना कौन बड़ी बात है, लौटते समय कुघाट में जाकर अपनी ओढ़नी सरजू में फैलादी,

'रामनाम दृढ़ा नौका सरयू पारतारिणी,' कहकर पार हो गई बहुत दिन के बाद उसने एकबार उन्हीं कथाकर, पण्डित जी को निमन्त्रित किया और उन्हें अपने घर लेजाने के लिये उसी कुघाट की ओर प्रस्थान किया, जाकर ओढ़नी उतार कर जल में छोड़दी. पण्डित जी से कहा आवो, पण्डित जी के अविश्वासी भाई कि इस चादर के ऊपर चढ़कर कैसे सरयू पार कर सकते हैं, अहीरिन के बहुत समझाने पर भी अविश्वासी लिये वह ज्यों ही जल में उतरे बहे, पण्डित जी ने कहा धोखा दिया उसने कहा धोखा कैसा, आपही ने तो कहा था (राम नाम दृढ़ा नौका संसारार्णव तारिणी) तब सरयू का पार करना कौन बड़ी बात है बहते हुए पण्डित जी ने कहा भद्रे विश्वासिनो यान्ति नाविश्वस्तास्तु मादृशाः।

सभा सभासद निरखि, पट पकरि, उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहों, वसनवेष यदुनाथ ॥१६८॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि सभा में बैठे हुए सभासदों को देखकर द्रौपदी ने जब अपना अञ्चल उठाकर, हाथ उठाया, अर्थात् सभासदों की ओर इसलिये देखा कि वे लोग उसका पट दुःशासन के द्वारा खिंचते देखकर भी नहीं बोलते, इसलिये उसने अपना अञ्चल उठाकर जगदीश से दया की भिक्षा माँगी, पुकारा (दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी) तब यदुनाथ श्रीकृष्ण जी ने वस्त्ररूप एकादशवां अवतार धारण किया, अर्थात् दस अवतारों के अतिरिक्त यह नया अवतार जगदीश ने लिया।

त्राहि तीन कह्यो द्रोपदी, तुलसी राजसमाज।
प्रथमचढ़ो पटविय बिकल, चहत चकित निजकाज१६९

गोस्वामी जी कहते हैं कि राजसभा में दुःशासन द्वारा पट खींचने के समय द्रोपदी ने तीनवार आहि २ पुकारा, प्रथम वार वस्त्र बढ़ा दूसरी वार भगवान विकल हो उठे अब क्या करूँ, किन्तु द्रोपदी ने जब तीसरी वार भी पुकारा तब तो उन्होंने निज काज अर्थात् दुष्टों के संहार के लिये मैंने अवतार धारण किया है यथा-यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्, परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। वह करना चाहिये यह बात चकित होकर आश्चर्य में आकर चाहा, चकित होने का हेतु यह है कि अरे दुष्टोंके संहार करनेका समय आगया।

सुख जीवन सब कोउ चहत, सुखजीवन हरि हाथ।
तुलसी दाता मांगनेउ, देखियत अबुध अनाथ १७०॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहता है, परन्तु यह नहीं जानता कि वह भगवान के आधीन है, दूसरे पद में इसी बात को दिखलाते हुए गोस्वामी जी समस्त जगत् को दो हिस्सों में बांटते हैं, एक तो वह कि जो अपने को धनी और दाता मानते हैं, दूसरे वह जो कि अपने को दीन दरिद्री समझते हैं, गोस्वामी जी कहते हैं कि यह दोनों अबुध हैं, दाता तो इसलिये अबुध है कि वह परमदाता परमात्मा को भूलकर अपने को दानी समझकर मिथ्याभिमान करता है, और दीन इसलिये अबुध (मूर्ख) है कि वह सर्वविश्व के स्वामी और महादानी को भूलकर उसके स्थान में छोटे से प्राकृतिक स्वामी को बिठाता है, और इसी कारण से यह दोनों अनाथ (दीन) भी हैं।

कृपिन देइ, पाइय परो, बिनु साधे सिधि होइ।
सीतापति सन्मुख समुझि, जो कीजै सुभ सोइ १७१

कंजूस दाम देवे, परे मिले, बिना कार्य साधन किए ही सिद्धि होवे, यही कथा, श्रीरामजी को सामने समझके जो कुछ किया जाय, वही कल्याण करनेवाला होय।

दण्डक बन पावन करन, चरन सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिं, खल तरहिं, होहि रंक ते राउ ॥१७२

दण्डकारण्य के पवित्र करनेवाले श्रीरामजी के चरण कमलों का ऐसा प्रताप है कि ऊसर जामें, खल तरे, कंगाल से राजा हुए। पौराणिक कथा ऐसी है कि दण्डक नाम का एक राजा था, उसने दैत्य गुरु शुक्राचार्य की कन्या से जबरदस्ती सम्भोग किया शुक्राचार्य ने पुत्री के मुख से दण्डक का यह बीभत्स कर्म सुनके भस्म होने का शाप दिया, वह भस्म होगया श्रीरामजी के आने से वह शुद्ध हुआ और पुनः लहलहा उठा, यथा जहँ जहँ राम चरण चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥ खरदूषण कवन्ध गृध्र शबरी आदि खलों का उद्धार हुआ, सुग्रीव रंकसे राजा हुए।

बिनहीं ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जलजोर।
रामलखन सियकरि कृपा, जब चितवत जेहि ओर १७३

बिना ही ऋतु के तरुवर फलने लगते अर्थात् बसन्तादि ऋतुओं में फलने वाले वृक्ष असमय फल फूल उठते, तथा शिलायें जोर से जल छोड़ने लगतीं जिस समय श्रीराम और लक्ष्मण तथा सीता जी जिसके ऊपर कृपाकर देखते। वृक्षों के असमय फूलने फलने के बारे में गोस्वामी जी कहते हैं, सब तरु फले रामहित लागी। ऋतु अरु कुऋतु काल गति त्यागी॥

सिला सुतिय भइ गिरितरे मृतक जिए जगजान।
राम अनुग्रह सगुन शुभ सुलभ सकल कल्यान॥१७४

श्रीरामजी की कृपा से सगुन और शुभ सुलभ हैं, तथा सकल कल्याण भी सुख से प्राप्त होते हैं जिनकी कृपा से पत्थर की सिला की नारी बनी, पर्वत समुद्र पर तैरे, मृतक जिये, यह समस्त संसार जानता है, यथा सुधावृष्टि भइ सब जग माहीं। जिये भालु कपि राक्षस नाहीं॥

सिला शाप-मोचन, चरन, सुमिरहु तुलसीदास।
तजहु सोच, संकट मिटहि, पूजहि मनकी आस॥१७५

हे तुलसीदास! सिला को शाप से छुटानेवाले श्रीरामजी के चरणों का स्मरण करो, संकट मिटैंगे, और मन की कामना पूरी होगी।

मुए जिआये भालु कपि, अवध बिप्र को पूत।
सुमिरहि तुलसी ताहि तू, जाको मारुत दूत १७६॥

हे तुलसी तू उसका स्मरण करे, जिसने मरे हुए बन्दर और रीछों को जिलाया, और जिसने अयोध्या में रहनेवाले एक ब्राह्मण के मरे लड़के को जीवित किया, और जिसका दूत पवन पूत है।

काल करम गुन दोष जग जीव तिहारे हाथ।
तुलसी रघुबर रावरो, जान जानकी नाथ॥१७७

हे जीव काल और कर्म, गुण कृत जितने दोष हैं वे तेरे हाथ हैं अर्थात् उनको जैसा चाहे तैसा तू बना सकता है क्योंकि हे तुलसी! जानकीनाथ श्रीरघुबर तेरे ही हैं, भाव यह कि जब जानकीनाथ तुझ पर दया करते हैं तो तू क्यों डरता है काल कर्म गुण दोष तेरा कुछ नहीं कर सकते।

गोस्वामी जी कहते हैं कि हे रघुनाथ! इस जगत् में जीव के काल कर्म गुण और जितने दोष हैं आपही के किए हुए हैं,

क्योंकि उनके आपही परम कारण हैं, यदि अन्य जीवों की भांति आपने इस जीव को भी भुला दिया तो भला इसमें ऐसी शक्ति कहाँ है जो इन महती शक्तियों का सामना करे, इसलिये हे जानकी नाथ ! आपसे नम्र निवेदन है कि यह आप जानते रहें कि तुलसीदास भी आपही का है ।

रोग निकर तनु, जरठपनु, तुलसी संग कुलोग ।
राम कृपालै पालिये दीन पालिबे योग ॥१७८॥

हे राम ! रोगों का समूह जिसके शरीर में है, और वृद्धावस्था है, साथ खराब लोगों का है ऐसे दीन तुलसी की कृपा करके रक्षा करिये । क्योंकि पालने के योग्य है ।

मो सम दीन न, दीन हित तुम समान रघुबीर ।
अस विचारि रघुबंशमनि हरहु विषम भवपीर ॥१७९

मेरे समान दूसरा दीन नहीं, और तुम्हारी समान हे रघुबीर दीन का कल्याण करनेवाला नहीं, इसलिये ऐसा सोचकर हे रघुबंशमणि ! मेरी बड़ी भारी व्यथा को हरो। दूसरे शब्दों में इसी बात को स्वामी श्री शंकराचार्य जी ने कहा है—

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा नहि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि ! यथा योग्यं तथा कुरु ॥

मेरे जैसा पातकी नहीं है और आपकी समान दूसरी कोई शक्ति पाप के नाश करनेवाली नहीं ऐसा समझकर हे महादेवि ! मां दुर्गे ! मेरे लिये जैसा समझो वैसा करो।

भव भुवंग, तुलसी नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत ।
चित्रकूट इक औषधी चितवत होत सचेत ॥१८०

संसार रूपी सर्प काटते ही ज्ञान हर लेता है, किन्तु तुलसीदास नकुल स्वरूप हैं जोकि चित्रकूट रूपी एक औषधी को देखते ही 'सचेत' ज्ञान समेत होजाते हैं। भाव यह कि संसार से जब गोस्वामी जी अत्यधिक व्यथित होजाते हैं तब चित्रकूट पर आकर निवास सुख शान्ति पूर्वक करते हैं, भवसर्प से ही अत्यन्त व्यथित होकर विनयपत्रिका में आप कहते हैं—

राग कान्हरा।

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु। कोपित कलि, लोपित मङ्गल मगु, विलसत बढ़त मोह माया मलु॥ भूमि विलोकु राम पद अङ्कित, बन विलोकु रघुबर विहार थलु। सैल शृङ्ग भवभङ्ग हेतु लखु, दलन कपट पाखण्ड दम्भ दलु॥ जहँ जग में जगजनक जगतपति, विधि हरि हर परिहरि माया छलु। सकृत प्रवेश करत जेहिं आश्रम विगत-विषाद भये पारथ नलु॥ न करु बिलम्ब, विचारु चारु मति वरष पाछिले सम अगिलो पलु। मन्त्र सो जपहि जाइ जो जपत भे अजर अमर हर अचल हलाइलु॥ राम नाम जप जोग करत नित, मज्जन पय पावन पीवत जलु। करिहैं राम भावतो मनको, सुख साधन अनयास महाफलु॥ कामदमन कामना कलपतरु सो युग युग जागत जगती तलु। तुलसी तोहिं विशेष बूझिए एक प्रतीति, प्रीति एकै वलु॥

होहुँ कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास।
साहब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास॥१८१॥

मैं श्री राम जी का सेवक अपने को कहलाता हूँ, और सब लोग मुझे रामदास कहते भी हैं, किन्तु श्री राम जी इस उपहास को सहते हैं, उपहास का कारण यह है कि श्री सीताराम जी जैसे तो स्वामी, और तुलसीदास जैसे सेवक, अर्थात् स्वामी और

सेवक में महदन्तर है कहां स्वामी कहां सेवक ऐसे सुस्वामी का ऐसा कुसेवक।

राम राज राजत सकल धरम निरत नरनारि।
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि॥१८२॥

श्री राम जी के राज्य में सम्पूर्ण नर नारी धर्म में तत्पर शोभित होते थे, न राग था, न क्रोध था, न दोष था, न दुख था, धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ सुख से प्राप्त होते थे।

राम राज सन्तोष सुख, घर बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोगबिलास॥१८३

श्री राम जी के राज्य में सन्तोष था, सुख था, घर और बन में हर भांति का सुभीता था, कल्पवृक्ष के समान सम्पूर्ण ऋतुवों में फल देने वाले वृक्ष थे, मनकी कामना पूरी करनेवाली कामधेनु की भाँति पृथ्वी थी, मनमाने भोग और बिलास प्राप्त थे।

खेती, बनि, बिद्या, बनिज, सेवा, सिलिपि सुकाज।
तुलसी सुरतरु सरिस सब, सुफल राम के राज॥१८४

खेती, मँजूरी, विद्या, व्यापार, सेवा, शिल्प आदिक सुकाज, श्री राम जी के राज्य में गोस्वामी जी कहते हैं कि कल्पवृक्ष के समान सब सुन्दर फलों के देने वाले थे।

दण्ड जतिन कर भेद जहँ, नरतक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥१८५॥

गोस्वामी कहते हैं कि मैंने ऐसा सुना है कि श्री रामचन्द्र जी के राज्य में दण्ड सन्यासियों के हाथ में था, और भेद नाचने

वाले गाने वालों के समाज में था, जीता जाता था मन। भाव यह कि कोई पाप करता न था तब दण्ड किसे दिया जाय, इस लिए वर्णाश्रमोचित दण्ड सन्यासियों के हाथ में ही रहता था, झगड़ा कहीं होता ही न था फिर भेद किस का किया जाय, इस लिए भेद के जानने वाला नाचने गाने वालों का समूह ही था, शत्रु कोई था ही नहीं अतः सब कोई मनही जीतता था।

कोपे सोच न पोच कर, करिय निहोरन काज।
तुलसी परिमिति प्रीति की, रीति राम के राज॥ १८६॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि छोटे आदमी के कोप करने पर कोई नाराज न होता था, ऐसे सहनशील आदमी रहते थे, तथा कोई किसी का निहोरे से कार्य न करता था, मतलब यह कि निष्प्रयोजन सब सब के काम में खड़े होते थे बदला देने लेने के भाव से नहीं, किसी का भी काम क्यों न हो सभी उसे अपना समझ कर करते थे सब का हर्ष और क्लेश सम था, इस तरह प्रीति की रीति की मर्यादा बँधी हुई थी।

मुकुर निरखि मुख रामभ्रू, गनत गुन्हहिं दै दोष।
तुलसी से सठ सेवकनि, लखि जनि परे सरोष॥ १८७

लोग सीसे मे अपना मुख देख के, श्री राम जी की भौं का स्मरण कर के कहते हैं कि उनकी टेढ़ी भौं अपनी हानि करने वाली है, किन्तु गोस्वामी जी कहते हैं कि मेरे जैसे सठ सेवक को तो कभी वह क्रोध से युक्त नहीं जान पड़ती, तात्पर्य यह कि जो असेवक हैं उन्हें स्वभाव से टेढ़ी श्री राम जी की भौं आपत्ति करने वाली जान पड़ती है, किन्तु श्री राम जी के बुरे भी सेवक को वही भौं सुन्दरता में परिणत समझ पड़ती है, अच्छे सेवक की तो चर्चा ही क्या है।

श्री राम जी ने अपने मुख कमल को सीसे में देखा तो अपनी टेढ़ी भौं को जोकि टेढ़ी होने के कारण परम सुन्दरता को प्राप्त है और टेढ़ा होना जिसका एक सुन्दर गुण है दूषित ठहराया इस पर गोस्वामी जी प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! मुझे जैसे शठ सेवक को आप की भौं क्रोध युक्त कभी नहीं दिखलाई पड़ती इस लिए इसको आप जैसा समझते हैं वैसा नहीं यह तो निहाल कर देने वाला है।

सहस नाम मुनि भनित सुनि, तुलसी वल्लभ नाम।
सकुचत हिय हँसि, निरखि सिय, धर्मधुरंधर राम ॥ १८८

व्यास जी के बनाये बिष्णु सहस्र नाम में अपना एक नाम तुलसीबल्लभ, (तुलसी के प्यारे) सुनके श्री राम जी हृदय में हँसते हैं कि बिचित्र नाम है, पूरा कलंक लगाने वाला है, और श्री सीता जी को देख कर सकुचाते हैं कि सीता अपने हृदय में क्या कहेगी ? इसका कारण यह है कि श्री राम जी धरम की धुरी के धारण करने वाले हैं।

गौतम तिय गति सुरति करि नहि परसति पग पानि।
हिय हरषे रघुवंशमनि प्रीति अलौकिक जानि १८९ ॥

सीता जी श्रीरामजी के चरण अहिल्या की याद करके नहीं छूती हैं, तात्पर्य यह कि अहिल्या इनके चरण का स्पर्श करके पतिलोक को प्राप्त हुई मैं इन्हें छूकर स्वर्गादि में न चली जाऊँ, जो प्राण-धन का बियोग होजाय, अथवा अहिल्या पत्थर होगई थी उसने चरण स्पर्श करके अभीष्ट स्थान को प्राप्त किया, मेरी करांगुलियों की अँगूठियों में न जाने कितने प्रस्तररत्न लगे हैं कहीं वे चरणों को छूकर स्त्री न बन जांय जो मुझे अनेक सौतों का सामना करना पड़े, और यह मुझसे अपनी मनोबृत्ति हटाकर

किसी दूसरी में लगायें जो मुझे इनके विरह का क्लेश उठाना पड़े, सीता जी के इस अलौकिक स्नेह को देखकर रघुवंशमणि श्रीरामजी हृदय में हर्ष को प्राप्त हुए।

तुलसी बिलसत नखत निशि शरद-सुधाकर साथ।
मुकुता झालरि झलकजनु राम सुजस-शिशु हाथ१६०

गोस्वामी जी कहते हैं कि रात के समय शरद ऋतु के चन्द्रमा के साथ नक्षत्र शोभित होते हैं, वह मानों श्रीरामजी के सुयश रूपी लड़के के हाथ में झलकती हुई मोतियों की झालर है। यहां रूपालङ्कार है।

रघुपति कीरति कामिनी, क्यों कहे तुलसीदासु।
सरद-अकास प्रकास ससि,चारु चिबुक-तिल जासु१६१

श्रीराम जी की कीर्ति रूपिणी कामिनी का वर्णन गोस्वामी जी कहते हैं मैं कैसे करूँ क्योंकि शरद ऋतु के चन्द्रमा के प्रकाश होने पर जो आकाश दिखाता है वह सीता जी के सुन्दर होंठ का तिल है भाव यह कि जो उजेला होती है वह श्रीरामजी की कीर्ति कामिनी है आकाश तिल है तभी तो वह सत्य होने के कारण कृष्ण दिखाता है नहीं तो अन्धकार की तरह उसका क्या नाश नहीं होजाता उजेली आने पर।

प्रभु गुन गन भूषन बसन बिसद बिसेष सुदेस।
राम सुकीरति कामिनी तुलसी कर तव खेस १६२ ॥

श्रीरामजी की कीर्ति रूपिणी कामिनी के गुणों का समूह कपड़े और गहने हैं, जो बड़े साफ हैं, और जो बड़ी कीमत के हैं और जो अच्छे स्थान में अर्थात् जिस स्थान पर जो चाहिये वहाँ पर स्थित हैं, गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीरामजी के कार्य कीर्ति

कामिनी के केश हैं, अर्थात् जैसे केश बढ़ते और पीछे पड़ते जाते हैं वैसे ही अनेकों कामों को करते उनकी वृद्धि करते उन्हें पीछे छोड़ते श्रीरामजी आगे ही बढ़ते जाते हैं अथवा कीर्तिकामिनी का सभी कुछ विशद है किन्तु तुलसी की काली कविता केश है क्या तुलसी की कविता सरकार की यशोराशि के समान उज्वल होसकती है. किन्तु उनके सङ्ग में बालों की भांति जब चाहेंगे आप ही उसे सम्हालेंगे, मगर बढ़ते हुए बालों के समान घट नहीं सकती।

रामचरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विशेष बड़ लाहु १९३॥

श्रीरामजी का चरित चन्द्रमा की किरणों के समान सबको सुख देनेवाला है, सज्जन रूपी कुमुद के चित रूपी चकोर को विशेष हित करनेवाला है, और बड़े लाभ का करनेवाला है।

रघुवर कीरति सज्जननि, सीतल, खलनि सुताति।
ज्यों चकोर-चय चक्कवनि, तुलसी चांदनि राति १९४

श्रीरामजी की कीर्ति सज्जनों को अत्यन्त ठण्ढक पहुँचाने वाली है, और खलों के लिये बड़ी तात (गर्म) है, जैसे जो चाँदनी रात चकोरों को आनन्द देती है वही चकवा नामक पक्षियों को जलानेवाली दुःखदा होती है।

राम कथा मन्दाकिनी, चित्रकूट चितचारु।
तुलसी सुभग सनेह वन, श्रीरघुवीर विहारु १९५

श्रीरामजी की कथा मन्दाकिनी नाम की नदी है और सज्जनों का सुन्दर चित्त चित्रकूट के समान है, गोस्वामी जी कहते हैं कि सौभाग्यवान लोगों का स्नेह जंगल है जहां पर श्रीसीताराम जी विहार करते हैं।

स्याम-सुरभि-पय बिसद अति गुनद, करहिं तेहि पान
गिराग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान १९६

जैसे श्यामा गऊ का दूध जोकि अत्यन्त स्वच्छ और अत्यन्त गुण को देनेवाला है, सब कोई पीते हैं, वैसे ही ग्राम्य (गवांरू) भाषा में हम श्रीसीताराम जी का यश गाते हैं, उसे सुजान (चतुर) लोग सुनें तात्पर्य यह कि गऊ अवश्य श्यामा है किन्तु उसका दुग्ध साफ़ और गुणदाता है यह वैद्यक में बताया है कि किस रंगकी गौ का कैसा दुग्ध होता है देखिये।

कृष्णाथा गो भवेद् दुग्धं वाताहारि गुणाधिकम्,
पीतायाः हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत्।
श्लेष्मलं गुरु शुक्लायाः चित्र रक्ता च वात हृत॥

कृष्णा गऊ का दूध बहुत गुणवाला और बात व्याधि छुटाने वाला होता है, और पीली का दूध पित्त तथा बात का टारनेवाला है, शुक्ला गऊ का दूध गुरु होता है कई रंग वाली तथा लालवर्ण वाली गऊ का दूध वात का हरण करता है। इसी भांति मेरी कविता है यद्यपि गवांरू बोली में, मगर स्वच्छ है अत्यधिक गुण पहुँचाने वाली है उसे चतुर लोग सुनें और पढ़ें।

हरिहर जस सुरनर गिरा, बरनहिं सुकवि समाज।
हांडी हाटक घटित चरु, रांधे स्वाद सुनाज १९७॥

सुकवियोंके समाज भगवान विष्णु और शिव का गुणानुवाद संस्कृत और भाषा में कहते हैं। (हाटक घटित हांड़ी) सोने की बनी बटलोही में और (चरु) माटी के बर्तन में पकाया हुआ अनाज बड़े स्वाद का होता है। अर्थात् चाहे भाषा में वर्णन करें

कहे संस्कृतमें "भाव अनूठो चाहिए भाषा कोऊ होय" मगर एक बात ऊपर से कहनी होगी कि माटी के पकाये अन्न में सुगन्ध भी उत्पन्न होजाती है सुवर्ण के वर्तन में नहीं।

सोरठा—रामस्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिवर।
अविगत अकथ अपार नेति २ नित निगमकह १९८॥

हे राम ! तुम्हारा स्वरूप बाणी से परे है और बुद्धि से भी परे है। किसी के जानने योग्य नहीं कोई कह नहीं सकता, और उसका कोई अन्त नहीं, वेद सदैव नेति नेति कह कर उसका वर्णन करते हैं।

हित उदास रघुबर विरह, बिकल सकल नर नारि।
भरतलषनसियगति समुझि, प्रभुचषसदासुबारि १९९

अपने वियोग से व्याकुल सकल नर नारियों के वास्ते श्री रामजी उदास रहते हैं, भरत लषन सीता की गति याद कर के प्रभु श्रीराम जी अपने नेत्रों में सदैव जल भरे रहते हैं, धन्य है, भगवत् के परम प्रेम को।

सीय सुमित्रा-सुवन गति, भरत सनेह सुभाउ।
कहिबे को सारद सरिस जनिबे को रघुराउ॥२००॥

श्री सीता जी की तथा सुमित्रा जी के पुत्र लक्ष्मण जी की दशा और भरत जी का प्रेम और स्वभाव वर्णन करने में सरस्वती के समान निपुण होना चाहिये, और जाननेके लिये श्रीरामजीकी ही समान व्यक्ति चाहिये। अन्यथा जाना नहीं जा सकता। गोस्वामी जी भरत की महिमा कहते हैं 'जो न होत जग जनम भरत को, अचर सचर चर अचर करत को। भरत महा महिमा सुनु रानी जानहिं राम न सकहिं बखानी।

तिलपर राखेउ सकल जग, विदित विलोकत लोग।
तुलसी महिमा राम की, कौन जानिबे जोग ॥२०१॥

इस दोहे का प्राकृतिक भाव से अथवा स्थूल दृष्टि से किया हुआ अर्थ तो विदित ही है। प्रत्येक चक्षुधारी अपनी आँख में स्थित तिल द्वारा इस विस्तृत जगत् को देखता है। अंग्रेजी साइंस द्वारा यह निश्चित है कि जो काला तिल आँख में दिखलाई देता है वह शीशे के आकार का बना है। उसीके द्वारा गया हुआ प्रकाश एक बहुत छोटी जगह में पड़कर बाह्य जगत् के स्वरूप को चित्र की भाँति खींच देता है। और नाड़ियों द्वारा उसका स्वरूपज्ञान मस्तिष्क को होता है। आध्यात्मिक भाव इसका यह है कि यह काला तिल ईश्वर है यथा "स एषः पुरुषो दिए प्रकाशते एष आत्मा" गोस्वामी जी ने भी मानस में कहा है "ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहे" और सांख्यशास्त्र द्वारा भी यह निश्चित है कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड एक हिरण्मय अण्डकोष रूपी महत् तत्त्व के भीतर है। और महत् तत्त्व भगवत् की बुद्धि है। यदि कोटियों ब्रह्माण्डों का भगवत् की बुद्धि में स्थित होना सिद्ध है तो तिल मात्र पर जगत् का होना सत्य ही है।

माया जीव सुभाव गुन, काल करम महदादि।
ईश अंकते बढ़त सब, ईश अंक बिनु वादि ॥२०२॥

ईश अंक बिनुवादि जीव माया सुभाव गुन।
काल करम महदादि, सकल यह हैं जैसे सुन ॥
अंक रहे दशगुना लाभ होता है भाई।
अंक गये रह गये सुन्न कछु हाथ न आई ॥

जानी राम न कहि सके, भरत लषन सिय प्रीति।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति २०३

हठ सठता की रीति यही मेरी है भाई।
जो चाहत हैं कहन भरत सिय लखन भलाई॥
इनकी प्रीति न कभी जानि हूं क रघुनन्दन।
जिह्वा से कहि सके वाक्य चतुरन में वन्दन॥

सब विधि समरथ सकल कह, सह सांसति दिनराति।
भलोनिबाहेउ सुनि समुझि, स्वामिधर्म सबभांति २०४

स्वामि धर्म सब भांति निबाहा श्रीरघुनायक।
शास्त्र गुरुन सों जानि समुझि मन है सुखदायक॥
समरथ सब कोउ कहै दुःख यह निशि दिन म्हकर।
सबको सबकुछ दियो लाज रखिबे को रघुबर॥

भरतहिं होइ न राजमद, विधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँक कांजी सीकरनि, छीरसिन्धु बिनसाइ २०५

छीरसिन्धु विनशाय खटाई के सीकर से।
यह हो सकता नहीं यही तुलना नरवर से॥
विधि हरिहर पद पाइ गर्व नहिं होय भरत को।
फिर क्या छोटा राज्य छुटा सकता है ब्रत को॥

सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खिलवार।
तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार २०६

जिस समय भरद्वाज मुनि के आश्रम में भरत जी गये हैं उसी समय का वर्णन गोस्वामी जी रूपकालंकार से करते हैं। सम्पत्ति, ऐश्वर्य जो कि भरत के सत्कार के लिए एकत्र हुआ था चकई हुई, और भरत चक हुए, मुनि भरद्वाज की आज्ञा खेल हुई तथा उस रात में आश्रम पिंजड़ा हुआ अर्थात् नियम है कि रात में चक चकई एक स्थान में नहीं रहते परस्पर भिन्न हो जाते हैं। अगर कोई खेल कर के जबरन् उन दोनों को पींजड़े में बन्द भी कर दे तब भी वे एक दूसरे से मिलते नहीं। इसी तरह भरत को रात भर रहते सवेरा हुआ, भरत राम का भक्त साधु हैं, वह अब कब सम्पत्ति चाहने लगे।

सधन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव विभीषनहिं भई भरत की भेंट ॥ २०७

जैसे कोई चोर माल लिए भागा जा रहा हो और वह रास्ते में मिले, प्रसन्न चित्त धनी उसका फेंट पकड़ ले। उसी तरह सुग्रीव और विभीषण को भरत की मुलाकात हुई। भाव यह कि श्रीराम जी के प्रेम का खज़ाना भरत ने उड़ा लिया था जिस से विभीषण सुग्रीव तलाश करते थे कि कहीं वह माल मारने वाला हरीफ मिले भी तो सही। आज रामजी को रावणबध करके लौटने पर अयोध्याजी में इन सब से भेंट हुई।

राम सराहे, भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषन कीसपति तुलसी गरत गलानि ॥ २०८

श्रीराम जी ने भरत जी से सुग्रीव और विभीषण की प्रशंसा की, भरत जी उठ कर के इन सब को श्रीराम जी के तुल्य समझ कर मिले। तब भी विभीषण और सुग्रीव ग्लानि के मारे पानी २ हुए जाते हैं। मतलब यह कि श्रीराम जी मेरी प्रशंसा श्री मुख से करते हैं मैं किस योग्य हूं।

भरत स्यामतन राम सम सब गुन रूप निधान ।
सेवक सुख दायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान ॥ २०९

सुमिरत सब कल्यान भरत की अति सुन्दर छवि ।
रामचन्द्र के सदृश श्याम जेहि कहि न सकत कवि ॥
सब गुन रूप निधान, सकल सेवक सुखदायक ।
दुर्लभ वहि कछु नहीं भगवत जो सब बिधि लायक ॥

ललित लषन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह ।
सुख-सम्पति, कीरति विजय-सगुन सुमंगल गेह ॥ २१०

सगुन सुमंल गेह नेह सह ललित लषन की,
मूरति सुमरो मधुर रोकि गति अपने मन की ।
कीरति-सम्पति–विजय सकल सुख मिलै इसी दम,
ऋद्धि सिद्धि सब सधे रहे कोई न बात कम ॥

नाम शत्रु सूदन सुभग, सुखमा शील निकेत ।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत २११

सकल सुमंगल देत नाम रिपु सूदन सेवत,
भवसागर महँ पड़ी नाव, जापक की खेवत ॥
रिपु नाशक यह नाम जगत विख्यात लिये ते,
काम क्रोध मद लोभ मार जी जात हियेते ॥

कौसल्या कल्यान मयि, मूरति करत प्रनाम ।
सगुन सुमंगल काज शुभ, कृपा करहिं सिय राम २१२

कृपा करहिं सिय राम मातु के शीश नवाये।
कौशल्या कल्याण रूप मूरति उर लाये॥
त्रिभुवन योनी कुशल मूर्ति जेहि गर्भ पधारो।
ता जननी के द्र्वे सिद्धि शुभ कारज सारो॥

सुमिरि सुमित्रा नाम जग, जे तिय लेहिं सनेम।
सुवन लषन रिपु दवन से, पावहिं पति पद प्रेम २१३

पावहिं पतिपद प्रेम लषण रिपुहन सम बालक।
सकल सुलक्षण युक्त वेद मर्यादा पालक॥
जे तिय लेहिं सुनेम प्रात उठि प्रथम बखानी।
पावन चरित सुनाम सुमित्रा सुन्दर रानी॥

सीता चरन प्रनाम करि, सुमिरि सुनाम सनेम।
होहिं तीय पति देवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम॥२१४

प्राननाथ प्रिय प्रेम देवता निज पति जाने।
जो तिय करि दृढ़नेम सियापद निजउर आने॥
सुमिरि राम प्रियनाम पतिब्रतधर्म सुदृढ़ धरि।
सबसुख यहिजग भोगि अन्तपावै जगपति हरि॥

तुलसी केवल कामतरु राम-चरित आराम।
कलितरुकपिनिशिचरकहत हमहिंकियेविधिवाम २१५

हमहिं किये विधि वाम साथमें कपिके मिलकर।
रामचरितका बाग सुखद कलितरु सम दुखहर॥

कहत परस्पर दुःख ताप से दुखित निशाचर।
चाहत आम, बबूर बोय, स्वकरम न लखत पर॥

मातु सकल, सानुज भरत, गुरु पुरलोग स्वभाउ।
देखत देख न कैकइहि, लंकापति कपिराउ २१६॥

लंकापति कपि राउ केकई जानि न पायो।
श्रीपति सरल स्वभाव गुरू पुरजन मन भायो॥
माता सानुज भरत प्रेम यद्यपि दरसायो।
एक विपिन, रन द्वितिय, तृतिय सीता हरिलायो॥

सहज सरल रघुवर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चले जोंक जिमि वक्रगति यद्यपि सलिल समान २१७

यद्यपि सलिल समान जोंक टेढ़ी चलती है।
अच्छा बुरा न देख कुमति निज मग ढलती है॥
श्रीमुख मे वरबचन सत्य रघुवर के सुनकर।
कैकई मतिमन्द वक्रगति तजी न गुनकर॥

दसरथ नाम सकाम तरु, फलइ सकल कल्यान।
धरनि धाम, धन, धरमरत, सद्गुन रूप निधान २१८

सद्गुन रूपनिधान धर्मरत सुत सो पावै,
जो सुरतरु वरनाम राम पितु दशरथ गावै।
लहै धरनि धन धाम सकल कल्याण जगति मे,
पावै सद्गति मोक्ष मिलै जा राम भगति मे।

तुलसी जान्यो दशरथहि धर्म न सत्य समान ।
राम तजे जेहि लागि, विनु राम परिहरे प्रान २१६

भूप परिहरे प्रान राम विनु सत्य न त्याग्यो,
धरम न सत्य समान हिये दशरथ करि राख्यो ।
रामहिं सत्य स्वरूप सत्य तुम हरिजन जानो,
दूसर सत्य न भूलि राम विनु तुम उर आनो

राम विरह दशरथ मरन, मुनि मन अगम सुमीचु ।
तुलसी मंगल मरनतरु, सुचि सनेह जल सींचु ॥२२०

शुचि सनेह जल सींचु चहत जो मंगल मृतितरु,
मुनिमन अगम सुमींचु मरन दशरथ का जिमिअरु ।
राम विरह में मरन भयो काको है ऐसो,
श्रीमुख लखते जिय न विरह बांको है ऐसो ।

सोरठा ।

जीवन मरन सुनाम, जैसे दशरथ राय को ।
जियत खेलाये राम, राम विरह तनु परिहरेउ ॥२२१

राम विरह तनु परिहरेउ सुत जियत खेलायो,
जीवन मरन सुनाम नृपति दशरथ को जायो ।
ऐसे काके भाग सुवन जाके जगपति हो,
तेहि बिन छोड़े प्रान, भगति हो, ऐसी गति हो ।

प्रभुहिं विलोकत गोद गत, सिय हित घायल नीच।
तुलसी पाई गीध पति मुकुति मनोहर मीच ॥२२२

मुकुति मनोहर मीच गीध पति पाई ऐसी,
कोटि वरषलौं यतन करत मुनि हूँ नहिं जैसी।
सियहित घायल भयो नीच कुल जन्यो पक्षिवर,
प्रभु की बैठो गोद विलोकत प्रभुहिं दृष्टिभर।

विरत करमरत, भगत मुनि, सिद्ध, ऊँच अरु नीचु।
तुलसी सकल सिहात सुनि, गीध राज की मींचु ॥२२३

गीधराज की मींचु, डाह सब के जनती है,
ज्ञानिजनों की बँधी धीरता को हनती है।
सन्यासी सुगृहस्थ भक्त मुनि उच्च नीच जन,
सिद्ध सकल सुनि भये गीध की मीच हीचमन।

मुए, मरत, मरिहैं, सकल घरी पहरके बीच।
लही न काहू आजु लौं, गीधराज की मीच ॥२२४॥

गीधराज की मीचु न काहू लही आजु तक,
घरी पहर में मरे मरेंगे मरते वेशक्क।
रामनाम कोइ लेत, रूप कोइ देख तजा तन,
प्रभु की गोदी बैठि मुक्ति पाई न कोइ जन।

मुए मुकुत, जीवन मुकुत, मुकुत मुकुत हूँ बीच।
तुलसी सबहीं ते अधिक, गीधराज की मींच २२५ ॥

गीधराज की मींचु, सभी से है चढ़ बढ़ कर,
चहे जियत कोइ पाय मुक्ति या मरजाने पर।
भक्ति मुक्ति में भेद किन्तु भारी है भाई,
दुर्लभ यह, निज धाम स्वयं भेजैं रघुराई।

रघुवर विकल विहंग लखि, सो विलोकि दोउ वीर।
सियसुधि कहि सियराम कहि, तजी देह मतिधीर २२६

तजी देह मतिधीर सिया सुधि प्रभु सों कहकर,
दोउ भाइन को देखि रामसिय रखि आनन पर।
रघुवर देख्यो विकल विहँगपति वाण व्यथा सों,
करुणा नयन भरिवारि करुणा ह्वै सीय कथा सों।

दशरथ ते दशगुन भगति सहित तासु करि काजु।
सोचत बन्धु समेत प्रभु कृपा सिन्धु रघुराजु २२७

कृपासिन्धु रघुराज बन्धु के साथ बैठ कर,
सोचत हैं का करैं गिद्ध के हेतु अधिकतर।
दशरथ से दस गुनी भक्ति हिय राखि प्रेम सों,
अन्त क्रिया करि सविधि क्षेम के साथ नेम सों।

केवट निशिचर विहग मृग किये साधु सन्मानि।
तुलसी रघुवर की कृपा, सकल सुमंगल खानि २२८

सकल सुमंगल खानि कृपा है सीतावर वर की,
आत्यन्तिक कल्याण प्रदा इमि नाहिं अपर की।

केवट रावण अनुज गिद्ध हनुमान प्रभृति को,
साधु मान्य को करत देत को सुन्दर गति को।

मंजुल मंगल मोदमय, मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि कर कमल तल सुमिरत रघुवर दूत २२९

सुमिरत रघुवर दूत सकल सिधि मिलति शीघ्र तिमि
स्व कर कमलके बीच प्रथम सों धरी होय जिमि।
ऐसी मारुत पूत मूर्ति कल्याण कारिणी,
महा मनोहरे हर्ष रूपिणी विघन हारिणी।

वीर धीर रघुवीर प्रिय, सुमिरि समीर कुमार।
अगम सुगम सबकाज करु, करतल सिद्धि विचार २३०

करतल सिद्धि विचार काज करु अगम सुगम सब,
सुमिरि समीर कुमार विघन आने का है कब।
धीर वीर श्री रामचन्द्र जी के प्यारे हैं,
महावीर अति बली राशि गुणवर धारे हैं।

सुख मुद मंगल कुमुद विधु, सुगुन सरोरुह भानु।
करहु काज सब सिद्धि शुभ आनि हिये हनुमानु २३१

आनि हिये हनुमान करो शुभ काज सिद्धि सब,
पावो फल सुख हेतु, होय, मुद, महावृद्धि नव।
सुख मुद मंगल कुमुद खिलाने में वे शशि हैं,
सुन्दर गुण पंकजारण्य हित सुखकर रवि हैं।

सकल काज शुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु।
कीरतिबिजय बिभूतिभलि, हियहनुमानहिं आनु २३२

हिय हनुमानहिं आनु मिलै सत्कीर्ति शुभ विजय,
बढ़े सदा ऐश्वर्य छूट जाए सारा भय।
सकल कार्य शुभ होंय समय होजाये सुन्दर,
सगुन सुमंगल होय, सत्य यह जानु प्रेम कर।

सूर सिरोमनि साहसी, सुमति समीर कुमार।
सुमिरत सब सुख सम्पदा, मुद मंगल दातार २३३

मुद मंगल दातार सम्पदा सब सुखदाता,
सूर शिरोमनि तथा अन्य दुःखित जन त्राता।
महा साहसी बुद्धिमान वर वह होजाता,
सुमिरत जो जन पवन पूत को हियसे ध्याता।

तुलसी तनुसर सुख जलज, भुजरुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिये, कपि केसरी किशोर २३४

कहा जाता है कि एकबार गोस्वामी जी के हाथ में फोड़ा से बहती व्यथा उत्पन्न होगई थी। उसी समय यह दोहा कहा था। इस दोहे में सर्वत्र रूपकालंकार ही का सौन्दर्य है। गोस्वामी जी कहते हैं कि शरीर रूप तालाब के सुख रूप कमल को रोग रूप हाथी कुचले डालता है। इसलिये हे 'केशरी किशोर' सिंह सुवन अथवा केशरी नाम इनके पिताका था यथा 'शंकरसुवन केशरी नन्दन' दया के खजाना हनुमान जी दया करके देखिये।

भुज-तरु-कोटर रोग अहि, वरबस कियो प्रवेश।
विहँगराज वाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेश २३५

गोस्वामी जी अपनी पूर्वोक्त दशा का ही वर्णन करते हुए अपने रोग के निवारणार्थ हरि भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हमारी भुजा जोकि हरे भरे वृक्ष की डाली के समान थी। उसको भीतर से रोग रूप सर्प ने खाली करके अपना घर बना लिया है। यथा "तरु कोटर महँ रह विहँग काहु विधि मरे न मारे" अतः हे क्षीर सागर निवासी! आपका वाहन सर्पाहारी गरुड़ हैं किन्तु गरुड़ से नहीं आपसे प्रार्थना है कि थोड़ा सा कष्ट करके इस रोग रूप सर्प का शीघ्र दमन कीजिये। क्योंकि "बचहिं उरग घर ग्रसे खगेसा" प्रभु सायक लगि बचे, अन्देशा जिससे मेरा सारा क्लेश मिट जाय।

वाहु-विटप सुख-विहँग-थलु लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिये, वेगि दीनहित लागि २३६

वाहु रूपी डाल में सुख रूप पक्षी का घोंसला है। उसमें पीड़ा रूप दावानल लग गया है। तात्पर्य यह कि इस घोंसले में लगी आग से सम्भव है कि घोंसला और डाल इन दोनों का आश्रयभूत वृक्ष जल जाय। इसलिये हे राम! दीन के हित के लिये कृपा रूप जल से इस आग को शीघ्र बुझाइये।

गोस्वामीजी इन उपरोक्त ३ दोहों द्वारा अपनी अनन्य भक्ति के एक रूप को प्रकट करते हैं। आत्म निवेदन और शरणागति की पराकाष्ठा यही है कि सर्वभाव से उसी एक प्रभु के आश्रित हो जाना अपने रोग और पीड़ा के दमनार्थ गोस्वामी जी अन्य क्रिया या देवता का आश्रय नहीं लेना चाहते। केवल अपने इष्टदेव और इष्टदेव के प्रदर्शक श्रीहनुमानजी से ही अपना कल्याण चाहते हैं। और

सिद्ध करते हैं कि "बने तो सीता राम सों, बिगरै तो भरपूर,
तुलसी बने जो और सों, तेहि बनिबे में धूर"

सोरठा ।

मुकुति जनम महि जानि, ज्ञानखानि अघ हानिकर ।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कसन ॥२३७

गोस्वामी जी कहते हैं कि काशी जी वह भूमि है, जहां पर मुक्ति उत्पन्न होती है । अर्थात् जहां पर मरने के पीछे श्रीशङ्कर जी की कृपा से देह धारण करने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती यथा "काश्यां मरणान्मुक्तिः" यह बात दुनियाँ में प्रसिद्ध है । और जो ज्ञान का कोष है । पापों के नाश करने वाली है । यथा "काशी कल्मष नाशिनी विजयते" और जहां पार्वती जी के साथ भगवान श्रीशङ्कर जी सदा निवास करते हैं ऐसी काशी का सेवन क्यों नहीं करते ।

२ दोहे के 'महि' शब्द से 'मकार' ली । अर्थ हुआ कि मकार वर्ण "हि" निश्चय करके मुक्ति देनेवाला है । और ज्ञान का खजाना है । "तथा अघ हानिकर" शब्द से अन्त की रकार ली । अर्थ हुआ कि रकार वर्ण "अघ हानिक" अर्थात् पापों की नाशक है । तथा "जहँ" जिस र और म अर्थात् राम में श्रीशंकर जी श्रीपार्वती जी के साथ रमण करते हैं "उमा सहित जेहि जपत महेशू" और जो राम नाम सो कासी "सोक" शोक के लिये "असी" तलवार है । ऐसा श्रीराम जी का नाम क्यों नहीं भजते ।

जरत सकल सुर वृन्द, विषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजेसि मतिमन्द, को कृपालु शंकर सरिस २३८

जिससे सकल देवता जले जाते थे ऐसे समुद्र के अत्यन्त मन्थन द्वारा निकले हुए हलाहल विष को जिन्होंने देवताओं पर कृपा करके पान किया। रे मतिमन्द मूर्ख उन शङ्कर जी को क्यों नहीं भजता उनकी समान कृपा करने वाला दूसरा कौन है और उनकी समान इस विषमय विषम जगत् की आपदाओं से छुटाकर आत्यन्तिक कल्याण देने वाला कौन है।

वासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिशि चोर।
संकर निज पुर राखिये, चितै सुलोचन कोर २३९

"वासर" दिन को "ढासनि" डाकू "ढका" घेरे रहते हैं। और रात को चारों दिशाओं में चोर लगते हैं। इसलिये हे शङ्करजी अपनी सुन्दर आँख के एक कोने से देखकर अपने नगर काशी में मेरी रक्षा कीजिये।

कहीं कहीं इस दोहे का प्रथम पद है 'वासर ढासनि के ठका' इसका अर्थ है कि दिन में "ढासनि" ठट्ठा हँसी करने वाले काशी के गुण्डों का "ढका" धक्का है यहाँ के गुण्डे अबभी प्रसिद्ध है।

अपनी बीसी आपुही, पुरिहि लगाये हाथ।
केहि विधि विनती विश्व की, करौं विश्व के नाथ २४०

ब्रह्मा विष्णु महेश की एक एक बीसी सम्वत्सरों की बीस बीस वर्ष के बाद होती है जैसे एक देव के बीस वर्ष समाप्त होने पर दूसरे देव के बीस वर्ष आते हैं। ब्रह्मा की बीसी में उत्पत्ति, विष्णु की बीसी में शान्ति और आनन्द, और रुद्र की बीसी में मृत्यु की बहुतायत होती है। गोस्वामी श्रीशङ्कर जी से प्रार्थना करते हैं कि हे विश्व के नाथ आपकी बीसी में आपके हाथ लगाने ही से पूरा पड़ेगा। मैं एक व्यक्ति सारे संसार को किस तरह प्रसन्न करके सहायक बना सकता हूँ।

और करे अपराध कोउ, और पाव फल-भोग।
अति विचित्र भगवन्त गति, कोउ न जानिबे योग २४१

गोस्वामी जी कहते हैं कि इस जगत् में यह विचित्रता है कि अपराध कोई करता है, दण्ड दूसरा भोगता है। भगवान की इस माया के जानने में कोई समर्थ नहीं। उदाहरण—

(१) चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी ने श्रीराम जी को वन जाने के समय रोकने के लिये यही कहा था। उस सम्बन्ध में तो इस दोहे का अर्थ साफ ही है कि मैंने कामवस स्त्री के वशीभूत होकर अपराध किया है। परन्तु उसका दुख आपको तथा जानकी जी को एवं लषनलाल को भोगना पड़ रहा है।

(२) जीव और देह के सम्बन्ध में भी यही बात है। पाप कर्म देह से होते हैं। जिससे कि जीवात्मा अत्यन्त प्रथक है। यह देह शरीरी को छोड़कर पञ्चतत्त्व को प्राप्त होजाती है। किन्तु देह द्वारा किये हुये पापों का संग्रह जीव नर्क में जाकर भोगता है। सञ्चित और प्रारब्ध रूपसे आगामी जन्मों में भी भोगा करता है।

(३) प्राकृतिक भाव लेने से भी यही सिद्ध होता है, यथा पिता कुकर्म करके उपदंश (गर्मी) आदि रोगों का संग्रह करता है। किन्तु उसकी निरपराध सन्तान उस रोग के दुखों को भोगती है।

प्रेम सरीर प्रपंच रुज, उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भली सुवैदई, बेगि बांधिये व्याधि॥२४२

रुज और उपाधि में भेद है। रुज रोग है। उपाधि मूल रोग के पीछे उत्पन्न होती है। जैसे ज्वर की दस उपाधियाँ हैं।

श्रीराम जी के प्रेम मार्ग में चलते हुए जगत् प्रपञ्च सम्बन्धी रोग उत्पन्न होकर अनेकानेक दुराशाओं को उपाधि रूप से प्रकट करता है। जिन कारणों से उस मार्ग में चलना दुस्तर होजाता है। और मनुष्य अकाम भक्ति के भाव को छोड़कर जगत् सम्बन्धी आनन्दों की प्राप्ति में लग जाता है। गोस्वामी जी कहते हैं सबसे अच्छी वैद्यकी अर्थात् चिकित्सा की रीति यही है कि सबसे पहिले बढ़ते हुए रोग के प्रवाह को रोक दे। उसके पश्चात् उसके निर्मूल करने का उपाय करे। गोस्वामीजी ने प्रपञ्च के रोगों का उदाहरण इस तरह दिया है। 'मोह सकल व्याधिन कर मूला, जेहिते पुनि उपजत बहु शूला, काम बात कफ लोभ अपारा, क्रोध पित्त नित छाती जारा, प्रीति करैं जो तीनों भाई, उपजै सन्निपात दुखदाई।

हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबसपरत जिमि, कीरकोस-कृमि, कीस२४३

अहमता और ममता रूप आचरण बहुत बड़ा बोझ है। किन्तु यह भार जीव ने स्वयं अपने ऊपर रक्खा है किसी दूसरी शक्ति का धरा हुआ नहीं है। ऐसा करने से वह बरबस दूसरे के वश हुआ पड़ा है। जैसे तोता, कोसे का कीड़ा, और बन्दर।

तोता, तोते के सम्बन्ध में यह कहावत है कि यदि एक रस्सी की अरगनी बाँधकर उसमें लाल मिर्चें लगा दिये जायँ, तो तोता उन्हें देखकर उसमें आ बैठता है। और बैठते ही नीचे लटक जाता है। किन्तु पृथ्वी पर गिरने के भय से वह अरगनी नहीं छोड़ता, लटका रहता है। परिणाम यह होता है कि बिना परिश्रम पकड़ लिया जाता है।

कोसे का कीड़ा, रेशम का कीड़ा अपने चारों ओर रेशम का गोला बनाकर आप उसमें बन्द होजाता है। और रेशम निकालने

वाले लोग वह गोला गर्म जल में छोड़ देते हैं जिससे वह कीड़ा फड़फड़ा कर मर जाता है।

बन्दर, बन्दरके लिये यह किम्वदन्ती है कि एक चने भरी हण्डी, जिसका मुख बन्दरका खाली हाथ जाने भरका हो किन्तु चना भरी मुट्ठी न निकल सके पृथ्वी में गाड़ दे। बन्दर आता है बिना विचारे उसी हण्डी में हाथ घुसेड़ देता है, चनों से मुट्ठी बाँध लेता है किन्तु वह निकाल नहीं सकता, और चना भी नहीं छोड़ता, उसी जगह चुपचाप मन मारे बैठा रहता है। फल यह होता है कि वह पकड़ लिया जाता है।

गोस्वामी जी ने इस बात को अन्यत्र भी कहा है। यथा ईश्वर अंश जीव अविनाशी, सत् चेतन घन आनँद राशी, सो माया वश परेउ गोसाईं, बँधेउ कीट मरकट की नाईं।

केहि मग प्रविशति जाति केहि, कहु दर्पन में छाँह।
तुलसी त्यों जग जीव गति, करी जीव के नांह॥ २४४

गोस्वामी जी जीवात्मा का देह में पैठने और निकलने का ढँग दर्पणके द्वारा सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं कि देखो इतना बड़ा तुम्हारा शरीर छोटे से दर्पण में प्रवेश करके उतनी ही दूर पीछे चला जाता है जितनी दूर दर्पण से तुम्हारा शरीर है। और आने जाने में इतनी सुगमता है कि एक क्षण भी व्यतीत नहीं होता। इस तरह इस देह के बुद्धि रूपी दर्पण में परमात्मा का प्रतिबिम्ब जीवात्मा सुगमता के साथ प्रवेश करके कुछ काल शरीर में रहकर फिर उसी सुगमता से निकल जाता है। किन्तु वह किस रास्ते से आता जाता है यह पता कुछ भी नहीं लगता।

सुख सागर सुख नींद बस, सपने सब करतार।
माया माया नाथ की, को जग जानन हार॥२४५

जीव स्वयं सुख का सागर है, यथा "घन आनँद राशी" अथवा सुख के सागर का निवासी है, जैसे 'आनँद-सिन्धु-मध्य तव बासा' और मोह रूपी सुख की नींद में सो रहा है "मोह निशा सब सोवन हारा" और सब कार्य करता हुआ केवल दिखलाई देता है। वास्तव में वह कर्ता नहीं है। यथा गीतायां—

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृत बुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥

इस जगत् का वास्तविक स्वरूप दिखाकर गोस्वामी जी कहते हैं कि मायानाथ की माया ऐसी प्रबल है कि परमात्मा का वास्तविक स्वरूप छिपाकर स्वयं ही असली प्रतीत होती है। और उसके भेदन करने में कोई समर्थ नहीं। इस दोहे में गोस्वामी जी ने तीनों अवस्थायें कही हैं। यथा सुखसागर से सुषुप्ति, सुख निद्रा से स्वप्न, सपने सब कर्तार से जागृत, परन्तु यह तीनों अवस्थायें स्वप्नवत् असत्य हैं।

जीव सीव सम, सुख सयन, सपने कछु करतूति।
जागत दीन मलीन सोइ, सकल विषाद विभूति २४६

जीव "सीव सम" ईश्वर की समान है 'ममांशो जीवलोकोऽयं' परन्तु वह सुख निद्रा में सो रहा है। अर्थात् उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं। और इस स्वप्नावस्था में कुछ काम भी करता है। "कर्ताहमिति मन्यते" किन्तु वह जब जाग पड़ता है और जान लेता है कि मैं यह शरीर नहीं हूँ तब अपनी दीनावस्था का अनुभव करके मलिनता को प्राप्त होता है। उस समय उसे सांसारिक विषयों में आनन्द नहीं मिलता, यथा "जानेहुँ तबहिं जीव जड़ जागा, जब सब विषय विलास विरागा" और वही जीव अपनी सत् चित् आनन्द वाली अवस्थारूप धनके चलेजाने का पश्चाताप करता है।

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ २४७

सपने में अगर कोई राजा अपने को दरिद्री देखे, अथवा इसके विपरीति कोई दरिद्री अपने को ऐश्वर्यमान् राजा देखे, तो जागने पर इन दोनों में किसी को किसी तरह की हानि या लाभ नहीं॥ गोस्वामी जी कहते हैं कि जगत् के प्रपञ्च का भी यही हाल है। जब "नाम जीह जपि जागहिं जोगी, विरति विरञ्चि प्रपञ्च वियोगी" तब इस देह के सुख दुःखादि सपने में अनुभव की हुई दशा के समान आपसे आप दूर होजाते हैं। और जीव अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होजाता है।

तुलसी देखत, अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु।
चपरि चपेटे देत नित, केस गहे कर मीचु॥ २४८

धर्मराज युधिष्ठिर जी से यक्ष ने जो चार प्रश्न किये थे उन्हीं में एक यह भी था कि "जगत् में सब से बड़ी आश्चर्य की बात क्या है" इसका उत्तर धर्मराज ने यह दिया था कि मनुष्य प्रतिक्षण देखता है कि जितना देहधारी है मरता चला जारहा है परन्तु दृष्टा अपने को अमर समझता है। यह नहीं सोचता कि मैं भी काल के मुख में बैठा हूँ यही दशा मेरी भी होगी। इस बात को गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं अपनी आंखों से देखता हूँ, और हृदय में अनुभव करता हूँ, और अनेक ग्रन्थों तथा गुरुओं के द्वारा सुनता भी हूँ कि यावत् प्राणीमात्र मर रहे हैं, और मरेंगे, परन्तु मेरा नीच मन इस बात को ग्रहण नहीं करता।

कोई माने या न माने, देखे चाहे न देखे, समझे चाहे न समझे, जैसे कोई स्त्री अथवा पुरुष किसी स्त्री या पुरुष के बाल पकड़ कर थप्पड़ मारकर उसकी बेइज्जती करता है, उसी भाँति

काल हरएक को पकड़कर जोरसे थप्पड़ मार रहा है। अर्थात् दैहिक दैविक भौतिक तापादि, जो समय समय पर प्रत्येक जीव को भोगना पड़ते हैं, वह काल के थप्पड़ हैं। और वे यह बतला रहे हैं कि यदि चपेटा और भी अधिक वेग से पड़ गया होता तो प्राणान्त होजाता।

करम खरी कर, मोह, थल, अंक चराचर जाल।
हनत, गुनत, गनिगुनिहनत, जगतज्योतिषीकाल २४६

इस दोहे का अक्षरार्थ सब से पहिले समझ लेना चाहिये। "करम" शुभाशुभ कर्म "खरी" खरिया मिट्टी "मोह" जीव की अनेकानेक वासनायें जो उसके नींच या उच्च योनियों की प्राप्ति का कारण होजाती हैं। "थल" ज्योतिषी की गणित लगाने की पट्टी "अङ्कजाल" ज्योतिषी के द्वारा लिखा हुआ हिसाब "चराचर जाल" चराचर मय विस्तृत जगत् जिसमें प्रतिक्षण जल के बुल्लों के समान रूपान्तर होता रहता है "हनत" हिसाब लगाता है "गुनत" गुणा की रीति से बढ़ाता है, पुत्र कलत्र धनादि की वृद्धि करता है। "गति गुनि" विचार करके "हनति" मिटा देताहै।

गोस्वामीजी कहते हैं कि इस जगत् में व्याप्त काल ज्योतिषी की भाँति बैठा हुआ, हाथमें खरिया मिट्टी लिये हुए, इस चराचर जगत् के हरएक जीव को उसके कर्मानुसार हिसाब लगाकर सुख दुःख की बढ़ती और घटती देता हुआ पुनः पुनः उत्पन्न करता और मारता है, इसी तरह विचार करके सारी सृष्टि का परिवर्तन करता रहता है।

कहिबे कहँ रसना रची, सुनिबे कहँ किय कान।
धरिबे कहँ चित हित सहित, परमारथहिं सुजान २५०

परमारथहिं सुजान! चित्त भीतर धरि राखो,
मुख से सीताराम प्रेमसे निसि दिन भाखो।
कानन का फल यही सुनै गुण त्रिभुवन पतिके,
सद्गति दाता वही, वही दाता शुभ गतिके।

ज्ञान कहै अज्ञान विनु, तम विनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन विनु, सो गुरु तुलसीदास २५१

बहुत लोग सगुन ब्रह्मके आस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। उनका यह कथन है कि ब्रह्म केवल निर्गुन स्वरूप है। इस मति के अनुयायियों के सम्बन्ध में गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि कोई निर्गुण ब्रह्मका आस्तित्व विना सगुन ब्रह्मका सहारा लिये निश्चित करदे, तो मैंने सगुन ब्रह्म के आस्तित्व में जो कुछ कहा है; उसे भूलकर मैं उस पण्डित को अपना गुरु मानने को तैयार हूँ।

अर्थ—विना अज्ञान का सहारा लिये ज्ञान का स्वरूप बतलाना असम्भव है। बिना अन्धकार के जाने हुए प्रकाश का ज्ञान कराना असम्भव है। इसी भाँति बिना सगुन ब्रह्म के जाने निर्गुन ब्रह्म का समझाना असम्भव है। किन्तु यदि कोई यह असम्भव बात सम्भव करने को समर्थ और उद्यत हो तो उसे मैं अपना गुरू मानने को तैयार हूं।

गोस्वामी जी के मतानुसार ब्रह्म के दोनों स्वरूप हैं, यथा सगुन अगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा, सगुन अगुन बिच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी" गीता

से भी यही सिद्धान्त प्रकट है अर्जुनके पूछने पर "एवं सतत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते" ये चाप्यक्षर मव्यक्त तेषां के योग वित्तमाः" श्री भगवानु वाच—" मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना, मत्स्थानि सर्वभूतानि नचाहं तेष्वस्थितः मय्यावेश्य मनो ये मां नित्य युक्ता उपासते श्रद्धाया परयोपेता स्ते मे युक्ततमा मताः" इसके पश्चात् जगदात्मा अपना निर्गुण रूप बताते हैं । अथर्ववेद में भी यही बात कही गई है "द्वौरूपा वीश्वरस्य मूर्तश्चामूर्तश्चेति ।

अंक अगुन आखर सगुन, सामुझि उभय प्रकार ।
खोये राखे आपुभल, तुलसी चारु विचार ॥ २५२

अङ्क एक दो तीन इत्यादि निर्गुन हैं । गणित द्वारा केवल मानसिक सिद्धान्त स्पष्ट किया जासकता है । परन्तु उस सिद्धान्त को स्थूल रूप में प्रकट करने के लिये अक्षर जोकि सगुन हैं उनकी आवश्यकता है । जैसे एक का अङ्क ईश्वर से लेकर चींटी पर्यन्त लिखा जा सकता है । किन्तु जबतक अक्षर का सहारा न लिया जायगा तबतक यह सिद्ध नहीं हो सकता कि एक से मतलब पशु पक्षी मनुष्य या किसी अन्य से है । किन्तु दोनों अनन्त हैं । गणना तो अनन्त ही है उसकी कोई परिधि नहीं अक्षर भी अनन्त हैं इनसे जिस भाँतिके चाहे शब्दजाल तैयार करले । उसकी कोई मर्यादा नहीं ।

तत्वरूप से असली अङ्क एक है, दो तीन इत्यादि सब उसी का रूपान्तर है । और वही एक अङ्क सब अङ्कों में व्याप्त है । इसी भाँति अक्षर भी हैं । गीता में भगवद्वाक्य है 'अक्षराणा मकारोऽस्मि' एकाक्षरी कोष में "अकारो वासुदेवः स्यात्" ऊपर के कथन से यह सिद्ध हुआ कि जैसे अङ्क और अक्षर अनन्त और सर्वव्यापी हैं । उसी तरह से निर्गुन और सगुन ब्रह्म भी सर्वव्यापी है ।

अर्थ—अङ्क निर्गुन हैं और अक्षर सगुन है । अर्थात् ब्रह्म निर्गुन और सगुन दोनों है । मनुष्य की समझ भी दो प्रकार की

देखने में आती है। जैसे जो लोग उच्चकोटि के गणितज्ञ होते हैं वे प्रायः साहित्यिक नहीं, और साहित्य शास्त्री ज्योतिर्विद नहीं। इसी तरह उपासना भेद से निर्गुण रूप के उपासक सगुन रूप का एक तरह निरादर ही करते हैं। किन्तु गोस्वामी जी कहते हैं। मुझे यह विचार बहुत अच्छा लगता है कि अपने को सगुन और निर्गुन के विचार में भली भाँति खोये ही रक्खे। अर्थात् अपनत्व को खोकर सगुन और निर्गुन के विवेक में लगे रहना। क्योंकि यह इन दोनों को अभेदभाव से देखते हैं। वे कहते हैं कि "सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा, गावत मुनि पुराण बुध वेदा, भागवत् में भी श्रीमुख से सरकार ने यही कहा है "अहं वै सर्वभूतानां भूतात्मा भूतभावनाः, "शब्दब्रह्म परंब्रह्म समोभे शाश्वती तनू,, श्रुति कहती है "एकोऽहं बहुस्याम,, सनत्कुमारों ने भी यही कहा है "सर्व सर्वगत सर्व उरालय,,

परमारथ पहिचानि मति, लसति विषय लपटानि।
निकसि चिताते अध जरति, मानहुँ सती परानि २५३

यह दोहा उनके लिये कहा गया है जो लोग सर्वत्यागी बन कर पुनः सर्व संग्रही बनते हैं और अपना घर छोड़कर दूसरे के घर में घुसते फिरते हैं।

परमारथ को जानने वाली बुद्धि विषयों में लिपटी हुई कैसी देख पड़ती है। जैसे सती स्त्री पति के साथ चिता में अधजली होकर भागती है। पूर्णोपमा है।

सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग।
घर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग २५४

आगन्तुक दोहा जो लोग सन्यासी बनकर संग्रही बनते हैं उनके लिये है। चिता से अधजली भागी हुई सती से कहते हैं कि

तुमसे किसने सीस उघारने को कहा था। क्योंकि जब स्त्री पर सतीत्व सवार होता है तब उसे अपने गुरुजनों की लज्जा का ध्यान नहीं रहता। जब तुम लज्जा को तिलाञ्जुलि देने वाली थी, तब प्रिय लोग ऐसा करने से मना करके हार गये, तुमने माना नहीं। अब क्यों भग आई। भला तो यही था कि अपने स्वामी के विरह में जलती हुई, सदाचार से रहती हुई अपने मकान में ही सती कहाती। अथवा प्रिय का अप्रिय मरण सम्वाद पाकर अपने सतीत्व से शरीर में अग्नि उत्पन्न करके आपही आप घर बैठे ही मर जाती। क्या अच्छा इससे हुआ जो निर्लज्जता धारण करके चिता से भाग आई।

साधु पक्ष में। 'सीस उघारन, मूड़ मुड़ाने को किसने कहा था। सभी प्रेमी लोग ऐसा करने से रोकते थे। अच्छाई तो इसमें थी कि जगदीश के विरह में विह्वल होकर घर में ही साधु बनते। इससे क्या लाभ जो अब दूसरे के द्वार झांकते फिरते हो। उपर्युक्त दोनों अन्योक्तियां अपूर्व हैं। इनके भीतर अनन्त अर्थ गाम्भीर्य है।

खरिया, खरी, कपूर सब, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि, कै विमल विवेक विराग २५५

कोई स्त्री पुरुष कुटुम्ब त्याग कर साधु होगये थे बहुत दिनों के बाद एकबार घूमते हुए वे अपनी ससुराल में पहुँचे, स्त्री से मिले। स्त्री ने इनकी झोली में नोन मिरचा से लेकर बीजरूप में पूरी गृहस्थी को देखके कहा।

जब आपकी 'खरिया' झोली में 'खरी' पोस्ता का दाना कपूर आदि सब चीजें हैं। तब हे प्रिय! स्त्रीका त्याग उचित नहीं। या तो अपनी झोली में सब चीजों के साथ मुझे भी रक्खो, अथवा केवल विमल विवेक और वैराग्य को ही रक्खो।

घर कीन्हें घर जात है, घर छाड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाय २५६

गोस्वामी जी कहते हैं कि गृहस्थी में अत्यन्त लिप्त होने पर भी एक दिन घर छोड़ना पड़ेगा। और घर के त्यागने में घर का वियोग प्रगट ही है। इसलिये बाहरी रूप से घर को रखते हुए, गृहस्थाश्रम को पालते हुए मानसिक त्याग के द्वारा समय २ पर (बन में) एकान्तस्थल में रहते हुए भगवत् के भजन में लगे रहो।

इस दोहे में दो घरों का वर्णन है, एक तो प्राकृतिक दूसरा भगवत् की प्रेम पुरी का। गोस्वामी जी कहते हैं (घर कीन्हें) गृहस्थी में लिप्त रहने से जो बैकुण्ठरूप अन्तिम मकान है वह चला जाता है। और जो कहो बन में जाने से उस अन्तिम घर की प्राप्ति होजायगी सो भी नहीं, क्योंकि केवल घर के त्याग करने से भगवत् के पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये आवश्यक यह है कि चाहे घर में रहते हुए चाहे बन में रहते हुए दोनों स्थानों के बीच में भगवत् प्रेम रूपी पुरी में निवास करो।

दिये पीठि पाछे लगै, सन्मुख होत पराय।
तुलसी सम्पति छांह ज्यों, लखि दिन बैठि गँवाय २५७

गोस्वामी जी इस दोहे में सम्पत्ति की सदृशता छाया के साथ करते हैं जैसे सबेरे कोई आदमी यदि पूर्व दिशा की ओर जाता है तो छाया उसके पीछे पीछे चली जाती है। और यदि वही आदमी घूमकर पश्चिम की ओर चलने लगता है तो छाया उसके आगे २ भागती जाती है। यही दशा लक्ष्मी की है। लक्ष्मी के पीछे अधिक दौड़ो तो वह छाया की भांति भागती चली जाती है। किन्तु यदि उसकी उपेक्षा करो तो पीछे चलती है। इसलिये इस

इस बात को जानकर अपने घर में बैठकर भगवत् भजन करते हुये दिन बिताओ। व्यर्थ इधर उधर घूमते से क्या लाभ होगा।

तुलसी अद्भुत देवता, आसा देवी नाम।
सेए सोक समर्पई, बिमुख भये अभिराम २५८

गोस्वामी जी आशा के लिये कहते हैं कि यह विचित्र देवता है। इसका नाम है आशा देवी। इसकी अगर अधिक सेवा करो तो शोक देती है। और इसकी ओर यदि देखो भी नहीं तो अत्यानन्द देती है।

सोई सेंवर ते सुवा, सेवत सदा बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की, सुनत सराहत सन्त २५६

सेमर का वही वृक्ष है। जिसका फूल और फल बड़ा ही सुन्दर होता है। परन्तु उसमें स्वाद तथा तुष्टि और पुष्टि कुछ भी नहीं। और तोते भी वही हैं जोकि सेमर के फूल और फल की योग्यता का परिचय पा चुके हैं। किन्तु प्रतिवर्ष उसके सुन्दर फूलों को देखकर उनसे स्वादिष्ट फूलों फलों की अभिलाषा करके बराबर बैठे रहते हैं। अन्त में निष्फलता को प्राप्त होते हैं। यही दशा सांसारिक सुखों की है। जो भोगने के पश्चात् अत्यन्त दुखद होजाते हैं इस बात का अनुभव मनुष्य प्रतिदिन करता है किन्तु फिर भी उसका परित्याग नहीं करता।

करत न समझत झूठ-गुन, सुनत होत मति रंक।
पारद प्रकट प्रपंचमय, सिद्धिउँ नाउँ कलंक २६०

गोस्वामी जी पारा के दृष्टान्त से तृष्णा का निराश करते हैं वे कहते हैं कि पारा एक ऐसी धातु है जिससे सोना, चाँदी आदि अनेक वस्तु निर्मित हो सकती हैं। इसी से गोस्वामी जी इसे

प्राणश्रमय कहते हैं। पारा के सम्बन्ध में यह भी प्रसिद्ध है कि इसके मारने व फूंकने वाला कलङ्क पाता है। क्योंकि पारद शङ्कर जी का वार्य है। यथा रसेन्द्रसार संग्रहे 'रसेन्द्र पारदःसूतः तसू राजश्च सूतकः, शिवतेजो रसः सप्तनामान्येवं रसस्यतु,, यथा शिववीजं रसः सूतः पारदश्च रसेन्द्रकः एतानि रसनामानि तथान्यथानि यथा शिवे,, अतः पारद का फूंकना शास्त्रीय मर्यादा के विरुद्ध बतलाया गया है।

अर्थ—(करत न) मनुष्य भगवद्भक्ति की ओर नहीं जाता। जानने का कारण यह है कि वह उसे (समुझत झूंठ) झूंठ मानता है। अर्थात् उसे उस पर विश्वास नहीं किन्तु जब पारा के (गुन सुनत) गुण सुनता है कि मात्रा अल्प, रुचिकर, जल्दी आरोग्य देने वाला, असाध्य रोग में भी काम आनेवाला रसेन्द्र है। अथवा "हतो हन्ति जरा व्यधि मूर्च्छितो व्याधि घातकः, बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात् कृपाकरः,, अर्थात मारा हुआ पारा यदि खाये तो मनुष्य युवक बन जाता है। और मूर्छित पारा का सेवन करे तो शरीर के यावत् रोग शान्त होजाते हैं। और बद्ध पारा का भक्षण करे तो आकाशगामी होजाय। और भी कहा है "दोषहीनो रसो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दनः, मारितो रुद्ररूपी स्यात् बद्धः साक्षात् सदाशिवः,, दोष हीन पारा ब्रह्मदेव है। और मूर्च्छित हुआ रसेन्द्र जनार्दन भगवान् विष्णु है। तथा मारा हुआ पारा रुद्ररूप है। एवं बद्धशिववीर्य साक्षात् सदाशिव है। पारा के दर्शन, स्पर्शन, भक्षण और स्मरण, पूजन, तथा दान से क्या फल होता है उसे भी सुनिये "केदारादीनि लिङ्गानि पृथिव्यां यानि कानि चित्, तानि दृष्टवा च यत्पुण्यं तत् पुण्यं रसदर्शनात्" पृथिवी में केदारनाथ आदिक जो द्वादश ज्योतिर्मय शिव के लिङ्ग हैं उनके दर्शन से जो पुण्य प्राप्त होता है वह केवल पारा के दर्शनादिकों से होता है। और भी देखिये—

चन्दनागुरु कर्पूर कुंकुमान्तर्गतो रसः, मूर्च्छितः शिवपूजा सा शिव सान्निध्य सिद्धये १ भक्षणात् परमेशनि ! हन्ति ताप रसत्रयं रसः, दुर्लभं ब्रह्म विष्णवाद्यैः प्राप्यते परमं पदम् , २ हृद्व्योम कर्णिका न्तस्थं रसेन्द्रं परमेश्वरि ! स्मरन् विमुच्यते पापैः सद्यो जन्मान्तरार्जितैः ३ स्वयंभू लिंग साहस्त्रैर्यत्फलं सम्यगर्चनात्, तत्फलं कोटिगुणितं रसलिंगार्चनाद् भवेत् ४ रसविद्या पराविद्या त्रैलोक्येपि च दुर्लभा, भुक्ति मुक्तिकरी यस्मात् तस्माद्ज्ञेया गुणान्वितैः ५ अचिराज्जायते देवि ! शरीरमजरामरम्,
मनसश्च समाधानं रसयोगादवाप्यते ॥६
सत्वं च लभते देवि ! विज्ञानं ज्ञानपूर्वकम्,
सत्यं मन्त्रांश्च सिद्धयन्ति योऽश्नाति मृत सूतकम् ॥
यावन्न हरवीजन्तु भक्षयेत् पारदं रसम्,
तावत्तस्य कुतो मुक्तिः कुतः पिण्डस्य धारणम् ॥
स्वदेहे खेचरत्त्वं च शिवत्त्वं येन लभ्यते ॥

अथवा "पात्ररत्ति बावन तोला की कहावत प्रसिद्ध ही है। कोई स्त्री अपने परदेश जानेवाले पति से कहती है कि "मूलाक्षी बहुफली औ घुंघुरारे केश, इतनें ते पारा मरे काहे जात विदेश।

अर्थात् इसे मारकर बावन तोले गले ताम्र में पावरत्ती पारा छोड़ दो सब तांबा सोना हो जायगा। अथवा तालाब या ठण्ढी

जगह पर पुदीना के आकार की एक पत्ती होती है उसे और पारा को बराबर लेकर खरल करके एक छोटी सी हण्डी में रखदे। हण्डी का मुंह शरवा से बन्द करदे कण्डे की आग में गाड़ दे कुछ देर में निकाल ले स्वाङ्गशीत होने पर परई खोलकर देखे तो सब पारा चांदी हुआ मिलेगा। पत्ती जलभुन कर खाक हो जायगी, पारा चांदी हो जायगा। इसी तरह के अनेकों पारा के गुण सुनकर (होत मति रङ्क) बुद्धि लुभा जाती है। यानी बुद्धि की उच्च विचार शीलता जाती रहती है। इधर तो मन लोलुप है और उधर पारद सिद्धि प्राप्ति की कामना है। गोस्वामी जी कहते हैं कि मनुष्य यह बात नहीं जानता कि जगत् में (सिद्धिउँ नाम कलङ्क) सिद्धि के साथ ही कलङ्क का भी नाम है। अर्थात् अगर कोई मनुष्य भौतिक किसी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है तो सिद्धि के साथ ही लोग उस पर अनेक कलङ्क भी लगाते हैं।

ज्ञानी, तापस, सूर, कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ विडम्बना, कीन्ह न यहि संसार॥ २६१

कीन्ह न यह संसार लोभ ने किस की निन्दा,
अति लोभी जन मृतक सदृश है यद्यपि जिन्दा।
सद्गुन के आगार परम पण्डित अतिज्ञानी,
सूर तपस्वी सभी फँसाये इस ने प्रानी।

श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता वधिर न काहि।
मृग नयनी के नयन सर, को अस लाग न जाहि॥२६२

को अस लाग जाहि नयन सर मृग नयनी के,
को नहिं टेढ़े चल्यो मिले श्री सुख अयनी के।

जो इन से बचि गयो पाय प्रभुता न बधिरे भो,
रामचंद्र की छांह सदृश समझो शुचि नर सो ।

नारि नयन सर जाहि न लागा, घोर क्रोध तम निशि जो जागा ।
लोभ पास जेहि गर न बंधाया, सो नर तुम समान रघुराया ॥

व्यापि रहेउ संसार महँ माया-कटक प्रचण्ड,
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड ॥ २६३

दंभ कपट पाषंड सूर सामन्त महां है,
सेनापति वरवीर अतिवली काम जहां है ।
ऐसी माया सैन्य व्याप्त है सारे जग में,
वही संत जो सम्हरि, बचि चलै दुर्गम मग में ।

तात तीन अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ,
मुनि विज्ञान सुधाममन,करहिं निमिष मँह छोभ २६४

करहिं निमिष महँ छोभ ज्ञान-घर मुनिहू के मन,
काम, क्रोध, अरु, लोभ दुष्ट तीनोऐसे जन ।
इन से बचिये सदा पालना इनका अहि सम,
मार डालते अंत, जियत देते न दु;ख कम ।

लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के पुरुष बचन बल मुनिवर कहँहिं विचारि ॥२६५

मुनिवर कहँहिं विचारि काम का बल है नारी,
पुरुष वचन बलवान क्रोध अतिशय दुख कारी।
इच्छा औ पाखंड लोभ की सेना जानो,
नारी, छल कटुवचन, आस तजि सब सन्मानो।

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि॥ २६६

माया रूपी नारि विषम दुख दारुण मूला,
काम क्रोध मद लोभ हु से बढ़ि देती शूला।
याही नाश्यो लंक यही कुरु वंश कटायो,
याही के वश पुरुष फिरत है इत उत धायो।

काह न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ॥ २६७

केहि जग काल न खाइ, प्रबल नारी न करै का,
याको अबला नाम कौन था काम धरै का।
पावक जैसे करे भस्म सागर सब लीले,
त्यों जय जोग विराग सकल एक नारी कीले।

जन्म पत्रिका बरति कै देखहु मनहिं विचारि।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजत नारि॥ २६८

बीच विराजत नारि[1] परम रिपु तथा मींचके,
याको जो जन गहत मृत्यु मुख जात खींच के।
अथवा सन्मुख शत्रु सालता रहता हरदम,
जन्म पत्रिका खोल देख लो कछु न कहत हम।

दीपसिखा सम जुवति जिन, मन जनि होसि पतंग।
भजहिं राम तजि काममद, करहिं सदा सतसँग॥२६६

करहिं सदासतसँग भजहिंरामहिं फल त्यागी,
जनि पतंग सम जरहिं दौडि जुवती तन आगी।
सन्त संग अपवर्ग, वन्ध कामी सँग देता,
सुलभ मोक्ष का मार्ग, अन्ध मन क्यों नहिं लेता।

काम, क्रोध, मद लोभ, रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे भव कूप॥ २७०

मूढ़ परे भव कूप राम को केहि विधि जानहिं,
जे गृह कारज फँसे लोभ मद को उर आनहिं॥
काम क्रोध ग्रह जाल दुख रूपी है भाई,
सबते मनको मोडि हृदय आनहु रघुराई।

ग्रह गृहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाई वारुनी कहो कौन उपचार॥ २७१

---

१ फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुण्डली का छठवां शत्रु का और सातवां स्त्री का तथा आठवां मृत्यु का स्थान है।

कहो कौन उपचार भूत वश, ग्रह से पकडो,
बीछी मारो, तदपि वारुणी से जो जकडो।
भूत भूप का विरह, मातु ग्रह, राम वन गमन,
वृश्चिक दंश, २ स्वराज्य सुरा है चढ़ी भरततन।

ताहि की सम्पति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन विश्राम।
भूत द्रोहरत, मोहबस राम विमुख, रत काम॥ २७२

राम विमुख रतकाम, वाम है जिसे पियारी,
ताको मंगल कहां, न वह होगा धन धारी।
सगुन सुलभ है कही नहीं इस भूतल भर में।
जाके रमते राम नहीं हैं मन के घर में।

कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्यायज्यों, पुनि प्रत्यूह अनेक॥ २७३

गोस्वामी जी इस दोहे द्वारा विवेक के प्राप्ति की कठिनता दिखलाते हैं। सत्यासत्य के विचार को विवेक कहते हैं यथा "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या,, इस बात का दृढ़ विश्वास और अनुभव कि चराचर दृश्य जगत् स्वप्नवत् मिथ्या है। यह तो अव्यक्त उपासना के भाव से सिद्ध हुआ है। भक्तिभाव से ब्रह्मा शंकर नारद सनकादि से निरन्तर सेव्यामान करुणानिधान भगवान साकेतलोक निवासी साकार निराकार पदवाच्य पूर्णकाम तारकमन्त्र नाम श्री सीताराम जी का जानना विवेक है॥

---

२ बीछी का काटना।

विवेक कहने में बहुत कठिन है। इस स्थूल जगत् में जिस में कि चराचर मोहित है. मिथ्या कह कर समझा देना सरल कार्य नहीं है। और उस का समझना भी अत्यन्त कठिन है। तब साधन की कठिनता का कहना ही क्या है। विरला ही पुरुष इसे पाता है। जैसे करोड़ों घुनों में कोई ही भाग्यशाली घुन होता है, जो लकड़ी को काटता हुवा राम नाम लिख कर मुक्ति को पाता है (घुन लकड़ी के भीतर काट २ कर भाँति २ की चित्रावली खींचता है। यदि कभी ऐसा करते २ उस के द्वारा लकड़ी में राम नाम लिख जाता है तो लेखक घुन सदा के लिये सांसारिक झंझटों से छुट्टी पा जाता है। इसी को घुनाक्षर न्याय कहते हैं) साधन के प्राप्त करने में अनेकों बाधाएं उपस्थित होती हैं। घुनाक्षर की भाँति कोई सौभाग्यवान् करोड़ों मनुष्यों में ब्रह्मज्ञान को पाकर मुक्ति को पाता या सिद्ध होता है। श्रीपार्वती जी का वाक्य है:—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ यक होहि धरम व्रत धारी॥
धर्म शील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विराग रत होई॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक्ज्ञान सकृत कोइ लहई॥
ज्ञानवन्त कोटिक महँ कोई। जीवन मुक्त सकृत जग होई॥
तिन सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी॥

खल प्रबोध, जग सोध, मन को निरोध, कुल सोध।
करहिं ते फोकट पचि, मरहिं सपनेहुं सुख न सुबोध २७४

गोस्वामी जी इस दोहे द्वारा उन लोगों के वृथा परिश्रम को दिखलाते हैं जो सरल भक्तिमार्ग को त्यागकर मन की एकाग्रता तथा अन्य परिश्रम द्वारा शान्ति प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं

पहिली बात खल प्रबोध। अर्थात् मूर्ख को तत्वज्ञान बतलाना है। जिसके लिए रामायण में लिखा है "फूलहिं फलहिं न बेत यदपि सुधा बरसहिं जलद, मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरंचिसम"

दूसरी बात जग शोध है। अर्थात् जो लोग अपने अन्तःकरण के शुद्ध करने में परिश्रम न करके संसारके संशोधन में लगे हुए हैं। उसका परिणाम प्रतिदिन देखने सुनने में आता है कि न वह अपना ही भलीभांति कल्याण कर सकते हैं न उन के द्वारा जगत का ही कल्याण होता है।

तीसरी बात यह है मन का निरोध। पातञ्जलि "योगदर्शन" के दूसरे सूत्र "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" के द्वारा इसी मनके निरोध करने की क्रिया बताई गई है। इस की कठिनता का कहना ही क्या है।

चौथी बात कुल शोध है। बहुत आदमी बड़ी से बड़ी वंशावलियां एकत्रित करके प्रत्येक कुलके संशोधन करने मे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। क्या किसी मनुष्य को बड़ा कुलीन कहने से अथवा छोटा बनाने से भगवत् पद की प्राप्ति मे कोई सुगमता हो सकती है।

दूसरे पद में गोस्वामी जी कहते हैं कि जो आदमी इन्हीं चारो बातों में पड़े रहते हैं, वे व्यर्थ ही अपनी शक्ति और समय का अपव्यय करते हैं। ऐसा करने से न तो उन्हें कभी सुख ही मिलता है न विज्ञान ही की प्राप्ति होती है।

सोरठा।

कोउ विस्राम कि पाव, तात, सहज संतोष विनु।
चलैकिजलविन नाव, कोटिजतन पचिपचिमरिय २७५

पचि पचि मरिय सदैव जतन कोटिक करि डारौ,
जल बिन काहू नाव नहीं अबतलक उतारौ।
पाता है सन्तोष विना विस्राम कौन जन,
विनविस्राम न कभी किसीका होता थिर मन।

सुर, नर, मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रवल।
अस विचारि मनमांहिं, भजिय सदा सीता रमन ॥२७६

सीता रमन सदैव भजिय तज के सब माया,
माया छूटे, जबै करें, माया पति दाया।
सुर नर मुनि कोउ नहीं, बचा माया ते भाई,
याको मोह विचित्र, महा होता दुख दाई॥

चातक भाव।

भक्ति का लक्षण शाण्डिल्य ने अपने भक्तिदर्शन में लिखा है "सापरानुरक्तिरीश्वरे" ईश्वरमें अत्यन्त अनुरागका नाम है भक्ति। वह भक्ति परा और अपरा के भेद से दो प्रकार की होती है। पहिली में भक्त अपनी दशा को भूलकर भगवन्मय हो जाता है। दूसरी में शारीरिक व सांसारिक ज्ञान रखते हुए जगदीश के चरण में अनन्य होकर रहता है। यह अपरा भक्ति नव प्रकार की होती है। जैसे श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य, और आत्मनिवेदन।

उपास्यदेव की कीर्ति, कथा, सामर्थ्य, ज्ञान, गुण, पवित्र नामावली आदि को श्रद्धा से सुनना श्रवण है। सुनने के अनन्तर भक्त भगवान की चरितावली विना गाये कभी नहीं रह सकता। स्वभाव ही से देखा जाता है कि जो सुना जाता है वह प्रकट भी किया जाता है। अतः भगवान की लीला, कीर्ति आदि का गान, अथवा भजन, या स्तुति करना कीर्तन कहलाता है। आराध्यदेव के यश के श्रवण व कीर्तन के अनन्तर मन से श्रद्धाभक्ति समेत गुणों का स्मरण करना स्मरण है। स्मरण करने के अनन्तर भावुक-भक्त की प्रबल इच्छा भगवत् की सेवा करने की होती है। इसलिये

श्रवण, कीर्तन और स्मरण इन तीनों अवस्थाओं का ज्ञान रखते हुए साङ्गोपाङ्ग आराध्यदेव की मूर्ति के चरणों की सेवा करना पादसेवन कहलाता है। पादसेवन के पीछे भक्त की अभिलाषा जगदीश की पूरी मूर्ति की अर्चना करने की होती है। अतः श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन के अनन्तर श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर षोड़षोपचार करना अर्चन है। अर्चन के अनन्तर आराध्य-चरण की बन्दना करने का समय उपस्थित होता है। इसलिये आराध्यनाथ के प्रेम में उन्मत्त होकर उनकी दया का कृतज्ञ होकर स्तुति करने तथा दण्डवत् प्रणाम करनेका नाम बन्दना है। बन्दना करने के अनन्तर प्रेमी के हृदय में दास भाव उत्पन्न होता है। अर्थात् मैं दास हूँ, वे मेरे स्वामी हैं। और यही दास भाव अत्यन्त ऊँचे लेजाने वाला है। उपास्यदेव के प्रीत्यर्थ मन कर्म बाणी से कर्म करना इस भाव का मुख्य कर्तब्य है। जब भक्त भगवत् की सेवा तन मन से करता है, तब कृपानिधान भगवान उस पर अत्यन्त अनुग्रह करते हैं। दास और स्वामी में इतना परस्पर प्रेम का संचार होता है कि दोनों में अभेदभाव उपस्थित होकर मैत्री होजाती है। दोनों के दुख सुख में दोनों शामिल रहते हैं। इसीका नाम सख्य है। सख्य का आधिक्य होने पर कुछ दिन के बाद स्वयं ही भक्त के हृदय में यह उत्पन्न होता है कि वे जगदीश हैं, मैं क्षुद्र हूँ, वे करुणानिधान दीनदलालु हैं, मैं इन गुणों से नितान्त दूर हूँ, वे त्रिभुवन धनी हैं, मैं रङ्क हूँ। भाव यह कि उच्च से उच्च गुण उनमें हैं, वे पुरुषोत्तम हैं, मैं निर्गुण हूँ, अधम हूँ, हममें उनमें महदन्तर है मैं उनके साथ मैत्री करनेके योग्य नहीं, वे केवल कृपा के भाव से प्रेरित होकर मुझे अपना मित्र बनाये हैं, वे बनाते हैं तो बनायें किन्तु मैं ऐसा करने का साहस नहीं कर सकता। अहा इतना बड़ा स्वामी जब मुझ पर ऐसी दया करता है तब मैं क्यों न उसे आत्म समर्पण कर दूँ। ऐसा सोचकर भगवत् का भक्त आत्म समर्पित कर देता है। इसलिये अनन्य भाव से भगवत् के

चरणों में अपना तन मन धन जन सर्वस्व समर्पित करने तथा हर तरह से न्योछावर होजाने का नाम है आत्मनिवेदन।

इसी आत्मनिवेदन के अन्तर्गत शरणागतभाव, कान्ताभाव, पतिव्रताभाव, नवोढ़ाभाव, सेवाभाव, अनन्यभाव, मधुरभाव, गोपीभाव, रासोत्सवभाव, श्री राधाभाव, कतिपय अन्य भावों की भाँति चातकभाव भी है।

भक्त चातक अपने मरने के समय भी किसी दूसरे जल की सहायता नहीं लेता। स्वातिबुन्द की जगह पत्थर बरसते हुए मेघ पर कभी स्नेह न्यून नहीं करता। तथा उसके अवगुण नहीं देखता कभी मन बाणी कर्म से उस पर क्रोध नहीं करता बल्कि चातक कभी २ यह समझ के कि जल पीने से प्रेम कम पड़ जायगा प्यासा भी स्वाती का बुन्द नहीं पीता।

प्रेमजल भले ही उसका प्यारा न बरसे पर प्रेमिक उस पर पूर्ववत् ही आसक्त रहेगा। वह निरन्तर ही "पिव कहाँ, पिव कहाँ, पिव कहाँ पूँछता है"। यदि ऐसीही वियोग दशामें अपने प्यार का ध्यान करते २ शरीरपात होजाय तो इससे बढ़के और क्या हो सकता है। इस भाँति शरीरत्याग से योगिजन-अप्राप्यगति प्राप्त होती है। पद्मपुराणान्तर्गत पाताल खण्ड के ५१ अध्याय में लिखा है कि—

आश्रित्य चातकीं वृत्तिं देहपातावधि द्विज,
सरः समुद्र नद्यादीन् विहाय चातको यथा।
तृषितो म्रियते वापि याचता वा पयोधरम्।

चातकी वृत्ति का आश्रय लेकर देहपात करे। जैसे तालाब समुद्र, नदी आदिकों को भूलकर चातक मेघों से जल की याचना करता मरता है उसी भाँति भगवत् के भक्त को भी संसार के

समस्त झूठे झंझटों को त्याग कर भगवान् से अनुग्रह की याचना करते हुए शरीर का त्याग करना चाहिये ।

जन्म से लेकर मरण पर्यंत जगदीश की करुणा कृपा का लेश भी चाहे भक्त को न प्राप्त हुआ हो पर चातक की भाँति घनश्याम से प्रेम कदापि न्यून नहीं करे ।

"जलद जनम भरि सुरति बिसारै, याचत जल पवि पाहन डारै ।
चातक रटनि घटति घटि जाई, बढ़ै स्वामिपद प्रेम सचाई" ॥

इसी चातकभाव को गोस्वामीजी ने २७७ से लेकर ३१२ दोहे तक वर्णन किया है । इसलिये उन दोहों की व्याख्या करने के पूर्व ही संक्षेप से उनके द्वारा दिखलाई हुई भक्ति का वर्णन करना समुचित समझ पड़ता है । जिससे गुणज्ञ रसिक पाठक एक छोटे से रूप में उन दोहों का पारस्परिक सम्बन्ध देख लें ।

पहिले पहिल भक्त को केवल श्रीराम जी पर ही भरोसा करना उचित है । और उन्हीं से अपनी सब आकांक्षाओं के पूर्ति की आशा करना यगेय है २७७ । भक्त को कभी हताश न होना चाहिये २७८ । किन्तु यह जान लेना चाहिये कि तुच्छ कामनाओं का फल तुच्छ ही है । इसलिये केवल भक्ति की प्राप्तिही का आदर्श अपने सामने रखना चाहिये, वही यावत् कल्याणों की मूल है २७९ । इसकी प्राप्ति का मार्ग नित्य जाप और नित्य नव प्रेम है । कागभुशुण्ड की कथा से विदित है कि बिना अविरल भक्ति के प्राप्त किये भगवद्दर्शन दुर्लभ है । और अपनी अध्यात्मिक दशा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं "नित नव प्रीति रामपद पङ्कज" इसी बात को गोस्वामी जी ने विनय में भी दिखलाया है ।

"सुमिरि २ गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाऊँ,
तुलसिदास अनयास रामपद पइहों प्रेम पसाऊँ"

यह भी स्मरण रहे कि भक्ति की प्राप्ति के लिये "सियाराम मय सब जग जानी" की उच्च मानसिक अवस्था प्राप्त करना होगा। जिसको कि महाराज श्रीकृष्ण ने गीता जी में स्वमुख से कहा है "वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः" किन्तु इस दशा को प्राप्त करने के लिये अनसूया गुण का ग्रहण दृढ़ता से करना होगा। अर्थात् किसीमें किसी भाँतिका दोष न देखना, इसीको गोस्वामी जी ने मानस के पूर्व ही कहा है—

"जड़ चेतन, गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार"

"अस बिवेक जब देई बिधाता, तब तजि दोष, गुणहिं मन राता" २८१। तब अविरल भक्ति में स्थित होने की चेष्टा होगी २८२ पुनः उसी में तन्मयता होजायगी २८३। औरोंमें दोष न देखने के साथ ही अपने प्रियतममें भी अत्यन्त निर्दोषता मानना पड़ेगी। यदि प्रियतम में कोई दोष है तो उनमें सच्चा प्रेम कैसे होसकेगा। २८४। फिर आत्मसमपर्ण जो पराभक्ति का रूप है वह भी न बन पड़ेगा २८५। लेकिन यह तो समझ लेना चाहिये कि यह भक्तिभाव कोई जड़भाव है उसमें अपनत्व का निर्मूल नाश नहीं होजाता। दास्य तथा सख्यभाव का सुख भक्त को भली भाति प्राप्त रहता है। इसको गोस्वामी जी ने २८६ दोहे के द्वारा दिखलाते हुए कहा है कि जब तू चातक की जैसी भक्ति करेगा, तब प्रियतम से मान कराना भी तुझे शोभा देगा। प्रियतम उसमें भी सुख मानेगा क्यों कि वह महादानी है २८७।

शठ सेवक की प्रीति रुचि राखहिं राम कृपालु।
उपल किये जलयान जेहि सचिव सुभट कपि भालु॥

किन्तु जो कुछ हो वह अनन्यभाव से हो फिर किसी दूसरे नाथ के द्वारे पर गर्दन झुकाने की इच्छा शेष न रहे २८८।

भक्ति का मार्ग सरल भी है कठिन भी। ज्ञान मार्ग से जाने पर परिश्रम पड़ता है। उसका फल भी क्रियावान को शक्तिरूप में मिलता जाता है। परन्तु भक्तिमार्ग में इसके विपरीत है। यह बड़ी उच्च कक्षा है। इसमें परीक्षा लेकर ही छात्र प्रविष्ट होता है। इसलिये परीक्षा से घबड़ाना न चाहिये। किन्तु उसको भगवत् की अनुग्रह समझ कर गुणग्राही बन जाना चाहिये २८०। परीक्षा चिरकाल तक नहीं होती रहेगी. क्योंकि यह भी अन्तवती है। और परीक्षा में उत्तीर्ण होने के अनन्तर प्रियतम की ओर से योग्यता का सन्मान भी योग्य ही मिलेगा २८१। इन परीक्षावों के अनेकानेक रूप हैं। प्रत्येक जीव को यह विलग विलग रूप में दिखाई पड़ती हैं। गोस्वामी जी ने इनके कुछ रूप २८२ से २८४ तक के दोहों में दिखलाये हैं। और यह भी कह दिया है कि यह रूप अलख हैं। अत्यन्त गूढ़ हैं केवल भक्त ही उन्हें पहिचान सकता है।

पराभक्ति के प्रेम की जो दशा है वह किसी क्रिया जैसे जप, अर्चन आदि पर निर्भर नहीं। यह दशा तो चित्त की है। इसलिये इसका होना स्वाभाविक है २८४। प्रेम किसी की नकल करने से नहीं होसकता। कहावत है कि "नकल से अकल पैदा नहीं होती" इसलिये भक्त को अपने प्रेम का भाव अपने हृदय से नवीन उत्पन्न करना होगा। सच्चा प्रेम हृदयके भीतरसे उत्पन्न होता है। बाहर से लाया नहीं जासकता। उसमें अद्भुत वाक्य शक्ति है। उसके द्वारा भक्त अपने प्रियतम से एकान्त में बातें किया करता है। इसलिये भक्त को सब से अनोखी भक्ति करने की आवश्यकता है २८५ तथा २८६।

गोस्वामी जी आगे चलकर यह भी बताए देते हैं कि सच्चा भक्ति का मार्ग पूर्णरूप से धर्मसंयुक्त है। और उसका सम्पूर्णरूप अत्यन्त विमल है २८७। भगवान श्रीकृष्ण जी ने गीता में इसी

भक्ति का अत्यन्त सुन्दर रूप वर्णन किया है। उससे बढ़कर कहना नितान्त असम्भव है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिद मुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सु सुखं कर्तुमव्ययम्॥

भक्त बाहरी बर्तावों की परवाह बिलकुल नहीं करता, वह केवल भीतरी भावों को ही ग्रहण करता है। शत्रु और मित्र दोनों ही वही बात कहते हैं किन्तु उनका ग्रहण बिपरीत होता है २९८ जैसे प्रियतम वाह्य बर्ताव करने में स्वतन्त्र है। उसी भांति भक्त भी पराधीन नहीं। भक्त को किसी बाहरी आडम्बर या क्रिया की आवश्यकता नहीं। "क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे" २९९। इसलिये भक्त को चातुरी उचित है ३००। भक्त को यदि कोई पीर होना चाहिए तो वह यह कि कहीं उसके प्रेम में बाधा न पड़े ३०१ और उसका दृढ़ संकल्प कहीं टूट न जाये ३०२। कहीं अपने ही अङ्ग से ऐसा न कोई बुरा बर्ताव होजाय, जो भक्ति के बिरुद्ध उपस्थित होपड़े। केवल अपने जीते ही जी प्रण का निर्वाह काफी नहीं, मरने के बाद भी उसका पालन होना चाहिये ३०३ तथा ३०४ और ३०५।

इस मार्ग का अन्त नहीं है, जैसे भगवत् अनन्त है, उसी भाँति उनके संयोग के सुख भी अनन्त हैं। इसीसे भक्ति भी अनन्त होनी चाहिए कभी उससे तृप्त होजाने में पूरा नहीं पड़ेगा। ३०६ से ३०८ तक।

अन्त में गोस्वामी जी ब्रह्मदर्शन का रूप ३०९ दोहे में बतलाते हैं कि जबतक भगवत् का साक्षात्कार न होजाय, तबतक भक्त को किसी और दर्शन को देखकर मोहित न होजाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा तो भक्तिपथ से च्युत होजायगा। इसका आदर्श गोस्वामीजी ने कागभुशुण्डजी के जीवनचरित में दिखलाया

है, कि शिवजी से अपूर्व वरदान प्राप्त करके उनको तनिक भी मोह नहीं हुआ। परन्तु प्रतिदिन भगवद्दर्शन की अभिलाषा बढ़ती ही गई।

छूटी त्रिविध ईर्षना गाढ़ी, एक लालसा उर अति बाढ़ी।
राम चरण वारिज जब देखौं, तब निजजन्म सुफल करि लेखौं॥
३१० तथा ३११।

॥ दोहा ॥

अनन्य भरोस।

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास २७७

चातक तुलसीदास एक घनश्याम राम का,
किये भरोसो रहत उन्हीं के दयाधाम का।
बल उसके हैं वही, उन्हीं की करता आसा,
सब कुछ उसके वही उसे उनका विश्वासा॥

अनैराश्य।

जौ घन बरसै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहिं, तऊ तिहारी आस २७८

तऊ तिहारी आस चित्त चातक को मेरे,
कबहुँ निराशा नहीं, आय सकती है नेरे।
चाहें बरसैं मेघ समय बर्षा का पाकर,
चाहै कबहूँ नहीं देयँ बूँदहू गुणाकर॥

प्रेम पिपासा

चातक तुलसी के मते, स्वातिहु पियै न पानि ।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटे घटेगी आनि २७६

घटे घटेगी आनि[1] यही चातक विचार है,
बढ़ै प्रेम की प्यास इसी में भरा सार है ।
स्वाति बूँद भी इसी हेतु नहिं वह पीता है,
विरहवन्हिकी लपट, जानिके जल जीता है ॥

अमित जाप तथा नित्य नव प्रीति ।

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अंग
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रंग २८०

नित नूतन रुचि रंग प्रेम चातक का जैसा,
किसका वर्णन करूँ कौन हो सकता ऐसा ।
रटत रटत प्रिय नाम, रह गई जीभ बिचारी,
सूखे सारे अंग तदपि उसका क्रम जारी ।

अनसूया ।

चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के दोख ।
तुलसी प्रेम पयोधि की, ताते नाप न जोख २८१

---

१ प्रतिज्ञा ।

तातें नाप न जोख प्रेम का सिन्धु अगाधो,
इस दुस्तर का पार कौन पासकता साधो !
चढ़ते चातक के न चित्त में दोष मेह के,
लखता केवल गुणहिं यही हैं अर्थ नेह के ॥

अविरल भक्ति

बरखि परुख पाहन पयद, पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहिं चूक २८२

चतुर चातकहिं चूक कभी नहिं चहिये परना,
उसको अपना काम चाहिये निश्चय करना ।
उसके प्यारे पंख पयोधर उपल बरस के,
करदे चाहे टूक टूक, पर नेक न टसके ।

तन्मयता ।

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर २८३

कबहुँ दूसरी ओर राम तति दास न जैहै,
चाहै पावै मान निरादर हू को लै है ।
गरज २ घन घोर कुलिश पवि पाहन फेंकत,
चातक सबकहँ निदरि किन्तु घनही को देखत ॥

प्रियतम पर अदोष दृष्टि.

पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि, झकोरि, खरिखीझि
रोष न प्रीतम दोष लखि, तुलसी रामहिं रीझि २८४

तुलसी रामहिं रीझि दोष मत उनके लखना,
हैं वह परम-अदोष हृदय में उनको रखना।
चातक निशिदिनरटत कबहुँ पवि १ पाहन २ पावत,
कवहूँ झोरि झकोरि दमकि दामिनि हहरावत ॥

आत्म विस्मृति।

मान राखिवो मांगिबो, पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउँ तब फवैं, जब चातक मत लेहु २८५

जब चातक मत लेहु तभी तुमको सोहैगा,
वैसा मांगन मान नेह तबहीं जोहैगा ३।
पहिले सबतजि आश सभीविधि उनका होले,
फिर मनमाना मान पायगा निजता खोले॥

मान।

तुलसी चातक ही फवै, मान राखिबो प्रेम।
वक्रबूँद लखि स्वाति हूँ, निदरि निबाहत नेम॥ २८६

१ बज्र। २ पत्थर। ३ मिलेगा।

निदरि निबाहत नेम विन्दु टेढ़ी नहिं लेता,
जो धन करि अपमान विन्दु स्वातिहुँ का देता।
प्रभु हैं परम उदार शीलनिधि गुनके सागर,
टेढ़ी मेरी नहीं, और को होगी गुनकर ॥

महादानी।

तुलसी चातक मांगबो, एक सबै घन दानि।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि २८७

लेत जो घूँटक पानि बैर जूँठे भिल्लिन के,
भरतहुँ करते चाह दान की करसे तिनके।
विष्णु देव हैं भरत जगत के धारण कर्ता,
पालन शासन करन दुष्ट दानव संहर्ता ॥

अनन्यता।

तीनि लोक तिहुँ काल जस, चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता, सुनी दूसरे नाथ ॥ २८८

सुनी दूसरे नाथ दीनता नहिं चातक की,
इसने ब्रत धारणा, अगम सब से बेशक की।
तीनि लोक तिहुँ काल चलनि याही चलिआई,
चाहत जो कल्याण एक का हो रहु भाई ॥

प्रेम परीक्षा।

प्रीति पपीहा पयद की, प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, १ कियो कनउड़ो दानि २८६

कियो कनौड़ो दानि मेघ को याचक चातक,
उलटी है यह रीति कनौड़ो होता याचक।
कर कर अत्याचार देखता फड़कन इसकी,
बनता खुद बेदर्द भक्ति झलकाता तिसकी॥

गुणग्राहकता.

नहिं जाचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मांगनेहिं, को वारिद बिन देइ॥ २६०

को वारिद बिन देइ पपीहा से मानी को,
जो जलभरा न लेइ न मांगत है पानी को।
सीस नाइ नहिं लेहि ऊर्ध्वमुख पिय पिय करता,
अपने दृढ़ अभिमान मान मानी का हरता॥

भक्त की दृढ़ता का सन्मान.

केहि नहिं ज्यायो जगत में, जीवन दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहिं, पयद प्रेम पहिंचानि २६१

---

१ एहसानमन्द

पयद प्रेम पहिचानि भक्त चातक का प्यारा,
दव्यो प्रेम के भार भिक्षु के सन्मुख हारा।
कर करके जलदान जिलाया किसे न इसने,
जो कुछ भी हो किया हराया इसे न इसने।

गूढ़ स्नेह.

साधन सांसति सब सहत, सबहिं सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की, रीति-बूझि बुध काहु २६२

रीति बूझि बुध काहु परस्पर चातक घन की,
जो तू जानन चहत प्रीति रति प्रभु अरु जनकी।
जलद सुखद सब काहु फलोंसे भूतल भरता,
चातक साधन करत कष्ट सहि जल बिनु मरता॥

अदृश्य प्रेम.

चातक जीवन दायकहिं, जीवन समय सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परे चातक प्रीति प्रतीति २६३

चातक प्रीति प्रतीति अलख है ऐसी भाई,
कभी किसी को नहीं नेकहू देत दिखाई।
जासों चातक जियत वही घननाथ पयोधन,
देता, पर निष्काम उसे लेता न सुखी मन॥

२-चातक प्रीति प्रतीति अलख है लखि सुपरैना,
कोइ सुप्रीति घन करत नाहिं, दुख देत डरैना।
जीवन जिसने दिया वही प्रतिपाल करैगा,
जातहिं ताकी शरण सभी दुख दोख हरैगा॥

स्वाभाविक प्रेम.

जीव चराचर जहँ लगे, है सब को हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह २६४

घन सों सहज सनेह भयो चातक के मन मे,
नहिं कछु देखत हानि लाभ वह अपने तनमे।
साधक चाहत यत्न फलहिं ज्यों नीरहिं घनमे,
प्रेम पयोनिधि डूबि, कामतजि रख हरि मनमे॥

सर्वोपरिता.

मुख मीठे, मानस मलिन, कोकिल मोर चकोर।
सुयश धवल चातक नवल, रह्यो भुवनभरि तोर २६५

रह्यो भुवनभरि तोर धवल यश नवल तिहारो,
कोकिल मोर चकोर सरिस नहिं तव ब्यवहारो।
बोलैं बानी मधुर अशन सर्पादिक जिनके,
मन बानी अरु कर्म एक नहिं देखियत तिनके॥

असादृश्य.

डोलत बिपुल विहंग बन, पियत पोखरिन बारि ।
सुजस धवल चातक नवल, तुही भुवन दस चारि २६६

तुही भुवन दस चारि सुयश निर्मल पावेगा,
जो सब आशा छोड़ि एक श्रीपति ध्यावेगा ।
भ्रमते पन्थ अनेक काम लोलुप फल भोगी,
परमारथ नहिं पाय, भोगि फल, लौटत योगी ॥

सर्वांग नैर्मल्य

बास, बेष, बोलनि, चलनि, मानस मंजु मराल ।
तुलसी चातक-प्रेम की, कीरति बिसद बिसाल २६७

कीरति बिसद बिसाल प्रेम चातक की तुलसी,
जेहिलखि परम पुनीत मोरि मति पुनि २ हुलसी
बोलनि चलनि पुनीत बास अरु बेसहु सुन्दर,
मानस परम पवित्र एक मंजुल मराल कर ॥

वाह्य बर्ताव की उपेक्षा.

प्रेम न परखिय परुषपन, पयद सिखावन एह ।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह २६८

ऊषर बरसै मेह तृषित चातकहिं न देता,
पापी चातक शुद्ध गंगजल हूँ नहिं लेता।
चातक घन की प्रीति यही देता है शिक्षा,
वाह्य परुषपन सो न होय हिय नेह परीक्षा॥

(२) ऊषर बरसै मेह, बुन्द इसके मुख एको,
पड़ता कभी न हाय, पातकी चातक देखो।
मूरुखजन यह कहत प्रेम को परख न पाते,
जिमि भगवत जन रंक, देखि के खल इठलाते॥

अत्यन्त स्वातन्त्र्य.

होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़ २९९

समुझि प्रेमपथ गूढ़ निरखि प्रहलादहिं बीती,
गिरिते गेरचो ताहि, अग्नि जारचो बहु रीती।
त्रास देत चुप रहत, मूढ़ता या न हरी की,
शास्त्रदोष नहिं ताहि अवज्ञा पिता करी की॥

चतुरता।

गरज आपनी सबन को, गरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि ३००

जाचक जानि सु दानि हुवा चातक विज्ञानी,
सब को देता जलद यही है बड़ा सु दानी।
मेरा प्राणाधार एक सबहिन कर दाता,
चातक यह दृढ़ बूझि गरज अपनी बतलाता ॥

नेम प्रेम की पीर.

खरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर परि है पुहुमी १ नीर ३०१

परि है पुहुमी नीर हाड़ मेरे, मरने पर,
चातक सोचत मनहिं बाज के चंगुल पड़कर।
जीवत लौं निभगया प्रेम, क्या इतना बस है,
मरनें पर भी वही प्रेम निबहै तब यश है ॥

दृढ़ संकल्प.

बध्यो बधिक परचो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहु लगी न खोंच ३०२

मरतहु लगी न खोंच प्रेमचादर मे जिसके,
पड़ा गंगजल बीच बधिक शर उरमें तिसके।
उलटि उठाई चोंच कहीं जल जाय न मुख मे,
प्रण कहुँ भ्रष्ट न होय मोर इस अन्तिम दुख मे ॥

पृथिबी १,

अपूर्व दृढ़ता.

अंड फोरि कियो चेटुवा२ तुष३ पर्यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर वारि ३०३

डार्यो बाहिर वारि पकरि चंगुल ते तुष हीं,
सुतहिं राखि, करि यतन, चतुर चातक मन लखही
अंडो है मम अंश अन्यजल तेहिं सुभरै ना,
प्रन अभंग है मोर प्रेम मर्याद टरै ना॥

स्वमत शिक्षा.

तुलसी चातकदेत सिख सुतहिं वार ही वार।
तात न तर्पन कीजिए बिना वारिधर–धार॥ ३०४

बिना वारिधर४–धार मोर तर्पन मत करियो,
मोर आजनम नेम न मरजाने पर हरियो।
चातक देता सीख सुतहिं गुनि कुल के हितुको,
और न पीना नीर न देना तर्पन पितुको॥

आमरण संकल्प.

सोरठा.

जियत न नाई नारि५ चातक, घनतजि दूसरहि।
सुरसरि हू को बारि मरत न मांगेउ अरघ जल ३०५

बच्चा २, भूसी, या अंडे की खोखली ३, मेघ ४, गर्जन ५

जल नहिं मांगेउ अरघ जियत कबहूं सुरसर को,
नारि न नीची करी देखि पूरित जलधर को।
जियत न देखा और द्वार पर सांसत सह ली,
अन्तहु राखेहु नियम, रहन अपनी ही रह ली॥

प्रेमतृषा.

सुन रे तुलसी दास, प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को ३०६

अँचवे जल स्वातिहिं चतुर मासा न पियै सो,
अविरल नेह सनेह राखि आजनम जियै सो।
जल की इच्छा नहीं प्रेम का वह है भूखा,
"पिव पिव" निशिदिन रटत तृषा सों आनन सूखा

अभिमत स्वीकार.

जाचै बारह मास, पियै पपीहा स्वाति जल।
जान्यौ तुलसीदास, जोगवत नेही मेहमन॥ ३०७

जोगवत नेही नेह, मनलगा चरण कमल मे,
लगी चाहना परम मधुर चरणाम्रृत जल मे।
जाचत बारो मास और जल दास न पीता,
केवल वही भरोस सुमिरता गुनता जीता॥

केवल प्रेम पिपासा.

दोहा.

तुलसी के मत चातकहिं केवल प्रेम पियास ।
पियत स्वातिजल जान जग, जाचक बारहमास ३०८

जाचक बारहमास बना क्यों उस जलधर का,
स्वाती बूंद बिहाय न लेता इधर उधर का ।
हुवा मुझे मालूम सिर्फ है प्रेम पियासा,
अमियबुन्द लगि रहै, जियै वाही की आसा ॥

ब्रह्मदर्शनामृतपान.

आलवाल मुकुताहलनि हिय, सनेह--तरु-मूल ।
होइ हेतु चित चातकहि स्वाति सलिल अनुकूल ३०९

"आलवाल" थहला या कियारीमें "मुकुताहलनि" मोतियों का छिटक जाना ब्रह्मदर्शन का रूप है। तभी चित चातक के लिए "स्वाति सलिल अनुकूल" अमृत की वर्षा जिसको मुक्तजीवी लोग प्राप्त किया करते हैं।

स्वाति सलिल अनुकूल चित्तचातक हितकारी,
उग्यो नेहतरुमूल हिए मोतिन की क्यारी ।
तहँ चित चातक बैठि सियावर रामहिं ध्यावत,
अमिय सलिल करि पान जगत जीवन फल पावत ॥

अन्य की उपेक्षा ।

उष्णकाल अरु देह खिन, मग पंथी, तन ऊख१ ।
चातक वतियां ना रुचीं, अनजल सींचे रूख ३१०

अनजल२ सींचे रूख मांझ चातक नहिं वैठे,
ग्रीषम मारग चलत तृषा जिह्वा चह ऐंठे ।
सहत अनेकन कष्ट दुष्ट सँग दास न जोहैं,
रमणी हास विलास विभव हरिजनहिं न मोहैं ॥

स्वसिद्धान्तविरुद्ध का त्याग ।

अनजल–सींचे रूख की छाया ते वरु घाम ।
तुलसी चातक वहुत हैं यह प्रवीन को काम ३११

यह प्रवीन को काम रूप लखि के नहिं मोहै,
करिके मनन सुशास्त्र, सत्यध्रुव धर्महिं जोहै ।
वरु सहिहै वहुघाम अन्यजल तरु नहिं लहिहै,
ज्ञानी चातक चतुर रहनि अपनी ही रहि है ॥

अनन्यता का फल ।

एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह ।
तुलसी जासों हित लगे वहि अहार, वहि देह ३१२

---

१ तपा हुवा या उष्ण २ दूसरे जल

चहि अहार वहि देह जो कि दासन हितकारी,
चहे सो हटकरि मांग, भोग अनहित अपकारी।
जे यक अंगी होहिं भक्ति–अविरल उर आनहिं,
प्रभु गुण सील सनेह कृपारस तेई जानहिं॥

विविरसन्त ३ तनु स्याम है वंक चलनि विषखानि।
तुलसी जस स्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ३१३

सीस समरप्यो आनि व्याल, निज सुयश श्रवण कर,
दो जिह्वा, तनुस्याम, वक्रगति, आननविषधर।
जगवञ्चक कहि मधुर वचन वहु सुजस वखानहिं,
मूढ़ सुजस सुनि मत्त होहिं तिन कहँ सन्मानहिं॥

आप व्याध को रूप धरि, कुहो ४ कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग ३१४

राग अर्थात् मधुर स्वर (हरिण को गाना बहुत प्रिय है) आप वहेलिया का रूप धरके भले ही हरिण को मारे। अर्थात् पहिले अपनी रसीली तानसे उसे वशीभूत करके और फिर स्वयंही ब्याधा वनके वेधै किन्तु मृग कभी अपनी वान से नहीं मुड़ सकता यानी कपटी प्रेमी भले ही कपट करके सच्चे प्रेमिक को धोखा दे पर वह कभी अपना प्रेम कमती नहीं कर सकता क्यों कि अगर वह ऐसा करे तो परे प्रेमपद दाग। प्रेम के कपड़े में दाग पड़जाय।

---

३ दो जीभ ४ मारे

तुलसी मनि निज दुति फनिहिं व्याधहिं देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ॥ ३१५

गोस्वामी जी कहते हैं कि मणि अपनी कान्ति से बहेलिया को सर्प दिखा देता है। फल यह होता है कि सर्प मारा जाता है। इस बात को जान के भी सर्प अपना प्रेम मणि से न्यून नहीं करता।

(२) सर्प के सम्बन्ध में यह कथन है कि सर्प रात को अपनी मणि बाहर निकाल कर रख देता है। और उसी की उजेली में घास वा ओस खाता है। अगर उस मणि को कोई ले लेता है तो सर्प अन्धा हो जाता है। और अपना सर पटक पटक कर प्राण दे देता है। गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि मणि के जाने पर वह उसके वियोग में विकल रहे परन्तु अन्धा न भी होय तबभी उसके प्रेम में धब्बा नहीं लगता लेकिन ऐसा होता नहीं वह अवश्य ही अन्धा हो जाता है।

जरत तुहिन १ लखि बनजबन २रवि दै पीठि पराइ।
उदयविकस, अथवतसकुच, मिटै न सहज सुभाइ ३१६

कमल के बन को ओस से जलते हुए देखकर सूर्य पीठ देकर भागता है किन्तु कमल की सूर्य के उदय में विकसने तथा उसके अस्त होने पर सकुचने की स्वाभाविक आदत नहीं जाती।

भाव यह कि यद्यपि प्रेमी के ऊपर आपदा को देखकर छली प्रेमिक किनारा कसता है किन्तु प्रेमी इसबात पर कभी ध्यान नहीं देता वह बराबर प्रेमिक के दुख में दुखी और सुख में सुखी रहता है।

महात्मा कबीर के विषय में किम्वदन्ती है कि एक बार वे कहीं जा रहे थे चलते २ थककर एक खेत की मेड़पर बैठकर कहने

लगे बहुत थक गया हूं प्रभु दया करके अगर एक घोड़ा भेज देते तो शेषमार्ग सुख पूर्वक तयँ करते । इतने में एक सिपाहियों के गरोहने आकर इन्हें बेगार में पकड़लिया और इनके सरपे बोझ लाद दिया । आप हँसते हुए बोझ को लादकर चलदिए । सिपाहियों ने हँसने का हेतु पूँछा आप बोले—

हरे गोसैयां का यहु कीन ।
तरे का मांगेउँ उपर का दीन ॥

अच्छा, आप की इच्छा, दया ही करते हो, कुछ हर्ज नहीं प्रेमी हो। सिपाहियों ने किसी तरह इन्हें जाना कि यह तो महात्मा कबीर हैं। छोड़ दिया, पावों में गिरे, प्रार्थना की, क्षमा मांगी, । क्या इन बातों से कबीर ने क्या कभी अपना प्रेम प्रभुपर से न्यून किया, कभी नहीं ।

देउ अपने हांथ जल मीनहिं माहुर घोरि ।
तुलसी जियै जो वारिविनु तौ तु देहिं कविखोर३१७

अगर तुम्हें मछली के प्रेम की परीक्षा करनी है तो अपने हांथ से उसके रहने के जल में विष मिला दो । देखो, क्या मछली कहीं जल छोड़ के वाहर जाती है । कभी नहीं जायगी । गोस्वामी जी कहते हैं कि अगर वह वाहर चली जाय तो कविलोग मेरी उक्ति में दोष लगा दें ।

भाव यह कि भक्तजन अनेक कष्ट आने परभी अपने प्रेम-भाव का त्याग नहीं करते ।

मकर उरग, दादुर, कमठ, जल जीवन जल गेह ।
तुलसी एकै मीन को है सांचिलो सनेह ॥ ३१८ ॥

मकर, जल सर्प, मेंढक और कछुवे इन चारों का जीवन और घर जल ही है, परन्तु यह जीव जल से पृथक होकर भी जीवित रहते हैं। मगर जल से सच्चा सनेह रखने वाली मछली ही है। वह जल को छोड़ते ही अपने प्राणों को छोड़ देती है।

तुलसी मिटै न मरि मिटेहु सांचो सहज सनेह।
मोरसिखा विन मूरि हू पलुहत गरजत मेह ३१६

गोस्वामी जी कहते हैं मरके मिटजाने परभी हार्दिक और सच्चा सनेह नहीं मिटता। जैसे विना जड़ की भी मोरसिखा नाम की बूटी मेघ के गरजते ही लहलहा कर हरीभरी हो जाती है। यह मोरसिखा बूटी आठ महीने जली भुनी ज़मीन में मिलजाती है मेघ चाहे बरसे चाहे नहीं पर उसकी गर्जना ही से वह हरी हो जाती है।

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत, करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवठा वड़ो न होइ ३२०

सब लोगों का कथन है कि प्रेमिक और प्रेम सुलभ है अर्थात सुलभता से प्राप्त हो जाते हैं। और सभी अपने प्रियतम से प्रीति करते हैं। किन्तु मछली की जैसी प्रीति त्रिभुवन भरमें कहीं नहीं पाई जाती।

तुलसी जप तप नेम व्रत सब सब ही तें होइ।
लहै वड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ॥ ३२१ ॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि जप, तप, व्रत, नियम यह सभी कर सकते हैं। और अपनी २ रुचि के अनुसार करते भी हैं। लेकिन इन सब के करने का फल तभी होता है, अर्थात् जापक तभी वड़ाई पाता है जब वह अपने ध्येय को अपना इष्टदेव समझकर यानी अपना सर्वस्व बनाकर भजन करता है।

के लघु के बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिले महाविष होइ ३२२

आयुर्वेद की रीति से यदि घी, और सहत बरोबर एक में मिला दिए जायँ तो विष हो जाता है। इसी उदाहरण को सामने रखके गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि मित्र रूप, कुल, धन, विद्या, वय, महत्व आदि में सम है तो दुखकारी है, अर्थात् उससे विपत्ति के समय सुख नहीं प्राप्त हो सकता। मित्र पूर्वोक्तगुणों से चाहे न्यून हो चाहे बड़ा तभी सुख मिलता है। कुछ बड़े और छोटे मीत के उदाहरण।

चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी के शरीर त्याग करनें के उपरान्त सब लोगों की विकलता देखकर गुरु वशिष्ठ जी का शान्ति प्रदान करना बड़े मीत का उदाहरण है। यथा

शोक विकल सब रोवहिं रानी।
रूप शील बल तेज बखानी॥

\+ + + +

तब वशिष्ट मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
शोक निवारेहु सबहिं कर निज विज्ञान प्रकास॥

जिस समय श्रीमती जनकनन्दिनी सीता जी के विरह में भगवान् श्री राम जी व्याकुल हो रहे थे। तभी लछिमन समुझाए बहुभांती।

श्री लक्ष्मण जी के शक्ति लगनें पर श्री राम जी अत्यन्त विह्वल हुए। उसी समय श्री अंजनींनन्दन जी नें जिस तरह उनको आश्वाशन दिया वह द्रष्टव्य ही है। और उसका उल्लेख गोस्वामी जी ने जिस तरह किया है वह द्रष्टव्य ही है।

जो हौं अब अनुशासन पाऊं।
तो चन्द्रमहि निचोर चैल ज्यों आनि सुधा सिर नाऊं॥

कुदिन हितूसो हित सुदिन, हित अनहित किनहोइ।
ससिछवि हर रविसदन तउ मित्र कहत सबकोइ ३२३

इस दोहे में चन्द्रमा की कलाओं का रूपक है। शशि की कलायें सूर्य के प्रकाश से घटती बढ़ती हैं। और अमावास्या की रात को जब सूर्य और चन्द्र एक ही स्थान पर आ जाते हैं. तब चन्द्र प्रकाश बिल्कुल नहीं रहता। परन्तु ज्योतिष की रीति से दोनों एक ही राशि पर रहने के कारण मित्र कहलाते हैं।

अर्थ–आपत्ति के समय जो हितकरे वही हितू है। अच्छे समय में वह हितकरे चाहे अनहित। चन्द्रमा के प्रकाश को सूर्य अमावस्या में बिल्कुल हर लेता है। किन्तु ऐसा करने पर भी वही सूर्य "मित्र" कहलाता है। कारण यह कि उस तिथि को सूर्य अपने ही घरमे चन्द्रमा को रख लेता है।

मान्य मीत सों सुख चहै सो न छुवै छल छांह।
ससि, त्रिसंकु, कैकेयि गति लखि तुलसी मन मांह ३२४

मान्य मीत से अगर सुख चाहते हो तो छल की छांह भी न छुवो। अर्थात् जरा भी छल न करो। चन्द्रमा और त्रिसंकु कैकेयी की गति अपने मन में हे तुलसी विचारो। उदाहरणों पर निम्न कुंडलियां कथानक रूप से बँधी हैं।

कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ ३२५

कभी २ कोमल भी कठिन हो जाता है। अर्थात् दुखदाई हो जाता है। परन्तु जो हितू है वह हमेशा सहायता ही किया करता है। पलक और हांथ को देखो कि चाहे जितना बड़ा जैसा आघात आंख पर आए पर हांथ अपने ही ऊपर ले लेता है।

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित विलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरिवारि॥ ३२६

गोस्वामी जी का कहना है कि बैर और प्रीति यह दोनों भीतर और बाहर की मिलकर चारो आखों से हीन हैं। जैसे मन्द लोग सुरा का आदर और गंगाजल का निरादर करते हैं।

भाव यह कि बैर और प्रीति अथवा राग और द्वेष यह रज और तम के बाहरी रूप हैं। बिना इनका त्याग किए सत्व मे स्थित नहीं हो सकता। यथा गीतायां—

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्व स्थो निर्योगक्षेम आत्मवान॥

रुचै मांगनेहि मांगिवो, तुलसी दानिहिं दानु।
आलस अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु ३२७

गोस्वामी जी कहते हैं कि पंच जिसको अभ्यस्त उसे वही चलाना चाहिए, ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ चलते न कोउ बिलगावै, अति रसज्ञ सूक्ष्म पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै। यदि किसी को मांगने मे प्रवीणता प्राप्त होगई है तो उसके लिए मांगनाही सुखकर है। जिसको श्री महाराज तथा राजराजेश्वरी जी से मांगने की बान पड़गई है, उसे अपने दैन्य पथ पर ही स्थिर रहना चाहिए। भक्तको ज्ञानमार्ग का अवलम्ब लेकर इधर उधर भटकना अच्छा नहीं

इसी भांति जिसे देने में सुगमता प्राप्त हो गई है, और जिसे वैराग्य करते २ उसमें दृढ़ता आगई है उसके लिए वही अच्छा है। परन्तु जिसपथ पर चले उसपर बराबर आरूढ़ रहे। उसमें असावधानी करनेंसे सरासर अनहित है। अथवा अनखाना, इसलिए कि इतना चलनें पर भी अन्त नहीं मिलता, कभी चिन्ता और दुःख न करे। क्यों कि यह सब प्रेमपथ के अवरोधक हैं।

अमिय गारि गारेव गरल, गारि कीन्ह करतार।
प्रेम वैर की जननि जुग, जानहिं बुध, न गवाँर ३२८

सदा न जे सुमिरत रहहिं मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
ते पै तिनके जाहिं घर जिनके हिए न नैन ३२६

अपना जो सदा स्मरण नहीं करते रहते और मिलकरके प्रिय वचन नही वोलते ऐसा मित्र समझ करके भी मित्रता का दम भरते हुए वही इनके घर जाते हैं जिनके हिए न नैन। कहीं ऐसा भी मित्र होता है जो अपनी याद ही रखता है, न मिलनें पर सीधे बोलता ही है।

जिनके हिए न नैन वही जाते हैं फिर फिर,
कर्म फांस अस विषय भोग आशा से घिर घिर।
उसके ढिग जो कभी याद उनकी नहिं करता,
मिलने पर भी नहीं प्रेम का दम है भरता॥

हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध विनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दमन, भूमि परे ते हाड़ ३३०

भूमि परे ते हाड़ सदृश ह्वै गये वही अब,
मुख मे मोती तुल्य दसन जो रुचत रहे तब।
स्वारथ जव लों रहा, रहे हितकर शुचि सारे,
विनु स्वारथ वेकाम, अशुचि अरिभए बिचारे॥

माषी, काक, उलूक, वक, दादुर से भए लोग।
भले ते सुक, पिक मोर से कोउ न प्रेम पथ जोग ३३१

गोस्वामी जी कहते हैं कि इस संसार में प्रेम करने योग्य कोई नहीं क्योंकि जिन्हें बुरा कहा जाता है वे तो वुरे हैं ही, जो भले प्रसिद्ध हैं वे वुरे से भी बदतर हैं इस बात को गोस्वामी जी इस तरह सिद्ध करते हैं माषी, मच्छी कैसेही सुन्दर खाद्य पदार्थ में पड़कर मनको ग्लानि पहुँचाती है। उसी प्रकार खल भी कैसी ही सुन्दर बात क्यों न कही जाय उसे खराव करके मनोमलिनता उत्पन्न हो करता है। खलों का स्वभाव होता है कि किसी को दुखी देखकर और भी दुख देते हैं। तथैव मच्छी का नियम है कि पके फोड़े फुन्सी पर बैठकर अवश्य ही कीटोत्पादक वीट करके अत्यन्त कष्ट देती है छिद्रेष्वनर्था वहुली भवन्ति गोस्वामी जी कहते हैं 'परहित घृत जिनके मन माषी' ऐसे खल होते हैं।

काक, कौवा कांस, वीट वलि खाता है। सदा कठोर वचन वोलता है। वुर्व्यवहारी होने के कारण सदैव डरता है। यह कहीं उनकर मुझे मार न बैठे इस भय से सबसे पहिले मरे की आंख निकालता है। दुष्ट गीधादि पक्षियों का साथ करता है। समय पाकर स्वजाति के पक्षियों को भी मारकर खाजाता है।

दुष्टजन भी अभक्ष्य भक्षण करता है। प्रत्युपकार तो दूर रहा कृतज्ञता भी स्वीकार नहीं करता। असन्ध वाक्य वोलता है।

हितकरने वाले का निरन्तर अनभल चेतता है। यह दुर्व्यसनों का खजाना स्वजाति का महाशत्रु और मित्रकी भी मूलका छेत्ता है। नीचातिनीच जन इसे प्रिय होते हैं। भाव यह कि खल काक की भांति भीतर बाहर सर्वत्र ही काला होता है। इसीलिए गोस्वामी जी कहते हैं कि खल काक का साथ कभी नहीं करना चाहिए क्यों कि—"बायस पालिहि अति अनुरागा। होइ निरामिष कबहुँकि कागा।

उलूक, अनुल्लू की आदत है कि दुनियां को सोते से जगाने वाले सर्वोपकारी सूर्य से किसी भांति का स्वयं लाभ न उठाकर उनसे महाद्वेष रखता, बराबर पापी की भांति किसी कोटरे में छिपा रहता है, और अन्धकार देखकर महाप्रसन्न होता है।

असज्जन का भी स्वभाव ऐसा ही होता है कि वह किसी उन्नति शील की उन्नति नहीं देख सकता और उससे सदाद्वेष रखता है। उसका यह कभी विचार नहीं कि संसार ज्ञान के प्रकाश से आलोकित हो यही चाहता रहता है कि जगत् इस गाढ़ान्धकार में डूबा हुवा मरे की भांति अपना जीवन व्यतीत करे, और आप इस कार्य में नमूना बना रहता है।

बक, बगुला भक्त लोग प्रसिद्ध ही हैं। बक बराबर शान्ति से प्राणायाम जैसा चढ़ाये बैठा रहता है मानों जलमें तपस्या करता है। बड़े २ जीवों को छोड़कर छोटे २ जीवों को मौका पाकर चुपचाप हड़प कर जाता है।

खल भी वात्याऽम्बर कुछ कम नहीं रखते। समय पाकर बुरा कर्म करने में कभी नहीं चूकते। बलवान से न लड़ कर छोटे निर्बल को सताते रहते हैं। धोखा देकर निन्द्याति निन्द्य कर्म कर बैठते हैं।

दादुर, मेंढक वर्षा काल आने पर बराबर बक बक किया कृतज्ञता भी स्वीकार नहीं करता। असन्ध वाक्य बोलता है।

प्रकाशित करते रहते हैं। यह तो हुए निम्न और नीच। अब उच्चों की दशा देखिये।

शुक, पिक और मोर भले कहे जाते हैं। दुनियाँ में भले आदमी शुक पिक और मोर की भाँति हो गये हैं। शुक की चाहे जितनी सेवा की जाय, उसको जो चाहे पढ़ाया जाय, मगर वह इतना बेमुरौवत है कि समय पाकर सब उपकारों को भूलकर चट बाहर हो जाता है।

पिक, पिक मधुर भाषी होता है। मगर खाता है छोटे छोटे कीड़े अवश्य मिष्ट भाषो दुर्जन भी ऐसे ही होते हैं मोर का वर्णन पहिले बहुत हो आया है। सर्वाङ्ग सुन्दर मधुर भाषो मोर अवश्य होता है किन्तु "आदि अहार" मन घोर। अच्छा खल भी मोर के सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न होता है यही कारण है कि कोई स्नेह करने के योग्य नहीं।

हृदय कपट, वरवेषधरि, वचन कहैं गढ़ि छोलि।
अबके लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मनखोलि २३२

हृदय कपट से परिपूर्ण है, अर्थात् सर्प का भी ग्रसन कर जाता है। और सुन्दर वेष को धारण किए है, सुन्दर तो इतना है कि उसके पंखे पहिन कर श्रीकृष्णजी मोर मुकुटवाले प्रसिद्ध हुए। बचन भी बहुत सम्हाल के साफ बोलता है। ऐसे मयूर की भांति अब के लोग होगये हैं, अर्थात् "बोलहिं बचन मधुर जिमि मोरा। खाहि महा अहि हृदय कठोरा" ऐसे कपटी लोगों से दिल खोलकर कैसे मिला जाय।

चरन चोंच लोचन रँगौ, चलै मराली चाल।
छीर नीर विवरन समय, वक उघरत तेहि काल २३३

चरन, चोंच, और लोचन, यह तीनों लाल रँगे हैं अर्थात् पूरे राजहंस के लक्षण धारण किये हैं जैसे "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणै र्लोहितैः सिताः" अर्थात् वे राजहंस कहलाते हैं जिनके चरन और चोंच लाल और सारा वर्ण श्वेत रंग का हो। बगुला मे यह पूरे चिन्ह हैं। और मराल की जैसी चाल भी चलता है। किन्तु दूध और जल के विलग करने के समय वक की सारी कलई खुल जाती है।

चञ्चु लोचन पादैश्च गतिना मतिना समः,
नीर क्षीर विवेके तु हंसो हंसः वको वकः ॥

मिलै जो सरल हि सरल ह्वै, कुटिल न सहज विहाइ
सो सहेतु, ज्यों वक्रगति, व्याल न बिलै समाइ ३३४

कुटिल आदमी जो सरलजनसे सीधे होकर मिलता है, इस से उसकी स्वाभाविक कुटिलता नहीं छूट जाती। वह केवल सज्जनों की मण्डली में प्रवेश करने ही के लिये ऐसा करता है। जैसे टेढ़े चलने वाला सर्प विल के अन्दर जाने के समय सीधा होजाता है। किन्तु यह सीधापन विल में प्रवेश करने ही के हेतु है।

कृसधन सखहि न देव देखु, मुयहु न मांगव नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि, पावक पानी वीच ३३५

गोस्वामी जी कहते हैं कि जो अपने मित्र अलपधनी हैं, उनसे धन की याचना करके उन्हें दुख देना उचित नहीं। और जो जाति या स्वभाव से नीच हैं उनसे तो मरने पर भी न माँगना चाहिये। इससे तो मर जाना ही वेहतर है।

अब शंका यह उत्पन्न होती है कि अलपधन मित्र से और अधिक धनी नीच से मांगना बुरा है, तब किससे माँगे, क्या करे।

ग्रन्थकार इसका उत्तर यों देते हैं कि सज्जन को माँगन से इतनी दूर रहना चाहिये जितने अन्तर में जल और अग्नि रहता है।

जल और अग्नि में अगर किसी तरह का अन्तर नहीं तो दोनों में एक का नाश अवश्यम्भावी है। इसी तरह मनुष्य को भी अलग रहना चाहिए, क्योंकि यदि माँगा तो याचना से बढ़कर कोई नीच कर्म नहीं, किसी तरह माँगने पर मिल भी गया तो ग्रहीता का सर अवश्य नीचे लच जाता है। यदि दाता ने नहीं दिया तो समझो कि दाता की मृत्यु होगई। किसी ने कहा है—

सबसे पहिले वे मरे (जो) पर घर मांगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मरे जिन मुख निकसत नाहिं॥

अथवा माँगने वाले को अल्पधनी मित्र से और धनसम्पन्न नीच से इस तरह रहना चाहिए, जैसे कि वह व्यक्ति जिसके कि एक ओर तो भस्म करने वाला अग्नि और दूसरी तरफ डुबो देने वाला जल है। किसी ओर वह क्यों न झुके उसके नाश का सामान दोनों ओर है। परिणाम यह होता है कि वह मध्य में ही स्थित रहता है और समय पाकर भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। नीच से माँगना अग्नि में जलना है, जैसे—याञ्चामोघा वरमधि गुणे नाधमे ल ध कामः" और दुःख देकर रंक मित्र से माँगना जल में डूबने के बराबर है।

संग सरल कुटिलहि भए, हरि हर करहिं निवाहु।
ग्रह गनती गनि चतुरविधि, कियो उदर विनु राहु ३३६

कियो उदर विनु राहु चतुर ब्रह्मा सुर पालक,
कपट वेषधरि पानकियो अमरित सुर घालक।

अमियपान-ग्रह भयो पेट पुनि रह्यो न वाके,
केवल मुखसे भला करेगा क्या वह खाके ॥

२ कियो उदर बिनु राहु कुटिलता वाकी लखके,
विधिने सुरग्रह कियो मान अमरितका रखके ।
तदपि कुटिल अरु सरल संग निबहै ना तौलौं,
हरिहर अपनी कृपादृष्टि राखेंगे जौलौं ॥

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जन हू के संग ।
तुलसि चन्दन विटपवसि, बिनु विषभये न भुवंग ३३७

बिनु विष भये न भुवंग विटप चन्दनके वसके,
नीच नीचता तजत न सज्जनहू सँग फँसके ।
नीच भाव मन भरे उभरि हैं अवसर पाये,
निकल जायँगे किन्तु उच्च भावहिं उरलाये ॥

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु ३३८

गरल सराहिय मींचु धर्म उसका है सोई,
सुधा देत जिउ दान जानता है सब कोई ।
दुष्ट विदूषित शक्ति नहीं जब अपनी तजता,
भला तभी हो सदा भलाई अपनी भजता ॥

मिथ्या माहुर सज्जनहिं, खलहिं गरल सम सांच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक-आंच ३३६

पारद पावक आंच लगत है तुरतहिं भागत,
सत्य शील वर पुरुष तथा मिथ्या को त्यागत।
खल हू त्यागत सत्य गरल सम ताको लेखै,

सन्त संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पन्थ।
कहहिंसाधु कवि कोविद, स्रुति पुरान सदग्रन्थ ३४०

स्रुति पुरान सदग्रन्थ साधु कवि कोविद वानी,
है सम्मत इस भांति जानते इसको ज्ञानी।
साधु संग से मोक्ष, संग कामी के संसृत,
विषय भोग से गरल, त्याग से मिलत सु-अमृत॥

सुकृत न सुकृती परिहरै कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच॥ ३४१

गीधराज मारीच सिखावन दीन्हा अन्तहुँ,
जन्मजन्मकी सुकृति कुकृति नहिं मिटति कवहुँकहुँ।
रहा सुकृति युत गीध सुकृति करते तनु त्यागा,
मरत हुँ कीन्हेउ कपट छली मारीच अभागा॥

सुजन, सुतरु, वन ऊख सम, खल कंटिका रुखान।
परहित अनहित लागि सल सांसति सहत समान ३४२

सुजन लोग सुन्दर वृक्ष, जंगल और ऊख की भांति होते हैं। और खल लोग पत्थर काटने का टांका तथा लकड़ी काटने वाले रुखाने के तुल्य होते हैं। एक दूसरे के उपकार के लिए अनेकों आपदायें झेलता है। दूसरा दूसरे के अनहित करने के वास्ते बहुत व्यथायें भोगता है। वृक्ष, जँगल और ऊंख अपनी देह कटाते हैं परोपकार के लिए। टाँका और रुखान जो कि अपना मुँह आगी में जलवाते हैं बेदर्दी के साथ पिटते हैं वृक्षादि का अनहित करने के लिए। सज्जन और खल की भी यही रीति है।

पियहिं सुमनरस अलि विटप, काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगुल सुमति कुमति की बात ३४३

सुमति कुमति की बात अहैं तरुजीवी दोनों,
भ्रमर, कोल का किन्तु तुल्यपन कभी न होनों।
एक काटता वृक्ष मलिन करके फल खाता,
एक लेत रस गन्ध रूप पर मोहित गाता॥

अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिये का लाख।
दुइज न चन्दा देखिये उदौ कहा भरि पाख ३४४

उदौ कहा भरि पाख दुइज जो चन्द न देखा,
अवसर चूके दिए लाख क्या होता लेखा।
निकल गए यहि बाट राम लक्ष्मण अरु सीता,
सुन्दर सुख सम्भोग बिना उनके है रीता॥

ज्ञान अन भले को सबहि, भले भलेहू काउ।
सींग, सूंड, रद, लूम, नख, करत जीव जड़ घाउ ३४५

अनभल करने का ज्ञान सभी को है। भला करना कोई नहीं जानता। सींग, सूंड़, दांत और पूंछ तथा नख अर्थात् जिस जीव के पास इन मे कोई भी चीज़ है उससे घाव ही कर देता है। कुछ इनसे किसी का हित नहीं करता।

तुलसी जगजीवन अहित कतहुँ कोइ हित जानि।
सोषक भानु, कृसानु, महि, पवन, एक घन दानि ३४६

गोस्वामी जी कहते हैं कि जगत् के जीवों का अनभल चेतने वाले बहुत हैं। किन्तु हित करने वाला कहीं कोई एकाध हो है। जीवों के हित के लिए जीवनजल का दान करने वाला अकेला मेघ ही है। मगर जीवों के अनहित की कामना करके जलके सुखानेवाले सूर्य, अग्नि, पृथ्वी और वायु यह सभी हैं।

सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक वक, मानस सकृत मराल ३४७

मानस सकृत मराल मिलै, कहुँ और न पेखिय,
वक, उलूक, अरु काक जहाँतहँ बहुतक देखिय।
सुनते साधु अनेक तिन्हुँ के करतव घोरे,
सत्यशील, धर्मिष्ठ पुरुष हैं जग मे थोरे॥

जलचर, थलचर, गगनचर, देव, दनुज, नर, नाग।
उत्तम मध्यम अधम खल, दस गुन बढ़त विभाग ३४८

इस जगत् के बीच जलचरादिकों मे प्रत्येक उत्तम से मध्यमादिकों की उत्तरोत्तर दसगुनी संख्या अधिक ही होती गई है। जैसे एक उत्तम है तो दस मध्यम, फिर एकसौ अधम और एक हजार खल हैं।

दसगुन बढ़त विभाग मध्य श्रेणी का देखा,
उन हूं से दसगुनी अधम की करिए लेखा ।
अधमहुँ से दसगुने खज्जन को जगमे देखिय,
उत्तम पुरुष उदार कहो फिर कैसे लेखिय ॥

बलि मिस देखे देवता कर मिस मानवदेव ।
मुए मार सुविचार-हत स्वारथ साधन एव ॥ ३४६

स्वारथ साधन एव कि मरते ही को मारो,
धर्माधर्म सु पुराय पाप कछु नहीं बिचारो ।
देव दरस तब देत जब कि बलिदान चढ़वो,
राजा तबहीं मिलै जबहिं कछु लै कर जावो ॥

सुजन कहत भल पोच पथ, पापि न परखै भेद ।
करमनास सुरसरित मिस विधि निषेध बद वेद ३५०

सज्जन लोग भले बुरे मार्ग को बताते हैं। मगर पापी इस भेद को नहीं परखते। जैसे वेद विधि और निषेध दोनों को गंगा जी और करमनासा के बहाने से कहता है, कि गंगाजल का स्पर्श करो और कर्मनासा नदी को मत छुवो, पर इस बात पर पापी जन कभी ध्यान नहीं देते।

विधिनिषेध बद वेद प्रथम करि कर्म विपाकहिं,
सुरसरि जल बुध लेहिं कर्मनासा जल त्यागहिं।
पापी परख न भेद भले अरु बुरे कर्म को,
यदपि बतावत साधु कर्म अपकर्म मर्म को ॥

मनिभाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि ।
का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु विवेक विचारि ३५१

कहहु बिवेक विचारि काह त्यागिय का रक्खिय,
मनिभाजन मधु, या कि सुधा परई भरि चक्खिय ।
यहि मां का है सोचु सुधाभखि बनो अमरवर,
मनिभाजन मां भरा पियो मधु फिरि केहि का डर ॥

२ कहहु बिवेक विचारि किसे छोड़े का लेवें,
मनि भाजन मां मद्य, अमिय परई मा देवें ।
काम, स्वार्थ, अघपूर्ण, विद्वतामय, कवि वानी,
त्यागि सुधा सम पियो गँवारी राम कहानी ॥

उत्तम मध्यम नीच नीच गति, पाहन सिकता, पानि ।
प्रीति परीक्षा तिहुँनकी, वैर बितिक्रम जानि ३५२

उत्तम की प्रीति पत्थर की लीक की समान मध्यम की प्रीति बालू की लकीर के तुल्य और नीचकी प्रीति पानी की रेखाके सदृश होती है। बैर इसके विपरीति समझना चाहिए जैसे उत्तम का बैर पानी की रेखा के तुल्य मध्यम का बैर बालू की लकीर के समान और नीच का बैर पत्थर की लकीर के सदृश होता है।

पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ-पथ पांच ।
लहहिं सुजन परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन सांच ३५३

पुण्य, तथा भगवत् के चरणों या शास्त्र गुरू सन्तों में स्नेह और सन्मान या जीवों की रक्षा करना एवं भगवत् की अथवा

भगवत्भक्ति की प्राप्ति तथा मोक्ष पाने का मार्ग श्रीराम जी का नाम इन पाँचों पदार्थों को विमल बुद्धिवाले पाते हैं, खल नहीं।

नीच निरादरे ही सुखद, आदर सुखद विसाल।
कदली बदली विटप गति, पेखहु पनस रसाल ३५४

नीच आदमी निरादर करने से आराम देता है। और उत्तम मनुष्य सन्मान करने से आनन्द देता है। जैसे कटहल (पनस) और आम जैसे वृक्ष सींचे ही पर बाढ़ते हैं। किन्तु कदली तथा बदली (बेर) के सदृश तरु काटनेसे वृद्धि पाते और सुख देते हैं।

पेखहु पनस रसाल श्रेष्ठ द्रुम सींचे बाढ़त,
काटिय कदली बेर नीच तव डाली काढ़त।
करत नम्रता द्रवहिं पुरुष उत्तम वर ज्ञानी,
ताड़न शाशन किए नवहिं मूरख अभिमानी॥

तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनियाकी बासु ३५५

लहसुनियाकी बासु तिनहिं कछु नहीं बसाती,
नित जो खाते ताहि, दूसरे को नहिं भाती।
अपने अधमाचार भले सबको लगते हैं,
यदि वैसा ही करे अन्य नहिं सह सकते हैं॥

बुध सो बिवेकी विमल मति जिनके रोष न राग।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग ३५६

तुलसी ताको भाग सराहत साधु सुहृद जेहि,
विमल बुद्धि बुध वही, नहीं त्यागत विवेक तेहि।
पाप कर्मसे रहित बिमल मति ताकी श्रीकर,
राग द्वेष को छोड़ि नित्य जो भजता हरिहर॥

आपु आप कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सबकहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ३५७

सुजन सराहिय सोइ भला जो सबका करता,
दुर्जन उसको जान जोकि अपने हित मरता।
कोई अपना समझ किसी का पालन करते,
गिद्धराज सम कोइ एक परहित पर मरते॥

तुलसी भलो सु संगते पोच कुसंगति होइ।
नाउ, किन्नरी, तीर, असि लोह बिलोकहु लोइ ३५८

गोस्वामी जी कहते हैं कि सुसंग से प्रत्येक बुरा भी पदार्थ भला हो जाता है 'केहिन सुसंग बडप्पन पावा'। और कुसंग से भली भी चीज बुरी हो जाती है 'को न कुसंगति पाइ नसाई' जो लोहा नाव में लगकर अगाधनोर से पार उतरता है, और सितार का तार बनकर लोगों को आनन्द देता है। वही कुसंग पाकर तीर और तलवार बनकर जीव हिंसा करता है। यह बात हे लोइ (लोगो) देखो।

गुरु संगति गुरु होइ सो लघु-संगति लघु नाम।
चार पदारथ मे गनै नरक द्वार हू काम॥ ३५६

नरकद्वार हू काम सँग से शुभ कहलाता,
धर्म, अर्थ अरु मोक्ष सँग जब वह होजाता।
वही कुसंगति क्रोध लोभ अरु मोहहिं पाकर,
हो जाता अति घृणित काम, कामी कहलाकर॥

तुलसी गुरु लघुता लहत लघु-संगति परनाम।
देवी देव पुकारियत नीच नारि नर नाम॥ २६०

गोस्वामी जी कहते हैं कि लघु संगति से उच्च पुरुष भी लघुता को पा जाता है। जैसे नर नारियों का नाम देवी और देव का अर्थात् पार्वती शंकर या सीता राम अथवा राधा कृष्ण इत्यादि होने के कारण उनकी भी नीचता होती है।

नीच नारि नर नाम देव देवी का धरकर,
कहलाते अरु कहै बड़प्पन उनका हरकर।
उच्च नाम से नहीं नीचपन नरका हटता,
नीची संगति पाइ नाम गौरव पर घटता॥

तुलसी किये कुसंग-थिति होहिं दाहिने वाम।
कहि सुनि सकुचिय सूमखल-गत हरिशंकर नाम ३६१

गत हरिशंकर नाम सूम खल का कहि सुनकर,
होता है संकोच श्रेष्ठता उसकी गुनकर।
खल पापी को संग मान मर्यादा नासै,
बुध विज्ञानी पाइ उन्हें, शुभ गुणहिं प्रकासै॥

वसि कुसंग चहै सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथ हू को नाम भो 'गया' मगह के पास ३६२

गया मगह के पास नाम तीरथ का भाई,
रहा जहाँ अपकर्म छाइ चहुँ ओर बनाई।
वसि कुसंग मे आस सुजनता की जो करता,
बीज बबुर का बोय, आम चहकर वह मरता॥

राम कृपा तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान ३६३

तुलसीदास जी कहते हैं कि गंगा के समान पवित्र सज्जन सङ्ग श्रीराम जी की बड़ी अनुग्रह से मिलता है। जैसे गंगा जी में कैसा भी जल पड़के साक्षात् गंगा होजाता है। इसी तरह कैसा भी आदमी क्यों न हो सज्जन के साथ सज्जन ही होजाता है।

ग्रह, भेषज, जल, पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लषहिं सुलच्छन लोग ३६४

ग्रह सूर्य, शशि, राहु इत्यादि दवा, जल, वायु तथा कपड़ा यह सब अच्छा साथ पाकर भले होजाते हैं। और खराब संग पाकर बुरे बन जाते हैं। किन्तु इन बातों के जानने ही वाले लोग इन्हें भली भांति जानते हैं।

चन्द्रमा शुभ ग्रह है मगर राहु आदि पाप के साथ पड़कर बुरा फल देता है शनि आदिक पाप ग्रह हैं मगर सूर्य आदि का संग पाकर शुभ फल देते हैं। दवाई ठीक अनुपान के साथ व्याधि हटाती है वही बुरा अनुपान पाकर रोगीकी बुरी दशा बना देती है। जल निन्द्य पात्र में बुरा भले वर्तन में भला बनता है। अथवा जो

जल गंगाजीके साथ रहकर पापको बहाता है। वही जल कर्मनासा के संग पड़कर पापोंकी वृद्धि करता है। जो वायु सुगन्धित पदार्थों को पाकर मनोविनोद कराता है वही दुर्गन्ध को पाकर व्याकुल कर देता तथा रोग पैदा करता है।

जन्म जोग ते जानियत, जग विचित्र गति देखि।
तुलसी आखर, अंक, रस, रंग विभेद विसेखि ३६५

जन्म के योग से (जन्म जोगते) देख करके (देखि) जाना जाता है (जानियत)। क्या, इस उत्पन्न होने वाले बच्चे का चरित। अर्थात् जगत में इसे क्या सुख मिलेगा, क्या दुख और इसका कैसा भाव होगा (जग विचित्र गति) अगर कोई शंका करे कि अक्षर और अङ्क तो वही हैं फिर फल में कैसे अन्तर पड़ जाता है। गोस्वामी जी कहते हैं कि 'विशेषि' अर्थात् एक ग्रह का दूसरे ग्रह के संयोग होने से 'रस' अर्थात् दुख सुख तथा 'रँग' नाम उत्पन्न की जीवनी में भेद होजाता है।

भाव यह कि ग्रहादिक वही हैं किन्तु जैसा २ उनका संयोग होता है वैसा २ उनके फलों में परिवर्तन होता रहता है। अच्छे ग्रह बुरे बन जाते हैं और बुरे ग्रह भले होजाते हैं। संग के दोष गुण अकथ और अपार हैं।

आखर जोरि विचार करु, सुमति अंक लिखि लेखु।
जोग-कुजोग-सुजोगमय, जगगति समुझि विसेखु३६६

अक्षरों को जोड़ करके विचार करो, भाव यह कि जब नष्ट कुण्डली बनाई जाती है, तब प्राणी के नाम के केवल वर्ण गिने जाते हैं। और उन्हीं से पूरी शुभाशुभ कहने वाली कुण्डली बनाई जाती है। फिर बुद्धि के साथ यानी सावधानी से अंक अर्थात् एक दो तीन इत्यादि जो कुण्डलीके जिस कोष्ठमें लिखना है सो लिखो।

और फिर विचारो। कुजोग और सुजोगमय जो जोग है अर्थात् कुजोग से अन्ध, बधिर, वा मरणादि तथा सुजोग से सुन्दर सुख धन, धान्य, वृद्धि, आदि जोग अर्थात् प्राप्तिको तथा जगत् की गति को अच्छी भांति समझो।

(२) गोस्वामी जी कहते हैं कि अच्छा ज्योतिषी अपनी बुद्धि से जोग लग्नादि के अंकों को गिनता है और उनको जोड़ करके उन पर विचार करता है कि इसमें जोग कितना है अर्थात् ऐसे ग्रह कितने हैं कि जिनका मेल दूसरे ग्रहों के साथ साधारण रूप से अच्छा है। और इसी तरह से बुरा और भला करने वाले कितने जोग हैं। ऐसा विचार कर अन्त में भविष्य निश्चित करता है। भाव यह कि प्रत्येक मनुष्यों के उन सम्बन्धों को जो कि जगत् के साथ हैं उनका वर्णन गोस्वामी जी इस तरह करते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के इस जगत् में तीन तरह के सम्बन्ध हैं। जिनसे जगत् में रहते हुए कोई बच नहीं सकता।

पहिला जोग, अर्थात् किसी से साधारण सम्बन्ध, जिसके द्वारा कोई विशेष हानि लाभ की सम्भावना नहीं। दूसरा कुयोग अर्थात् बुरा संग जिसका वर्णन गोस्वामीजीने बहुत तरह से किया है। और तीसरा सुसंग जिसकी महिमा भी बहुत बताई है। वे कहते हैं यदि तुम अपना भविष्य निश्चय करना चाहते हो तो अपने जितने सम्बन्ध हैं उनको एकत्रित करके जोड़ो कि साधारण कितने और अच्छे बुरे कितने हैं, उन्हींसे अपना परिणाम देखलो।

करु विचार, चलु सुपथ, भल आदि मध्य परिणाम।
उलटे जपे 'जरा मरा' सीधे राजा राम ३६७

राजा राम को उलटा जपने से जरा मरा होजाता है कहाँ तो महाराजा धिराज का सुन्दर नाम जोकि सकल सौभाग्यदायक है। और कहाँ 'जरा मरा' बुढ़ाई और मौत। जिस तरह इन दोनों में

बहुत बड़ा अन्तर है, उसी भाँति गोस्वामी जी कहते हैं कि सन्मार्ग और कुमार्ग में चलने का फल भी है। सन्मार्ग में चलने से आदि मध्य और अन्त तीनों ही अच्छे हैं और कुमार्ग में इससे विपरीत।

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुश्त सुपूत के, ज्यों पावक में धूम ३६८

ज्यों पावक मे धूम भले के बुरा होत सुत,
दानी जन के जात जनत है महासूम च्युत।
होत सुसुत के कबौं कुसुत अतिशय दुखदाई,
जनकसदृश प्रग्यशः नहीं सुत होता भाई॥

जड़ चेतन गुन-दोष-मय विस्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुन गहहिं, पय परिहरि वारि विकार ३६६

परिहरि वारि विकार हंस ज्यों गहत दूध हीं,
तिमि सज्जन जगदोष त्यागिके लहत सुगुणहीं।
त्रिगुणमयी है सृष्टि द्वंद्व सुख दुख की खानी,
दुःख जनक तजि वस्तु गहहिं सुखकर विज्ञानी॥

सोरठा।

पार कीट तें होइ, ताते पाटंबर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ परम अपावन प्रान सम ३७०

परम अपावन प्रान समहिं कीड़ा पालत नर,
जाते निकसत पाट होत तेहिते पाटम्बर।

सज्जनगन यहिभांति दोष ते लेत गुनन कहँ,
ते मूरुख जो गुणहिं त्यागि भरमहिं दोषन महँ॥

दोहा।

जोजो जेहिजेहि रस मगन तहँ सो मुदित मन मानि।
रस गुन दोष बिचारिवो रसिक रीति पहिचानि ३७१

रसिक रीति पहिचानि दोष गुन रस के लखिवो,
कोकिल बोलन मधुर काकको अनभल भखिवो।
सन्तहिं सज्जन संग असंतहिं कुसँग सुहावन,
निजनिज रसते लहहिं सु सुख दुख पवन अपावन॥

सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ३७२

दोनों पक्षों में प्रकाश और अन्धकार बरोबर होता है ब्रह्मा नें केवल नाम मे भेद किया अर्थात् एक का नाम कृष्ण दूसरे का शुक्ल है। शुक्लपक्ष चन्द्रमा का पोषक अर्थात् इसमे इसकी कलायें बढ़ती हैं और कृष्ण चन्मद्रा का शोषक अर्थात् इसमें शशि की कलायें संकुचित होती हैं। यही समझ के एक जस और दूसरे को अपजस दिया।

जग जस अपजस दीन्ह शुक्ल अरु कृष्ण नाम से,
तेज तमो युत दोय भोर से कोउ साम से।

एक बढ़ावत कला चन्द्र की एक घटावत,
नाम भला अरु बुरा इसी कारण दोउ पावत॥

लोक वेद हूं लौं दगो१ नाम भले का पोच।
धर्मराज जम, गाज पवि कहत सकोच न सोच ३७३

भले का नाम बुरा लोक में तो प्रसिद्ध ही है, वेद में भी अङ्कित है। जैसे धर्मराज का नाम जमराज और इन्द्र के वज्र का नाम गाज, जिसके गिरने से जीव मरजाता है।

विरुचि २ परखिये सुजन जन, राखि परखिये मन्द।
बड़वानल सोषत उदधि, हरष बढ़ावत चन्द॥ ३७४

हरष बढ़ाव चन्द उदधि को, दूरहिं भ्राजत,
वाढ़व जारत तेहिं जदपि जल उदर विराजत।
सुजन दूर हूँ रहत शील सद्गुण विस्तारैं,
दुर्जन अनल समान निकट वसि छाती जारैं॥

प्रभु सनमुख भए नीच नर निपट होत विकराल।
रवि-रुख लखिदरपनफटकि उगिलतज्वालाजाल ३७५

प्रभु के अनुकूल होने पर नीच मनुष्य या क्षुद्र जीव मारे अभिमान के बड़े विकराल बन जाते हैं। जैसे स्फटिक मणि का शीशा सूर्य के सामने करने से ज्वालायें उगलने लगता है।

---

१ अङ्कित है, प्रसिद्ध है, २ अलगसे

प्रभु समीप गत सुजन जन होत सुखद सुविचारि।
लवन-जलधि-जीवन जलद, बरषत सुधा सुवारि ३७६

प्रभु के समीप में रहने वाले सुजन आदमी सब को सुख देने वाले और स्वयं सुविचारी होते हैं। जैसे मेघ लवण-समुद्र के जल को सुधा तुल्य सुवारि अर्थात् मीठा बना कर जीवों के कल्यानार्थ बरसता है।

नीच निरावहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान सब विष, पियूष के रूख॥ ३७७

नीच आदमी निरस रूख घास आदि को निरावते तथा ऊख को सींचते हैं। किन्तु पयोद (मेघ) के समान नर विष और पियूष (अमृत) के वृक्ष को बराबर समझ कर पोषते हैं।

विष पियूष के रूख मेघ यक सम करि सींचत,
स्वारथि सींचहिं ऊख, निरस तरु की जड़ खींचत।
जगत पिता बड़ दानि, सकल हित, करुणाकारी,
नीच उच्च नहिं लखत, एक सम पर हितकारी॥

बरषि विस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को, जो जल जरै जवास ३७८

जो जल जरै जवास दोष या मे का घन का,
हितकारी सों जरत यही है नियम कुजन का।
वह है करुणासिन्धु विस्ववासिन सुखदाता,
विश्व द्रोह करि जीव कर्म अपने दुख पाता॥

अमरदानि, जाचक मरहिं, मरिमरि फिरिफिरि लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी, दातहिं दूषन देहिं ॥ ३७९

दानी अमर है, लोक रीत से भी दानी अमर कहा जाता है। लेकिन मांगने वाले मरा करते और बारम्बार माँगा करते हैं। तथा दानी को दोष दिया करते कि हमारा इस से कल्याण कुछ भी नहीं हुवा।

(२) महादानी श्रीसदाशिवसे लोग साँसारिक सुख मांगते और उसे प्राप्त कर, कालान्तर में शरीर त्याग कर, जन्मान्तर मे दूसरा देह धारण करते हैं, और फिर और फिर फिरि उन्हीं तुच्छ पदार्थों के लिए लालायित रहते हैं। किन्तु वास्तविक अक्षयसुख न पाकर दानी पर मिथ्या दोषारोपण करके स्वयं पातक के भागी बनते हैं।

लखि गयन्द लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़।
गज-गुन, मोल अहार, बल, महिमा जान कि राड़ ३८०

महिमा जान कि राड़ [१] मोल बल, गुन गयन्द को,
कन्द मूल वह खात, सूझि नहिं परत मन्द को।
हाथी आवत देखि हाड़ लै भागो कूकुर,
मूढ़, भीत, सर्वत्र निज दशा लखत, शुद्रउर ॥

कै निदरहु कै आदरहु, सिंहहिं स्वान सियार।
हरष विषाद न केशरिहिं, कुंजर-गंज निहारि ३८१

---

१ दुष्ट, जड़

कुंजर-गंज २ निहारि दुःख सुख सिंहहिं नाहीं,
स्वान, स्यार आदरै चहै निदरै वहि काहीं।
निजता का जेहि गर्व न समुझत वह निज सम जन,
नीचन की का चली उन्हें लावत न कबहुँ मन॥

ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच।
निंदहिं बलि हरिचन्द को, "का कियो करन दधीच" ३८२

का कियो करन दधीच, बली, हरिचन्द कियो का,
कहते अस नर नीच, कहो फिरि तुमहि दियो का।
खल स्वभाव, जन नीच जरहिं सुनि सुजस और को,
भल न आचरेनि आप, दियो भूखेहु न कौर को॥

ईश शीश विलसत विमल, तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग, ३ के कहे लघुता लहै न गंग ३८३

लघुता लहै न गंग श्वान जैनी के निदरे,
मलिन, मलिन मन, मलिनवस्तु प्रिय खाता टुकरे।
जैनी जानत कहां मान महिमा सुरसरि को,
ब्रम्ह कमण्डलु, शम्भुशीश रह, पद जल हरि को॥

तुलसी देवल देव के लागे लाख करोरि।
काक अभागे हगि भर्यो, महिमा भई कि थोरि ३८४

---

२ हाथियों का समूह, ३ जैनी।

महिमा भई कि थोरि मूर्ति पर हग्यो काक जो,
म्लेच्छों के का छुये गई प्रभु की प्रभुता सो।
फूंको अगणित द्रव्य देश भारत ने जिन पर,
क्या उन की मर्याद घटेगी सहज शीघ्रतर ॥

निज गुन घटत न नाग नग पर परखि परिहरत कोल१
तुलसी प्रभु भूषन किये गुँजा २ बढ़ै न मोल॥ ३८५

जङ्गली सुवर या जङ्गली मनुष्य सर्प की मणि को पहिचान, किन्तु उसके गुण को न जानकर फेंक देता है, इससे क्या मणि का स्वाभाविक गुन घट जाता और मूल्य कमती पड़ जाता है। कहीं घोंघचिल का भूषण प्रभु को पहिनाने से गुंजा की क़दर अधिक हो जाती है, या गुंजा पहिनने से जगदीश का सत्कार कम पड़ जाता है। कभी नहीं।

गुँजा बढ़ै न मोल यदपि तेहिं माधव धारे,
घट न नाग मणि मोल कोल जो ताहि पवारे।
तै सेहि सुधर न नीच बड़ो पद आदर पाये,
साधु न घर सम्मान नीच अपमान कराए ॥

राकापति षोड़श उवहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइये विनु रवि रातिनजाइ ३८६

---

१ सुवर या जङ्गली मनुष्य, २ घोंघचिल

विनु रवि राति न जाइ चहे ससि षोड़श विकसै,
सकल गिरिन दव३ लगे कोटिखग४ चाहे निकसै।
राम भजन रवि विना हृदय तम नहीं घटेगा,
कोटिन करो उपाय क्लेश दल नहीं हटेगा॥

भलो कहै बिनु जाने हू, विनु जाने अपवाद।
ते नर दादुर५ जानिजिय, करिय न हरष, विषाद ३८७

करिय न हरष विषाद मूर्ख भल पोच कहै जो,
दादुर सा वह रटत मर्म नेको न गहै सो।
जग जन जल्पहिं वि पुल सत्य अरु झूंठ न देखहिं,
सुनि औरन को कहब गहहिं तेहि आपु न लेखहिं॥

परसुख सम्पति देखि सुनि जरहिं जे जड़ विनु आगि।
तुलसी तिन के भागते चलै भलाई भागि॥ ३८८॥

चलै भलाई भागि भाल से तुलसी उन के,
विना अग्नि जे जरैं अन्य सुख सम्पति सुन के।
जरी मन्थरा देखि राम अभिषेक तयारी,
टूटे कूबर, दन्त, घसीटी गई व मारी॥

तुलसी जे कीरति चहैं पर की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहैं धोइ ३८६

३ जङ्गलीआग, ४ नक्षत्र, ५ मेंढक

मिटिहि न मरिहैं धोइ लगी कालुष जो मुख से,
पर कीरति हिं बिगारि स्वकीरति जो चहै सुख से।
सुनियत है वर नाम सुमित्रा कौशिल्या को,
कहो केकयी नाम सुना है जग मे काको ॥

तनु, गुन, धन, महिमा धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान
तुलसी जियत बिडम्बना, परिनामहु गति जान ३६०

गोस्वामीजी कहते हैं कि जो आदमी (तनु) सुन्दर, बलिष्ठ 'गुन' विद्यादि धन और 'महिमा' प्रतिष्ठा तथा धर्म इनके बिना किसी तरह का गर्व करते हैं उनकी जीते हुये तो बदनामी है ही मरने पर भी बुरी ही दशा होगी।

सासु, ससुर, गुरु, मातु, पितु, प्रभु भयो चह सब कोइ।
होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ ३६१

सुजन सराहिय सोय अपन को नीचो जानै,
देइ मान मर्याद औरको सुयश सुयश बखानै।
सास ससुर पितु मातु गुरू प्रभु सब चहँ होना,
बहू पुत्र ह्वै शिष्य बड़ो पन चहैं न खोना ॥

२ सुजन सराहिय सोय लहै जो दैन्य भाव को,
पावे प्रति रच्छा सनेह सुख और चाव को।
तात बात हूँ लखो बडे रूखनहिं नसावत,
दूब दीन ह्वै रहत शान्ति शीतलता पावत ॥

सठ सहि सांसति पति लहत, सुजन कलेश न काय
गढ़ि गढ़ि पाहन पूजिये, गंडकि-सिला सुभाय॥ २६२

गंडकि सिला सुभाय मान मर्यादा पावै,
शालिग्राम सुरूप पाप भवताप नसावै ।
नीच पखानहुँ देखु गड़ो काटो गयो सोई,
ताप अनेकों सहत मान पावत कहुँ कोई॥

बढ़ो विबुध दरवार ते भूमि-भूमि दरवार ।
जापक पूजक पेषियत, सहत निरादर भार॥ २६३

बड़े भारी देवों के दरवार से लेकर भूमि में राजाओं के दरवार तक में जापक और पूजक निरादर के भार को सहन करते देखे जाते हैं। उन को बहुत कष्टों की एवज में फल बहुत न्यून मिलता है।

सहत निरादर भार देवता पूजक जापक,
कष्ट अनेकों सहत अल्प फल पावत तापक।
भग्न मनोरथ रोग शोक कितनों ने पाया,
सफल कार्य वह हुआ शरण जो प्रभु की आया॥

विनु प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न दिये कलेस।
वावन वलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस२६४

दियो उचित उपदेश वलिहिं वामन ने छल करि,
रचि प्रपंच, तेहि जांचि, द्वार के पालक भे हरि।

धरे कपट छल हृदय भक्ति जो हरिकी करता,
धाम न पावत घुसन द्वार पर रटि २ मरत ॥

भलो भले सों छल किए जनम कनौड़ो होइ ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि बावनगति सोई ३६५

भला होकर कोई यदि भले से छल करता है तो जन्मभर उसके सामने सिर उठाने के योग्य नहीं रहता । श्रीपति भगवान ने वृन्दा के साथ छल किया, तो वे तुलसी होकर उनके सिरपर आ डटीं । वामन ने बलि से छल किया अतः पाताल में बलि के द्वार पर सदा के लिए बद्ध हुये ।

विबुध काज बावन बलिहि छलो, भलो जिय जानि ।
प्रभुता तजि बस भे, तदपि मन की गइ न गलानि ३६६

मनकी गइ न गलानि कियो जो छल कुकर्म हरि,
यदपि देवहति, भला समुझि, त्यागी प्रभुता-भरि ।
सज्जन की है यही रीति नित ही चलि आई,
करि कुकर्म पछितात रहत पावत दुख भाई ॥

सरल वक्रगति पंच ग्रह चपरि न चितवत काहु ।
तुलसी सूधे सूर ससि, समय विडम्बित राहु ॥३६७

मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, और शनि यह पाँचो ग्रह सरल गति सूर्य और चन्द्रमा जो सीधे चलते हैं समय पाकर उनकी विडम्बना राहु करता है भाव यह कि जो कोई टेढ़े हैं उनकी ओर कोई तकता भी नहीं यथा "टेढ़ जानि शङ्का सब काहू" और जो सीधे हैं उन्हें सभी तंग करते हैं यथा "बहुत सिधाई मां बड़ दोषू" ।

खल उपकार विकार फल तुलसी जान जहान ।
मेंढुक, मर्कट, वनिक, वक कथा सत्य उपरवान ॥३६८

इस दोहे के द्वारा गोस्वामी जी, कहते हैं कि दुष्ट से लाभ भी होना बुरा ही है। क्योंकि उसका फल विकार यानी परिणाम में बुरा है। यह बात सारा जहान जानता है। सत्योपाख्यान नामक पुस्तक से गोस्वामी जी निम्न लिखित उदाहरण चतुष्टय उपस्थित करते हैं।

मेंढ़क, एक मेंढ़क अपने ज्ञाति भाइयों से रुष्ट होकर एक सर्प को अपने स्थान में इस लिए बुला लाया कि इन सब को खा जावो। सर्प ने कुछ दिन में एकएक करके सबको खाकर बुलानें वाले मेंढ़क को भी खा लिया।

मर्कट, एक राजा ने अपनी रक्षा के लिए एक बन्दर को पाला। कुछ दिन में वह बन्दर राजा की रानी से फँस गया।

वनिक, एक वनिया ने राजा के लड़के की सहायता के लिये अपनी स्त्री को भेजा। राजपुत्र उस सेठानी पर विषयासक्त हो गया।

वक, एक वगुले ने एक ब्राह्मण को एक खजाना वताया। ब्राह्मण ने वगुले को मार डाला।

तुलसी खल वानी मधुर सुनि समुझिय हिय हेरि ।
राम राज वाधक भई मूढ़ मन्थरा चेरि ॥ ३६६ ॥

मूढ़ मन्थरा चेरि राम अभिषेक बिगार्यो,
करि के कपट कुचालि राम कैकेय हँकार्यो।
मीठे वचन सुनाय सुमति ताकी हर लीन्हीं,
रानी समुझ्यो नहीं प्रतिष्ठा दुष्टहि दीन्हीं ॥

जोंक सूधि मन कुटिल गति खल विपरीत विचारु।
अनहित सोनित सोष सो, सो हित सोषन हारु ४००

जोंक की गति टेढ़ी है, परन्तु मन उसका सूधा है क्यों कि वह देह के विकारी रक्त को खींच लेती है। किन्तु गोस्वामी जी कहते हैं कि खल,की दशा इससे विपरीत है। उसकी वाहरी चाल सीधी मगर मन कुटिल है। इसलिए बह अनहित रक्त न सोखकर हितकारी को सोख लेता है।

नीच गुड़ी ज्यों जानिवो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिए गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ४०१

जैसे पतङ्ग को अगर खींचो तो वह ऊपर चढ़ जाती है। और छोड़ दो तो पृथ्वी पर गिर जाती है। इसी तरह खल से ज्यादा प्रेम करो तो सर पे आता है और यदि उसका तिरस्कार करो तो भूमि में मिला रहता यानी दवा रहता है।

खैंचत चढ़त अकास ढील देते गिर जाती,
गुड्डी जड़ की रीति सोइ गति खल उतपाती।
करो द्वेष वा सङ्ग खींच तानी हैं दोनों,
ढीलि देइ करु त्याग भला याही मे होनों॥

भरदर वरसत कोस सत वचैं जे वूंद वराइ।
तुलसी ते खल-वचन-सर हये, गएँ न पराइ ॥४०२॥

यदि सौ कोस तक "भरदर" वरावर पानी वरसता हो तो भी उस समय जलवर्षित देश में चलने वाले पर सम्भव है कि बूंद न पड़े, परन्तु गोस्वामी जी कहते हैं कि खल के चलाए हुए वचन रूप सर से केवल भागने ही से वचाव नहीं हो सकता।

हए गए न पराय तीक्ष्ण सर खल के मारे,
वचे जे वारिद बूंद कोस सत वरसत भारे।
खल वाणी से भाग कठिन है वचना भाई,
मन से देहु गिराइ, रीति यह कठिन वताई॥

\+ + + +

वड़ी मारु कवीर की चिंत से दिया उतारि !

पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जान।
देखि प्रीति की रीति यह अव देखवी रिसान ४०३

'तिली' तेली 'सनेही' तेलवाला अथवा प्रेमी 'देखिवी' देखेंगे या देखना चाहिए।

तेली तिलको काल्हू में डालकर पेरता है। क्योंकि वह उसे सनेही जानता है। यहां सनेह पर व्यङ्ग्य है उसके मामूली माने लेने से भाव यह निकलता है कि तिल को तेली अपना प्यारा समझता है। गोस्वामी जी कहते हैं कि तेली की प्रीति की रीति तो यह देख ली। अब देखना चाहिए कि नाराज होकर वह तिली का क्या करता है।

जो अस कृपा जरहिं इमि गाता।
क्रोध भए तनु राखु विधाता॥

सहवासी काचो गिलहि, पुरजन पाक प्रवीन।
कालछेप केहिमिलि करहिं तुलसीखग, मृग, मीन४०४

गोस्वामी जी कहते हैं कि साथ के रहने वाले लोग कच्चा ही खाये जाते हैं जैसे वटेर को वाज, हरिण को शावर, और छोटी

मछली को बड़ी मछली। यदि किसी तरह इन से बचाव हुवा तो नगर के मांस प्रिय लोग पकाकर खाजाते हैं। ऐसी दुर्दशा में खग, मृग, और मीन कैसे अपना निर्वाह करें।

जासु भारोसे सोइये राखि गोद मे सीस।
तुलसी तासु कुचाल ते रखवारो जगदीस ॥४०५

रखवारो जगदीस जदपि वह करै कुचाली,
सोइय करि विश्वाश शीश जाके उर घाली।
शत्रुहिं जानि सचेत होय निज रच्छा करिये,
मित्र जो करै कुचाल राम राखे निस्तरिये ॥

मार खोज लै सौंह करि, करि मत, लाज न त्रास।
मुए नीच ते मींचु विनु जे इनके विश्वास ॥४०६॥

जो आदमी किसी को खोजकर और उससे न मारने की क़सम खाकर मारते हैं उन आदमियों पर जो लोग विश्वास करते हैं वे नीच आदमी यही समझो कि बिना मींच के मरे।

पर द्रोही परदाररत परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥४०७॥

देह धरे मनुजाद पापमय ते नर पामर,
परदारा परधनहिं कामवश चितवत जे नर।
करैं और सों द्रोह कुटिलमति नीच कुचाली,
गावैं पर-अपवाद, धर्म, बुध सम्मति घाली ॥

वचन वेश क्यों जानिये मन मलीन नर नारि।
शूर्पणखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख विचारि ४०८

हँसनि, मिलनि, बोलनि मधुर, कटु करतव मन मांह।
छुवत जो सकुचै सुमति सो, तुलसी तिनकी छांह ४०९

गोस्वामी जी इन दो दोहों से दूसरे की मनोवृत्ति जानने की कठिनता और सुगमता का वर्णन करते हैं। पहिले कठिनता को देखिये।

देखो, शूर्पणखा सुन्दरी स्त्री का वेश धरके श्रीराम जी के पास आई थी, परन्तु कामकातर थी। मारीच मनोहर सोने का हरिण बनकर आया, मगर वह महाराज को आश्रम से दूर लेजाने के लिए। पूतना सुन्दरी तरुणी रमणी का रूप लेकर प्यारे श्यामसुन्दर को बिष देने ही बृज आई थी। रावण त्रिदण्ड लिए उपनिषद् पढ़ते रुद्राक्ष पहिने भस्मभूषित सन्यासी के वेष मे श्री जानकी जी के हरने के निमित्त आया था। इन सब को विचार के गोस्वामी जी कहते हैं कि बोलचाल और वेश से किसी के कुटिल हृदय के विचारों का परखना अतिकठिन काम है।

जिनकी हँसनि, मिलनि और बोलनि मीठी है। किन्तु मन मे बड़े बुरे विचार हैं उनकी छाँह को छूते ही जो सकुचै गोस्वामी जी कहते हैं कि वही बुद्धिमान हैं।

इस बात का अनुभव तो प्रत्येक मनष्य को थोड़ा बहुत है ही कि जब कोई पुरुष किसी के पास आता है, तब बिना किसी तरह का संसर्ग होने के पहिले ही उसके मन में कुछ आल्हाद या सङ्कोच प्रकट होजाता है। केवल स्थूल शरीर ही शरीरी का शरीर नहीं है वरन् इस स्थूल देह पर और भी षट् आवरण हैं। स्वामी श्री शङ्कराचार्य जी ने अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और आनन्दमय,

कोषों के नाम से तथा कागभुशुण्ड जी ने "सप्तावरण भेदकर जहँ लग रहि गति मोर" तथा अन्य संस्कृत के ग्रन्थार्थों ने इस विषय को आन्तरिक भावों में ही वर्णित किया है। मगर थियासफी वालों ने इनका बाहरी रूप भी दिखलाया है। वे कहते हैं कि इस स्थूल देह के ऊपर और छः शरीर हैं। उनके नाम हैं काम, मन, बुद्धि, आत्मा, निर्वान और परनिर्वान। और प्रत्येक शरीर उत्तरोत्तर बड़ा है। इस तरह से स्थूल शरीर का स्पर्श न होने पर भी प्रत्येक मनुष्य के सूक्ष्म तेजोमय शरीरों का संसर्ग आपस में होजाता है। और इसी कारण मनों में सुभाव अथवा कुभाव उत्पन्न होजाता है।

कपटसार सूची सहस, बांधि वचन परवास।
किय दुराउ चहैं चातुरी, सो सठ तुलसीदास ४१०

जिनके भीतर कपट ही भरा है। जो हजारों सुइयों की तरह छेदने वाले हैं। और जिनके भीतर से शत्रुता टपक रही है। ऐसे बचनों को कहकर जो छिपाना चाहते हैं गोस्वामी जी कहते हैं वही शठ हैं।

बचन-विचारे अचार तन, मन करतब छल छूति।
तुलसी क्यों सुख पाइये, अन्तर्जामिहि धूति ४११

गोस्वामी जी इस दोहे के द्वारा प्रकट करते हैं कि सच्चा आनन्द बिना मन की पवित्रता के नहीं मिल सकता। कोई मनुष्य अपने बचनों को बहुत सोच विचार के कहे, और देही के बाहरी आचरणों की सब भाँति शुद्ध और पवित्र रक्खे और दिखलावे, किन्तु यदि उसके मन में छल और (छूति) अपवित्रता भरी हो तो वह जगत् को भले ही धोखा देकर बाहरी सुख प्राप्त करे, किन्तु अन्तर्जामी भगवान् परम प्रभु को धोखा देकर सुख कब पा सकता है।

शारदूल को स्वांगरचि, कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिये, कीरति विजय विभूति ४१२

कीरति विजय विभूति चाहते हों करि प्यारी,
द्वैष, नीचता, काम बसे पर मन में भारी।
बोये बीज बबूल आम की आशा धरता,
धरे सिंह का वेश काम कूकर के करता॥

बड़े पाप बाढ़े किये छोटे करत लजात।
तुलसी तापर सुखचहत, विधिसों बहुत रिसात ४१३

विधिसों बहुत रिसात दुःख जब मूरख पावत,
न्यून पाप सों बचत, बड़े करि तिनहिं दुरावत।
बिश्व, सन्त, हरि द्रोह करत तेहि पाप न मानत,
चोरी, गारी त्यागि तिनहिं सत्कर्मी जानत॥

देश काल करता करम वचन विचारि विहीन।
ते सुरतरु–तर दारिदी सुरसरि–तीर मलीन॥४१४

जिस के कर्म देश काल और कर्ता विहीन हैं यानी जो बैदिक कर्म अच्छे स्थान जैसे तीर्थ आदि और शुभ मुहूर्त लग्न पर्व के अनुसार अवसर पर नहीं होते और जिनका कर्ता उन लक्षणों से लक्षित नहीं जो कर्म करने वाले में होना चाहिए, और जो वचन तथा बिचार से भी विहीन है अर्थात् वेदमन्त्र और कर्म करने की क्रिया भी नहीं जानता ऐसा पुरुष यदि कल्पवृक्ष के नीचे भी बै

भी तब भी दरिद्री ही रहेगा, और गंगा जी के तट पर भी मलीन ही रहेगा यानी वहां भी पाप रहित नहीं हो सकता।

साहस ही शिख कोपवस किये कठिन परिपाक।
शठ सङ्कट भाजन भये हठि कुजाति कपि काक ४१५

जो कर्म बिना सोचे समझे या कोप के वस हठ करके किये जाते हैं, उनका परिणाम दुःख ही होता है। इसबात को दो उदाहरणों से सिद्ध करते हैं। पहिला–जयन्त, जिसने मूर्खता के कारण भगवत् के वल की परीक्षा करनी चाही, और अन्तमें सींक के सर के भय से भागा। तीन लोक में कहीं शरण न मिली। दूसरा–बालि का है। जिसने कोप के वस तारा की सुन्दरशिक्षा न लेकर, और भगवान् की शरणागति को तुच्छ समझ कर सुग्रीव के मार डालने की चेष्टा की, अन्त में स्वयं कालकवलित हुवा। यह न समझा भगवत् कहचुके हैं कि—

"सुनु सुग्रीव मैं मारि हौं वालिहिं एकहि वान,
ब्रह्म रुद्र शरणागतिहिं गये न उवरहिं प्रान"।

राज करत विनु काज ही करैं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकन्ध ज्यों जै हैं सहित समाज ॥४१६॥

जै हैं सहित समाज सैन्य सुत, जस लंकेशा,
राज करत वेकाज काहु जो देत कलेशा।
गो द्विज जन संतापि, दंड जो संतहि दै हैं,
करिहैं धर्माघात अवशि ते यमपुर जै हैं॥

राज करत विनु काज ही ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जै हैं बारह वाट ॥४१७॥

जै हैं बारहबाट गए कुरुवंशी जैसे,
राज करत बेकार पाण्डवनि चितैं अनैसे।
शकुनी सिखलहि, तिन कुठाट सब छलकर साज्यौं,
द्रुपदसुता-अपमान काल है सिरपर गाज्यौ ॥

सभा सुयोधन की शकुनि सुमति सराहन योग।
द्रोण विदुर भीषम हरिहिं कहैं प्रपञ्ची लोग ४१८

दुष्ट की सभा में दुष्ट और दुष्टता ही का सत्कार होता है। दुर्योधन की सभा में शकुनी जैसे कपट पांसा बनाने वाले का आदर और प्रशंशा हुई। परन्तु महात्मा भीष्म, द्रोण, बिदुर तथा साक्षात् हरि को प्रपञ्ची वताकर उसकी सभा के लोग अपमानित करते रहे। किन्तु इन सब का सत्कार पाण्डवों की सभामें सदा हुवा।

पाण्डु सुवन की सादसि ते नीको रिपु हित जानि।
हरिहर सम सब मानियत मोह ज्ञान की वानि ४१९

यद्यपि द्रोणादिकों को सभी जानते थे कि शत्रुका हित करने वाले हैं, मगर युधिष्ठिर की सभा में सब कोई इन्हें हरिहर के तुल्य मानते थे। यह मोह और ज्ञान की आदत है। दुर्योधन में मोह था। युधिष्ठिर की सभा में ज्ञान था।

हितपर वढ़ै विरोध जब अनहित पर अनुराग।
राम विमुख विधि वामगति सगुन अघाय अभाग४२०

जब अपने हितकारी के प्रति विरोध वढ़ता है। अपकारी की ओर प्रीति होती है। तब जानना चाहिए कि वह रामके विमुख है। और उनके विमुख होने से विधाता प्रतिकूल हो जाता है।

और उनके प्रतिकूल होने से समस्त सगुन भलीभांति असगुन होजाता है। इसके बाद अच्छी भांति अभाग्य ही समझो। अथवा असगुन आने पर (अघ आय) पाप आजाते हैं। इनके आतेही अभाग।

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥४२१

अवसि होइ हितहानि अन्त पछिताव करै सो,
सहज कृपालु सु स्वामि सीख चित में न धरै जो।
प्रियहिं राम सिख दीन्ह कष्ट बनके दिखलाये,
भोग्यो कंत वियोग निदरि तेहिं वहु दुख पाये॥

भरु आये नट भाट के चपरि चढ़े संग्राम।
के वे भाजे आइहैं कै बांधे परिनाम॥४२२

नट और भाट के "भरु आए" बढ़ावा देने से जो लोग "चपरि" सहसा लड़ाई पर चढ़ जाते हैं, वे यातो हार कर भाग आते हैं, या क़ैद होकर दुश्मन के बश में होजाते हैं।

लोक रीति फूटी सहै, आंजी सहै न कोय।
तुलसी जो आंजी सहै, सो आंधरो न होय॥४२३

(आँजी) अञ्जन लगी हुई, आंख में अञ्जन लगाने से कड़ुवापन पैदा होता है।

सो आंधरो न होय आंख जो अंजन मेलै,
नाहिं तो खोवे चत्तु वैद्य वानी अव हेलै।

विषय भोग में फँसा मोहवस त्याग न करता,
खुलै न अन्तर्दीठि जगत आता फिर मरता ॥

भागे भल, आड़ेहु भलो, भलो न घालेहु घाव।
तुलसी सब के सीस पर, रखवारो रघुराउ ४२४

रखवारो रघुराउ सकल प्राणिन का भाई,
भागो, वा बचिलेहु मारिवो है दुखदाई।
सबहिं मारता कर्म कौन हनताहै किसको,
तेहि मारि है कौन राम राखे है जिसको ॥

भागना भला है। आड़ लेना भी भला है। किसी के मारने पर मारना भला नहीं।

सुमति विचारहिं परिहरहिं दल सुमनहुँ संग्राम।
सकुल गये तनु विनु भये, साषी जादौ काम ४२५

अच्छी मति वाले विचार कर लड़ाई में पत्ती और फूल से भी मारना परित्याग करते हैं। पत्तियों से मारकर सब यदुवंशी और फूलों से शङ्कर जी को मारकर कामदेव नष्ट होगये।

साखी जादौ काम मारिबो नासै सर्वस,
जदुबंशी नशि गये मारि पत्तिन ईर्षावश।
काम कुसुम शरचाप धारि शिवके उर मार्यो,
तनु ताको भयो छार शम्भु जब नयन उघार्यो॥

कलह न जानव छोटकर, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह, जरत धनिक धनधाम ४२६

जरत धनिक धनधाम नीच गृह दवके लागे,
विनसहिं भलअरु पोच, जगत उतपातहिं जागे।
कलह न जानेउ छोटि एककपि लंका जारेउ,
द्रुपदसुता अपमान सदल कुरुवंश सँहारेउ ॥

रोष क्षमा के दोष गुन, सुनि मन मानहिं सीख।
अविचल श्रीपति हरि भये भूसुर लहै न भीख ४२७

भूसुर लहैं न भीख यदपि दर दर बहु धावहिं,
विष्णुवक्ष भृगु हनी लात ताकर फल पावहिं।
श्री करि अचल सनेह विष्णुपद-पद्महि लागी,
हरिहैं क्षमा निधान शील सागर बड़ भागी ॥

कौरव पाण्डव जानिये क्रोध क्षमा के सीम।
पांचहि मारि न सहिसके सवौं सँहारे भीम ४२८

सवौं सँहारे भीम सुवन कुरुराज अन्ध के,
बाल न बाके भये पाण्डुसुत के प्रबन्ध के।
दुर्योधन करि क्रोध सकल निजबंश नसायो,
पाण्डव कीन्ह्यौ क्षमा राजलक्ष्मी जय पायौ ॥

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ४२९

जीते हारि निहारु कष्ट काहुहिं नहिं दीजै,
दान मान परितोष सबन कर आदर कीजै।
सियाराममय सकल विश्व जानहुँ सत भाये,
तरहु न यह संसार बिना असमति उर आये॥

जो परिपांय मनाइये, तासों रूठि विचारि।
तुलसी तहां न जीतिये, जहां जीतेहू हारि॥ ४३०

जहां जीते हू हारि तहां कबहूँ नहिं लरिये,
करि करि यतन अनेक परिश्रम नाहक करिये।
जाके परिये पांय न रूठब तासों अच्छा,
कृपा मूर्ति भगवान न उनकी करो परीच्छा॥

जूझे ते भल बूझिवो, भली जीति ते हारि।
उहँके ते उहँकाइवो, भलो जो करिय विचारि ४३१

अगर विचार कर देखो तो लड़ जाने से आपस में समझ बूझ लेना अच्छा है। और बहुत परिश्रम करके दूसरे को जीतने से हार जाना अच्छा है। किसी को धोखा देने से स्वयं धोखा खाना भला है।

जारिपु सों हारे हँसी, जिते पाय परितापु।
तासों रारि विचारिये, समय सम्हारे आपु॥ ४३२

समय सम्हारे आपु न ऐसे रिपु सों भिरिये,
जेहि जीते परितापु, हँसी जो रन मे गिरिये।

नीच दुष्ट सों रारि करै का यह फल भाई,
जीते राखे द्रोह, हारे हू करै ढिठाई ॥

जो मधु मरे न मारिये, मारहु देइ सो काउ ।
जग जिति हारे पर सुधर, हारि जिते रघुराउ ॥४३३

हारि जिते रघुराउ पर सुधर क्षत्रिजता से,
मारेहु जेहिं निज मातु पाइ आमर्ष पिता से ।
तेज क्रोध बल पुंज कुलिश सम बचन उचारे,
नमि कहि बचन पुनीत राम सब क्रोध निवारे ॥

जो कोई मिठाई से मर जाय तो उसे विष देने की क्या जरूरत है । जगत के जीतने वाले परशुराम श्रीराम जी की मीठी बातों से ही हार गये और कड़ी बातें न कहने वाले श्री राम जो जीत गये ।

बैर मूल हर हितवचन, प्रेम मूल उपकार ।
दोहा शुभ सन्दोह सों तुलसी कियो विचार ४३४

गोस्वामी जी कहते हैं कि मैंने बहुत विचार के इस दोहे समस्त कल्याणों को रख दिया है । वह यह यह है ।

(१) बैर की जड़ वह बचन जिससे दूसरों के हित की हानि हो । और प्रेम की जड़ दूसरों का उपकार करना है । अथवा

(२) बैर की जड़ को हरने वाला अर्थात् जड़ से नाश करने वाला दूसरे का हितकारी बचन है । और प्रेम की जड़ बैठाने वाला दूसरे का उपकार करने वाला बचन है ।

रोष न रसना खोलिये, वरु खोलिय तरवार ।
सुनत मधुर परिणाम हित, बोलिय बचन विचार ४३५

बोलिय बचन विचारि सुनत श्रवणन प्रियलागै,
सुखद होहि परिणाम दोष दुख संशय भागै ।
क्रुद्ध वचन करै घाव यथा तरवार न मारे,
शकुनि दुशाशन बचन सकल कुरुबंश सँहारे ॥

मधुर वचन, कटु बोलिबो विनुश्रम भाग अभाग ।
कुहू कुहू कल कराठरव काका कररत काग ४३६

काका कररत काक वचन श्रवनन दुख दाई,
मीठे बोले वैन कोयल कानन सुखदाई ।
सहजहिं पाइय भाग वचन प्रिय सबसों बोले,
अइहै कठिनअभाग कुटिल बचनन मुखखोले ॥

पेट न फूलत विनु कहे, कहत न लागत ढेर ।
सुमति विचारे बोलिये, समुझि कुफेर सुफेर ४३७

समुझि कुफेर सुफेर बुरा भल जग मे होता,
अनभल भल, कटु मीठ बचनसे होत अन्होता ।
बचन कहे बिनु पेट काहु को फूलत नाहीं,
और कहे ते द्रब्य ढेर कोउ पावत नाहीं ॥

छियौ न तरुनि कटाक्ष सर, कटयौ न कठिन सनेहु ।
तुलसी तिनकी देह को जगत कवँच करि लेहु ४३८

जगत कवँच करि लेहु देह ऐसे गुरुवर की,
जाहि न व्यापै मोह, घात सुन्दरिदृग-सर की ।
ऐसे कवचहिं धारि जगत की विजय करीजै,
सन्त शरण मे पहुँच भला केहि भांति मरीजै ॥

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलापु ४३९

कायर करहिं प्रलापु शूर करनी करते हैं,
सन्मुख रिपु को देखि न वातों से लरते हैं ।
काम क्रोध मद लोभ अनी दारुन दुश्मन की,
मौन साधि करि लेहु खंग रा रा रर रन की ॥

बचन कहे अभिमान के, पारथ पेषत सेतु ।
प्रभु तिय लूटत नीच नर, जय न मींचु तेहि हेतु ४४०

समुद्र में बँधे सेतु को देख के श्रीकृष्ण जी से अर्जुन ने गर्व से कहा, मैं बाणों से पुल बाँध सकता हूँ श्रीराम जी ने तो नल नीलादिकों की सहायता से इसे बनाया था । इस अभिमान का फल यह हुआ कि द्वारिका से श्रीकृष्ण की गोपियों को लेकर लौटते हुए अर्जुन को भिल्लों ने जीतकर स्त्रियाँ छीन लीं । जिससे अर्जुन की मृत्यु जैसी होगई । इसलिए अभिमान करना बुरा है किसी कविने कहा है 'भिल्लन लूटी गोपिका वह अर्जुन वह बान' ।

राम लखन विजयी भये, बनहु गरीब निवाज ।
मुखर वालि रावन गये, घरही सहित समाज ४४१

(मुखर) साभिमान बोलने वाले ।

घर ही सहित समाज बालि रावन गे मारे,
साभिमान कहि बचन राज तिय जीवन हारे ।
परमनम्र मृदु बैन चतुर भ्राता दोउ बोलहिं,
बने गरीब निवाज लोक तिहुँ विजय डोलहिं ॥

खग मृग मीत पुनीत किय, वनहु राम नयपाल ।
कुमति वालि दसकराट घर सुहृद बन्धु किय काल४४२

सुहृद बन्धु किय काल राज पुर कोष नसाये,
वालि और दसकन्ध कुमति हठ निज उर लाये ।
खग मृग कियो पुनीत मीत दुख दोष नसायौ,
बन डोलत बनपाल राम ऋषि मुनिन बसायौ ॥

नम्रता को पालने वाले श्रीरामजी ने जङ्गल में भी अपवित्र गीध और बन्दरों को मित्र बनाया, और पवित्र किया । किन्तु कुमति रावण और बालि ने घर बैठे पवित्र हृदय वाले विभीषण और सुग्रीव को अपना परम शत्रु बनाया ।

लखै अघाने भूख ज्यों, लखै जीति में हारि ।
तुलसी सुमति सराहिये, मग पग धरै विचारि ४४३

मग पग धरै विचारि सुमति सोइ गुनिवे लायक,
जानैं तजि अभिमान राम सबहिन कर नायक।
यद्यपि है परिपूर्ण दरिद्री निजकहँ लेखै,
जीति न कर अभिमान नम्र हारे सों देखै॥

लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा विचारहिं चारुमति, सुदिन कुदिन की दूक ४४४

(दूक) दो एक (चारुमति) सुन्दरी बुद्धि वाले।

सुदिन कुदिन दिन दूक सदा नहिं वह रहनेको,
भले बुरे जो किये वही होंगे कहने को।
सदाविचारहिं सुमति लाभलहि सबकहँपालहिं,
नीचकर्म नहिं करहिं यदपि दुर्दिन उर घालहिं॥

सिन्धुतरण कपि गिरिहरण काज सांइ हित दोउ।
तुलसी समय हि सब बड़ो, बूझत कहुँ कोउ कोउ ४४५

समुद्र का लङ्घन तथा सञ्जीवन लाने के समय पर्वत का उखार लाना, हनुमान जी के यह दोनों काम समय पर स्वामी के लिए किये गये, और इसीसे इन कामों की अधिक प्रशंसा हुई। नहीं तो समुद्र लाँघना, पर्वत उखारना, हनुमान जी की नित्य की साधारण बात है। भाव यह कि समय ही पर किया गया काम प्रशंसनीय होता है। इस बात को कहीं कोई कोई आदमी जानते हैं सभी नहीं।

तुलसी मीठी अमी ते, मांगे मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय विनु, कालकूट ते नीच ४४६

गोस्वामी जी कहते हैं कि समय पर यदि मौत माँगे मिल जाय तो अमृत के तुल्य है, यथा पार्वतीवाक्य 'तो मैं विनय करौं कर जोरी, छूटै बेगि देह यह मेरी' और अमृत तथा अमृत के देने वाला चन्द्रमा कुसमय में हलाहल विषसे भी बदतर है यथा सीता वाक्य "पावकमय शशि स्रवहि न आगी, मानहुँ मोहिं जानि हत भागी"। तथा श्रीरामजी का वाक्य है 'घटै बढ़ै बिरहिन दुखदाई'।

तुलसी असमय को सखा, धीरज धर्म विवेक।
सोहित साहस सत्यव्रत, रामभरोसो एक ४४७

गोस्वामी जी कहते हैं कि बुरे समय के सहायक मित्र, धीरज, धर्म, और सत्यासत्य विचार (विवेक) होते हैं। और उसका हित करने वाला साहस तथा सत्यव्रत भी है। परन्तु केवल श्रीराम जी का भरोसा करने से अन्य किसी सहायक की आवश्यकता ही नहीं रहती।

समरथ कोउ न राम सों तीयहरण अपराधु।
समयहि साधे काज सब, समय सराहहिं साधु ४४८

उपरोक्त धैर्य का उदाहरण गोस्वामी जी इस दोहे के द्वारा देते हैं। श्रीराम जी जैसा कोई समर्थ पुरुष नहीं है। और क्षत्रिय के लिए स्त्रीहरण से बढ़कर कोई अपमान नहीं। परन्तु महाराज जी ने धैर्य और विवेक को धारण करके सब कार्य सिद्ध किये। समय प्राप्त होने पर सुन्दर साहस भी प्रकट किया। और सत्यव्रत को कभी न छोड़ा। ऐसे नियमानुसार कार्य करनेवाले की सराहना साधु लोग करते हैं।

तुलसी तीरहु के चले, समय पायवी थाह।
धाय न जाय थहायवी, सरसरिता अवगाह ४४९

(अवगाह) घुसना।

नदी और तालाब जो अथाह भरे हैं, उनके किनारे पर चलने से भी कभी न कभी उतारा मिल ही जायगा। केवल दौड़ कर उसमें प्रवेश करने से पार न मिलेगा। इस अथाह भवसागर में लिप्त होकर तरना कठिन है "बुझै न काम अग्नि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी से"। उससे अलग रहकर उतरने का मार्ग खोजना चाहिए। कभी तो मार्ग का ज्ञाता सन्त मिल ही जायगा और "महाजनो येन गतः स पन्था" का पता लग ही जायगा।

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाइ।
आपु न आवे ताहि पहँ, ताहि तहां लै जाइ ४५०

ताहि तहां लै जाइ जहां दुःसंगति पावै,
तन धन सुयश सुनेम सकल कुलधर्म नसावै।
मारीचहु ढिग प्रेरि काल रावणहिं पठायौ,
फिर दूहुँनको महाकालसम सिय ढिग लायौ॥

(२) ताहि तहां लै जाय जहां प्रभुपद अनुरागी,
पावै पावन राममन्त्र मानुष बड़ भागी।
सुमति भुशुण्डिहिं प्रेरि मुनी लोमश पहँ लाई,
पायौ मानस विमल राम कीरति रुचिराई॥

कै बुझिबो कै जूझिबो, दान कि काय कलेस।
चारि चारु परलोक पथ, जथाजोग उपदेस ४५१

"बूझिबो" जानना ज्ञान प्राप्त करना तथा शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन करना ब्राह्मण का धर्म है। "जूझिबो" लड़ाई में

मरना व मारना क्षत्रिय का धर्म है। दान देना वैश्य का धर्म है। "कायकलेस" सेवा शूद्र का धर्म है। गोस्वामी जी कहते हैं कि चारों वर्णों को उनको योग्यता के अनुसार सुन्दर उपदेश देकर धर्मशास्त्र नें परलोक की प्राप्ति का मार्ग दिखला दिया है।

पात पात को सींचिवो, न करु सरग-तरु हेत।
कुटिल कटुक फल फरैगो, तुलसी करत अचेत ४५२

(१) पत्ते पत्ते के सींचने से स्वर्गरूप वृक्ष मिल जायगा इस आशा से व्यर्थ परिश्रम न करो। क्योंकि उस वृक्ष से जो फल फलैगा वह कड़ा, कड़वा, तथा अचेत करने वाला होगा।

(२) फल के आश्रय से अनेकानेक शक्तियों का यज्ञ व आराधन तथा योगक्रिया आदि के करने से कल्पवृक्ष रूप सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करने वाले पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। इतनाही नहीं, यदि उनके करने में साधक अचेत यानी असावधान होगया तो उन क्रियावों का परिणाम कड़ुबा और कठोर होगा। क्योंकि अविधि पूर्वक यज्ञ करने का परिणाम उलटा होता है, तथा देह में रोग उत्पन्न करता है।

गठिबँध ते परतीत वड़ि, जेहि सबको सबकाज।
कहव थोर समुझब वहुत गाड़े वढ़त अनाज ॥४५३

गोस्वामी जी कहते हैं कि इस दोहे में शब्द तो कम हैं मगर अर्थ बहुत हैं। इसलिए अर्थशास्त्र, विद्या और ज्ञान के भावों से तीन अर्थ लिए जाते हैं।

(१) द्रव्य को गाठी में बांध के रखने से विश्वाश करके व्यापारादि मे लगा देना भला है। जिससे अपना और दूसरों का भी काम चलता रहता है। इसबात को उदाहरण द्वारा सिद्ध करते

हैं। जैसे यदि अनाज गांठ बांध के रख दिया जाय तो वढ़ नहीं सकता, मगर विश्वाश करके बो देने से बहुत बढ़ जाता है।

(२) विद्या का उपार्जन करके उसको गांठ बांध करके रख दिया, मगर उसपर प्रतीति करके उसके अनुसार व्यौहार न किया तो उससे न तो अपना ही कोई कार्य निकला न किसी दूसरे ही का भला हुआ। यदि उसका वितरण किया जाता तो अपनी विद्या वृद्धि होती और परोपकार भी होता।

(३) सद्गुरु से मन्त्र, विधि, आदि प्राप्त करके यदि गांठ बांधकर धर दिया जाय तो क्या प्रयोजन निकलेगा। परन्तु उसपर पूर्ण विश्वाश करने से सब का सब तरह का कल्याण हो सकता है। वैज्ञानिक रीति से बीज जितनी ही गहराई में गाड़ा जाता है उतनाही बलवान होता है। इसीभांति जितनी गहराई से मन्त्र का उच्चारण होगा, उतनाही भक्ति को पुष्ट करेगा।

अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिं निज भीति।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ४५४

स्त्रियां अपने हाथ के पंजे को ऐपन में बोरकर अपनी दीवार में छाप देती हैं प्रीति और प्रतीति से उसी का पूजन करके अपनी सारी मनोकामनायें पूरी करती हैं।

तुलसी प्रीति प्रतीति पूजि वांछित फल पावैं,
ऐपन निज कर बोरि थाप तिय भीति लगावैं।
निज कर देवन थापि सहित अनुराग विबुधजन,
पावैं हरिहर लोक, दरस, आनन्द मुदित मन॥

बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर, सब सनेह सनमानु ४५५

सूर्य, जगत के जल को अपनी किरणों द्वारा खींच के, जगत के कल्याण के लिए ही बरसते हैं। जल के खींचने और छोड़ने की शक्ति रखते हुए भी भगवान सूर्य अर्घ्यजल से बड़े प्रसन्न होते हैं। इसी तरह सुर और साधु स्नेह और सम्मान ही चाहते हैं। वैसे तो उनके पास समस्त शक्तियां विद्यमान ही हैं।

सब सनेह सनमानु चहत साधू अरु सुरगन,
हैं ऐश्वर्य निधान तिन्हें देवेगा क्या जन।
सूरज जल को खींचि उसीको फिर बरसाते,
स्वल्प अरघ जल पाइ सहित सन्मान अघाते॥

श्रुति-गुन कर-गुन, पु-जुग-मृग हय, रेवती, सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु, गएहु न जाइहि काउ ४५६

श्रुति गुन—श्रवण नक्षत्र से तीन नक्षत्र श्रवण, धनिष्ठा, शतभिकू।
कर गुन—हस्त नक्षत्र से तीन हस्त, चित्रा और स्वाती।
पु जुग—पु से दो नक्षत्र पुनर्वसु और पुष्य।
(मृग)—मृगसिर (हय) अश्विनी (सखाउ) अनुराधा (धरु) धारण करु अर्थात् विश्वास कर।

ज्योतिष में २७ नक्षत्र हैं गोस्वामी जी कहते हैं कि इन उपरोक्त १२ नक्षत्रों में अगर कोई धन दे, या पृथ्वी मोल ले तो विश्वास रक्खे वह कभी जा नहीं सकती।

"स्वात्यादित्य मृग द्विदैव गुरुभे करणत्रयाश्चे,चरे"।

ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुन साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो, धन फिर चढ़ै न हाथ ४५७

ऊगुन-ऊ से तीन, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद। पु गुन-पू से तीन, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, (वि) विशाखा (अज) रोहिणी (कृ) कृत्तिका (म) मघा (आ) आर्द्रा (भ) भरणी (अ) अश्लेषा (मू) मूल (गुन साथ) साथ ही गुन लो।

उपरोक्त १४ नक्षत्रों में जो धन चोरी आदि में चला गया है या जो किसी के पास धरोहर में रक्खा गया है, या जो जमीन मे गाड़ दिया गया है, अथवा जो किसी को उधार दिया गया है। वह फिर हाथ में नहीं चढ़ता।

तीक्ष्ण मिश्र ध्रुवोग्रैर्यत् द्रव्यं दत्तं निवेशितम्।
प्रयुक्तं विनष्टं च विष्ट्यां पाते च नाथते ॥

रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिकवार।
तिथि सब काज नसावनी, होइ कुजोग विचार ४५८

रविवार को द्वादसी, सोमवार को एकादसी, मंगल को दसमी बुधवार को तीज, बृहस्पति को छठ, शुक्रवार को द्वितीया और शनिवार को सप्तमी पड़े तो कुयोग समझना चाहिये। इनमें जो काम किया जायगा नाश हो जायगा यानी कोई शुभ काम सिद्ध नहीं होगा।

ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनिफल बसु हरभानु।
मेषादिक क्रमतें गनहि, घात चन्द्र जिय जानु ४५९

चन्द्रमा २७ नक्षत्रों को १२ दिन में भोगता है। इस तरह नक्षत्रों के सम्बन्ध से चन्द्रमा के १२ स्थान नियत हैं। पहिला स्थान अश्विनी भरणी और अर्ध रोहिणी है। गोस्वामी जी कहते

हैं कि यदि पहिला पांचवाँ नवाँ दूसरा छठवाँ दसवाँ तीसरा सतवाँ चौथा ग्यारहवाँ और बारहवाँ स्थान चन्द्रमा का क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन में पड़े तो उसे घातक समझना।

उपरोक्त इन दोहों में गोस्वामी जी ने फलित ज्योतिष के अनुसार कई मुहूर्त बताये हैं। जो काम कई श्लोकों के याद करने से निकलते हैं वे एक दोहा से सिद्ध होते हैं। अब आगे सगुन की चीजों का बर्णन करते हैं।

नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चष चाष।
दसदिसि देखत सगुन शुभ, पूजहि मनअभिलाष४६०

दशों दिशाओं में किसी ओर प्रयाण करने के समय यदि निम्नलिखित छा चीजों में किसी के दर्शन हो जायँ तो समझना चाहिये शुभ सगुन है, और मन की अभिलाषा पूरी होगी। १ "नकुल,, न्यौला २ "सुदरसन,, मछली ३ "दरसनी,, दर्पण ४ "छेमकरी,, वेश्या या धोबिन ५ "चक्र,, चक्रवाक ६ "चष,, खंजन।

सुधा साधु सुरतरु सुमन, सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति भगति, सगुन सुमंगल सात ४६१

अमृत, साधु, सुरतरु अर्थात् मन्दार, परिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन इनमें कोई नया फूल, सुन्दर फल, अच्छी बात और श्रीराम जी की भक्ति यह सात चीजें यात्रा के समय सगुन और सुमंगल करने वाली हैं।

(२) गोस्वामी जी कहते हैं कि श्री जानकीनाथ जी की भक्ति से सात चीजें प्राप्त होती हैं। पहिले अमृत जो स्वादिष्ट

होते हुए अमरता प्रदान करता है। दूसरे साधु भवसागर की नौकास्वरूप तीसरे सुरतरु सुमन स्वर्गीयभोग। चौथे सुफल सांसारिक पवित्र भोग। पाँचवें सुहावनी बात आदर सन्मानादि छठे सगुन सहायता सुमंगल सकुशल सानन्दजीवन।

भरत सत्रु सूदन लषन, सहित सुमिर रघुराथ।
करहु काज सुभ साज, सब मिलहि सुमंगल साथ ४६२

मिलहि सुमंगल साथ और शुभसाज विविधविधि,
सुमिरि लषण सियराम शत्रुहन भरत दया निधि।
जगत सुमंगल जिते इनहिं की छाया जानहुँ,
जनि भरमहु इत उतै मूल कारण उर आनहुँ॥

राम लषन कौसिक सहित, सुमिरहु करो पयान।
लच्छि लाभ लै जगत जसु मंगल सगुन प्रमान॥ ४६३

मंगल सगुन प्रमान न यहि सम दूसर भाई,
जो पयान कर राम लषन कौशिक उर लाई।
पावै धन सनमान सुयश इस जग मे रह कर,
कामादिक को जीति, तरै भव, प्रभुपद गहकर॥

अतुलित कहिमा वेद की तुलसी किये विचार।
जेहि निंदत निंदित भयो, विदित बुद्ध अवतार॥ ४६४

विदित बुद्ध अवतार भयो निंदित केहि कारण,
जेहि जग थापी दया, कियो पशु क्लेश निवारण।
कहि २ वेदनुकूल कामि जन हिंसा ठानी,
बुद्ध देव लखि ताहि वेद मर्यादा भानी॥

(२) विदित बुद्ध अवतार मिटाई हिंसा जिन ने,
निन्द्य बता कर वेद, सुनिन्दा पाई इन ने।
परम्परा से मान्य वस्तु की कर के निन्दा,
सुर गुरु भी निज कीर्ति नहीं रख सकते जिन्दा॥

(३) विदित बुद्ध अवतार विष्णु अंशी करुणामय,
शुद्ध, त्याग परिपूर्ण, दयामय और अनामय।
मेटी महिमा अतुल वेद की स्वयं जिन्हों ने,
निज वाक्यहिं कहि झूठ, लिया अपमान इन्होंने॥

बुध किसान, सर वेद, निज मते खेत सब सींच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम मध्यम नीच॥ ४६५

गोस्वामी जो कहते हैं कि बुधरूप किसान, वेदरूप तालाब से विचाररूप खेत को सींचता है। और जिस तरह उसकी खेती को देख कर उस के उस उत्तम मध्यम और नीच परिश्रम का ज्ञान होता है जो कि उसने खेत सींचने में किया है। इसी भाँति वेद से जिन लोगों ने अपनी मति के अनुसार शिक्षा लेकर यज्ञादिक कर्म किये हैं और उन कर्मों के द्वारा जो फल उनके बुद्धि व

आचार इत्यादि के सम्हलने के रुप में मिले हैं उससे उनके उत्तम मध्यम और नीच बुद्धि का परिचय मिलता है।

सहि कुबोल, सांसति सकल, अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय कहि करि गये सुजान॥४६६

(कुबोल) खराब शब्द गाली इत्यादि (सांसति) क्लेश (अँगई) अङ्गीकार कर के (अनट) अनुचित।

गोस्वामी जी कहते हैं कि औरों के दुर्वाच्य को सहन करो और उन के द्वारा जो तुम्हे क्लेश पहुँचाया जाय उसे बर्दाश्त करो। और कितना ही अनुचित अपमान तुम्हारा कोई करे उसे अङ्गीकार करो, परन्तु अपने धर्म का परित्याग कभी मत करो। आगे चल कर गोस्वामी जी कहते हैं कि यह कथन मेरा ही नहीं, इसे विज्ञानी महात्मा लोग कह गये और करके दिखला भी गये हैं।

कहि करि गये सुजान पितामह भीष्म सदृश नज,
दुर्योधन के वाक्य शरन सों घायल तन मन।
नृप कहता था भीष्म पक्ष करते अर्जुन का,
वह कहते लड़ रहे बृद्ध तव हित नहिं उन का॥

(२) कहि करि गये सुजान धर्म जनि त्यागहु भाई,
सहि अनुचित अपमान गारि सांसति विपुलाई।
कियो कैकई सकल, भरत विनुजाने, अनभल,
सो सब निजशिरधरिभोग कियोताको कटुफल॥

अनहित-भय परहित किये, पर-अनहित हित हानि।
तुलसी चारु बिचार भल, करिय काज सुनि जानि ४६७

इस दोहे के अर्थ के पहिले गोस्वामी जी की बहस समझ लेना चाहिए। वे कहते हैं कि एक मनुष्य दूसरे का याती भला ही कर सकता है या बुरा ही। यदि किसी से यह कहा जाय कि तुम दूसरों का भला करो कोई सज्जन यह उत्तर देते हैं कि कभी कभी यह भी देखा गया है कि हवन करने से हाथ जलता है इस लिए किसका कैसे भला करें। लेकिन यदि कहा जाय कि तुम दूसरों का बुरा न करो तो यह बात प्रत्येक आदमी मान लेगा। मगर गोस्वामी जी कहते हैं कि इतना ही मानना काफी नहीं बल्कि यहाँ तक मानना चाहिए कि दूसरेके अनहित करनेमें अपनी हानि अवश्य है तवतो किसी की हानि करनेसे यही भला है कि उसका हित करो। क्योंकि हित करने में अपने अनहित की केवल सम्भावना है, लेकिन किसीके अनहित करते ही यह निश्चय है कि हमारा अनहित होगा। अर्थ इस प्रकार है।

दूसरे का हित करने में अनहित का भय होता है। परन्तु दूसरे का अनहित करने मे अपने हित की हानि अवश्य है। गोस्वामी जी कहते हैं कि इस `री बात को अच्छी तरह सुनो और समझो कि सबसे अच्छा और श्रेष्ठ बिचार यह है कि हमेशा सबका भला ही करता रहे। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग अपनी भलाई का नहीं।

पुरुषारथ, पूरव करम, परमेश्वर परधन।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहि काज अनुमान ४६८

गोस्वामी जी एक तैराक का उदाहरण देकर बतलाते हैं कि जो पैराक बहती हुई धारा मे अकेला पैर रहा है उस को चार

चीजों से सहायता तथा भय प्राप्त होती है। पहिले पुरुषार्थ, यदि उसने अपने शरीर को आरोग्य रखके व्यायाम आदि के द्वारा बलिष्ठ बना रक्खा है, और धर्मानुकूल आचरण से अपनी आत्मा बलवान बनाया है तो यह सब उसे अकेले तैरने के समय सहायक होंगे। यदि इसके बिपरीत है तो वही भयकारक होंगे।

इसी मे पूर्व कर्म भी आगया क्योंकि पूर्व कर्म का फल पुरुषार्थ है। तीसरा परमेश्वर, उनके सम्बन्ध मे कहना ही क्या है। उनकी सहायता तो प्रत्येक स्थान, अवसर और दशा मे लेनी ही पड़ेगी। यदि अभाग्यबस उनकी सहायता पर कभी बिश्वाश ही न किया जाय तो दशा अवश्यही शोचनीय होगी। और फिर भयका ठिकाना ही क्या है जाने कब आजाय। चौथी वस्तु प्रधान है, जिसका साधारण अर्थ प्रकृति है। लेकिन तैराक के सम्बन्ध मे प्रकृति रूप जलधारा से अर्थ लिया जायगा। उपर्युक्त तीन बस्तुवों के होते हुए भी तैराक जलधारा से जिसमे पड़ा है, अचेत नहीं रह सकता, क्योंकि बह तो प्रधान बस्तु है। और उसी से उस को महाभय है। इसी भांति जीव चारों ओर प्रकृति से आवृत है। इसलिए प्रकृति महा प्रबला है। तैराक यदि धारा के बिरुद्ध चलेगा तो अवश्य डूब जायगा। किन्तु यदि उसकी सहायता लेता हुआ चलेगा तो बच जायगा। बिना महाराणी जी की शरणागति के प्राप्त हुए क्या कोई श्रीराम जी को कभी पा सकता है। दोहे का अर्थ इस भाँति है।

मनुष्य जप तप नियम धर्मादि करके जब कुछ आत्मिक बल प्राप्त कर लेता है, और जब उसके पूर्व शुभकर्म का उदय होता है, और जब ईश्वर की उस पर पूर्ण कृपा होती है और साथ ही जब प्रकृति भी उसकी सहायता करती है, तब इस संसार सागर में पैरते हुए उसको उससे पार होने का मार्ग प्राप्त हो जाता है।

चलब नीति मग, राम पग नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक॥ ४६९

जो न पसारे फीक बसन सोइ पहिरै लायक,
फीके भोगत होंहि स्वाद जानत रस नायक।
चलहु नीत पथ प्रेम राम पद पंकज उर धरि,
हृदयान्तर में प्रकट रहत नव रूप धरे हरि॥

दोहा चारु विचारु, चलु परिहरि वाद विवाद।
सुकृत सींव, स्वारथ-अवधि, परमारथ-मरजाद॥ ४७०

जो दोहा मैंने लिखे हैं, उन को भली भाँति विचार के चलो-और विवाद को त्यागो। यह दोहे अच्छी रचना की हद हैं। और इन में अपने भाव भी अन्त तक भली भाँति स्थित हैं। दूसरे के भी शोभायमान प्रयोजन की मर्यादा हैं।

(२) उपरोक्त दोहे की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं कि सुन्दर विचार के साथ उपरोक्त दोहे के अनुसार चल। और वृथा वाद विवाद को छोड़ दे। कारण यह है कि ऐसा करना सुकृत की मर्यादा है, अर्थात् नीति के अनुसार चलना है। और भगवद् के चरणारविन्द में भक्ति करने के अतिरिक्त सुकृत की सीमा और क्या हो सकती है। दूसरी विचित्र बात गोस्वामी जी इस सम्बन्ध में यह बतलाते हैं कि कि जो सुकृत की सीमा है वही स्वार्थ की भी परम अवधि है, अर्थात् ऐसा आचरण करने से इस जगत मे देहधारी को पूर्ण लौकिक आनन्द की प्राप्ति भी होती है। इस के पश्चात् गोस्वामी जी तीसरी बात और भी बतलाते हैं कि इसी मार्ग पर चलने से अन्तिम जो परमार्थ है वह भी प्राप्त होता है।

तुलसी सो समरथ, सुमत, सुकृती, साधु, सयान।
जो बिचारि ब्योहरइ जग, खरचलाभ अनुमान ४७१

खरच लाभ अनुमान नित्य जो अपना करता,
अरु विचारि बहु भांति जगत के विच ब्योहरता।
सोइ समर्थ सोइ सुमति साधु सोइ सुकृति सयानो,
या के जो विपरीत लहत सोइ हँसी अयानो॥

जाय जोग जग छेम बिनु तुलसी के हित राखि।
बिनुऽपराध भृगुपति, नहुष, वेनु, बृकासुर साखि॥४७२

(१) जगत् मे जोग अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति और छेम यानी प्राप्त पदार्थ की रक्षा बिना तुलसी जी के हित करने वाले श्रीराम जी को हृदय में रक्खे व्यर्थ है। इस बात के साक्षी सब के साथ जिन्हों ने अपराध किया और उन के साथ किसी ने अपराध नहीं किया ऐसे भृगुपति, नहुष, वेनु और बकासुर हैं।

(२) जगत् मे जोग बिना छेम के वृथा है। गोस्वामी जी कहते हैं कि मेरे हितू श्रीराम जी निरपराधी की रक्षा करते हैं। जैसे कि उन्हों ने परशुराम जी से क्षत्रिय जाति की रक्षा की, नहुष से शची के सतीत्व की, वेणु से प्रजा की और बकासुर से ग्वालवालों की। यह सब क्षत्रिय, शची, प्रजा, और ग्वालवाल निरपराधी थे।

(३) जगत् मे जोग और क्षेम दोनों वृथा हैं यदि श्रीराम जी हृदय मे नहीं हैं। उदाहरण में गोस्वामी जी कहते हैं कि यद्यपि भृगुपति आदि के साथ किसी ने अपराध नहीं किया था अर्थात् उन पर आक्रमण नहीं किया था तब भी वे लोग अभिमान वश भगवत् का निरादर कर के स्वयं दुःख को प्राप्त हुए।

(४) जगत् में किसी वस्तु को परिश्रम से पाकर रक्षा न करना वृथा परिश्रम है । मगर किसी भी पदार्थ की रक्षा बिना भगवत के नहीं हो सकती है। इस लिये गोस्वामी जी शिक्षा देते हैं कि श्रीराम जी जो सब के हितू हैं उन को हृदय मे रख कर निरपराध हो जावो वे आप ही भलाई करेंगे नहीं तो परशुराम आदि की जैसी तुम्हारी भी दशा होगी ।

(५) गोस्वामी जी कहते हैं कि बिना क्षेम के जोग नहीं रह सकता (जाय) और जब जोग की रक्षा न हो सकी तो (के हित राखि) अपने हित को कौन रक्षा कर सकता है। (बिनुऽपराध) जिन के साथ किसी ने किसी तरह की बुराई नहीं की ऐसे अपनी बँधी मर्यादा की रक्षा न कर सकने वाले भृगुपति (परशुराम) आदि इस बात के साक्षी हैं ।

बड़ि प्रतीति

~~बड़ो प्रीत~~ गठि बन्ध ते बड़ो जोग ते छेम ।
बड़ो सु सेवक सांइ ते बड़ो नेम ते प्रेम ॥ ४७३

इस दोहे से निम्नाङ्कित चार सिद्धान्त स्थापित करते हैं। पहिला गांठ में बांध रखने से प्रतीत (विश्वाश) करना भला है, जैसे यदि गुरु से राम मंत्र प्राप्त करके उस पर विश्वास न किया तो क्या लाभ है। दूसरा-योग से क्षेम बड़ा है, किसी ने बड़े परिश्रम से धन प्राप्त किया किन्तु उसकी रक्षा न कर सका अर्थात् डाकू इत्यादि उनसे ले गये तो उससे सिवाय दुःख के क्या प्रयोजन निकाला तीसरा-अच्छा सेवक स्वामी से बढ़कर होता है प्राकृतिक भाव में जितना प्रयोजन, अच्छे सेवकसे निकलता है उतना स्वामी से नहीं। अध्यात्मिक भाव में तो स्पष्ट यह है कि जिस किसी को भगवत् की प्राप्ति हुई है वह केवल भक्त द्वारा ही हुई है। दिखाऊ आचार बहुत बड़ा है मगर आन्तरिक प्रेम नहीं है तो कुछ नहीं इसलिये दिखाऊ नेम से बढ़ के भगवत् प्रेम है ।

सिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावन सांच।
सुनि समुझो पुनि परिहरिय, परमनरंजन पांच ४७४

पर मन रञ्जन (पराये मन को खींचने वाला) पहिले यह देख लेना है कि पांचो क्या शिक्षा देते हैं प्रथम शिष्य का सब से बड़ा गुन अपने गुरु का आदर और सन्मान है दूसरा सखा सखा का गुन गोस्वामी जी ने किष्किन्धा काण्ड में अनुपम वर्णन करते हुए कहा है।

"विपति काल कर सतगुन नेहा, श्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा ॥"

तीसरे सेवक का गुन स्वामी की आज्ञा का पालन करना है चौथा है सचिव, सचिव का धर्म सत्य धर्म मय बुद्धिमानी की सलाह देना। पाँचवाँ सुतिय, सुतिय का धर्म अपने स्वामी को प्रसन्न करना। गोस्वामी जी कहते हैं कि इन पाँचो के सच्चे सिखावनों को सुनो। और समझो, फिर उन का परित्याग कर दो, क्योंकि यह सब पराये मन को हरने वाले हैं। भाव यह कि जो मुमुक्षु भगवत के पद की प्राप्ति में लगा हुआ है उस का आचरण निम्न लिखित भाँति होना चाहिये।

१—दूसरे को सन्मान देना स्वयम् सन्मान की इच्छा न करना।
२—दूसरों को सहायता देना स्वयम् किसी से सहायता की कांक्षा न रखना।
३—सेवा करना परन्तु किसी से सेवा की इच्छा न करना।
४—धर्म मय शिक्षा दूसरों को देना मगर अपने आचरण ऐसे शुद्ध रखना कि दूसरों को शिक्षा देने का मौका न मिले।
५—स्त्री के मोह का परित्याग करो।

नारि नगर भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरे रंग रस निरस विखाद विकार ॥ ४७५

गोस्वामी जी इस दोहे में संसार की वस्तुओं के त्याग का समय बताते हैं। निम्न लिखित सात सात वस्तुओं का परित्याग तभी उत्तम है, जब तक उन में रस और स्वाद बाकी है, नहीं तो "नारि मुई घर सम्पति नाशी" मूड़ मुड़ाय भये सन्याजी' की भांति जब उस में कोई सौन्दर्य या स्वाद न रह गया और झगड़ा और विकार पैदा हो गया तब उस के त्याग करने से क्या लाभ होगा। पहिले स्त्री का परित्याग तभी भला है जब उस में सौंदर्य यौवन और सुशीलता और अपने में भोग शक्ति विद्यमान है। दूसरे नगर का छोड़ना उसी समय भला है कि जब तक अपना आदर सन्मान मर्यादा और शक्ति वर्तमान है। तीसरे भोजन खाते समय जब तक भोजन में स्वाद पूर्ण रूप से स्थित रहे तभी हाथ रोक देना चाहिये। चौथा मन्त्री में यदि किसी तरह सन्देह उत्पन्न हो गया है तभी उस का परित्याग कर देना चाहिये। जिस में उस से वैमनस्य न पैदा हो। और उस का बाहरी प्रेम तथा सन्मान बना रहे। नीति के अनुसार बुद्धिमानों से बैर करना उचित नहीं इसी भांति सेवक, सखा और घर को भी समझना चाहिये।

तूठहिं निज रुचि काज करि रूठहिं काज बिगारि।
तीय तनय सेवक सखा मन के कंटक चारि ॥ ४७६

ऐसे स्त्री पुत्र सेवक और सखा मन में काँटे की तरह चुभते हैं। जो अपने मन के अनुसार ही काम कर के प्रसन्न होते हैं, और स्वयं काम को बिगाड़ के रूठ जाते हैं, और चाहते हैं कि हमें कोई मनाये।

दीरघ रोगी दारिदी, कटुवच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ, होहिं निरादर जोग ४७७

होहिं निरादर जोग यदपि ते प्राण प्रियारे,
रोग ग्रसे बहुकाल, वचन कटु बोलन हारे।
दारिद्री, परदार निरत, लोलुप जे परधन,
यद्यपि प्राण समान त्यागिये ऐसे सब जन॥

पाही खेती लगन वट, रिन कुब्याज मग खेत।
वैर बड़े सों आपनो, किये पांच दुख देत॥ ४७८

गोस्वामी जी कहते हैं कि नीचे लिखी पाँच वस्तुयें दुःख का कारण हैं। पहिले (पाही खेती) दूर की क़ाश्त किसी ग्राम में रहना दूसरे ग्राम में अथवा किसी दूर स्थान में खेती करना, जहाँ अनाज हल बैल इत्यादि के लेजाने और देख भाल में नित्य प्रति कष्ट रहता है। दूसरे (लगनवट) वह मार्ग जिसमें डाकू व चोर लगते हैं ऐसे मार्ग में चलने से मन को बराबर अशान्ति रहती है। तीसरे (रिन कुब्याज) बड़े सूद पर करज़ लेना जिससे उद्धार होना कठिन होजाता है और बहुधा जीवन पर्यन्त मनुष्य उससे मुक्त नहीं होते। चौथे (मग खेत) रास्ते पर का खेत, जो कोई रास्ते से जाता है वही सूना देखकर उसमें दो हांथ लगा देता है। पाँचवें किसी बड़े आदमी से बैर लेना जैसे गोस्वामी जी ने कहा है "नाथ बैर कीजिय ताही सों, बुधि बल जीति सकिय जाही सों"।

धाइ लगै लोहा ललकि, खैंचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी बैर सो, जानि बिसाही मीचु ४७९

जो आदमी जानबूझ के (धाई) बिना विचारे (ललकि) लोहे के समान होजाते हैं, और जो नीच की नवनि मे खिच जाते

हैं तथा जो समर्थ पापी से बैर रखते हैं ऐसे आदमियों ने मानों जान के मौत मोल ली।

(२) समर्थ पापी के दो रूप हैं एक तो "लोहा" तीर बरछी इत्यादि की भाँति दौड़कर मरता है और दूसरा नत होकर आघात करता है। दोनों बलवान पापियों से बैर करना मानों मौत को मोल लेना है।

सोचिय गृही जो मोह वस, करै करम पथ त्याग।
सोचिय यती प्रपंच रत, विगत विवेक विराग ४८०

विगत विवेक विराग यती सोइ सोचन जोगू,
तप आचरण विहाय चाहता जो सुख भोगू।
तै सोइ गृही विमूढ़ करम मारग जो त्यागे,
दोऊ निरत कुपन्थ दोउ हैं परम अभागे॥

तुलसी स्वारथ सामुहे, परमारथ तन पीठ।
अन्ध कहे दुख पाइ है, डिठि आरो केहि डीठि ४८१

गोस्वामी जी कहते हैं कि जीव स्वार्थ अर्थात् इन्द्रियों के भोगों को अपने सामने रक्खे हुए है। और भगवत्पथ की प्राप्ति की ओर पीठ दिखाये हुये है यदि कोई ऐसी दशा मे उसे अन्धा कहे तो बुरा मानता है परन्तु उसके आँख कहाँ है जिसके कारण वह आँख वाला कहा जाय। भाव यह कि विषय भोगों की ओर मन की वृत्ति के परिवर्तन होते ही अन्तरात्मा की दृष्टि, जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ का व परमार्थ वस्तु का दर्शन होता है, बन्द होजाती है। किन्तु ऐसा मनुष्य अपने को बहुत चतुर मानता है। मगर विज्ञानी जन उसको कदापि चतुर नहीं कहते।

बिन आँखिन की पानही, पहिचानत लखि पाइ।
चारि नयन के नारि नर, सूझत मीच न माइ ४८२

सूझत मीच न माइ नित्य जो चहुँदिसि आजहिं,
सबके बाहर नयन दोउ दुइ अन्तर राजहिं।
पन हीं यद्यपि अन्ध तबहुँ निज पद पहिचानत
ब्रह्म अंश ह्वै जीव न निज माया कहँ जानत॥

मूरख को उपदेसिवो, होतो जोग जहान।
क्यों न सुयोधन वोध कै, आये श्याम सुजान ४८३

आये श्याम सुजान लौटि कुरुराज सभा से,
अन्ध न सके प्रकासि, अतुल बुध ज्ञान प्रभा से।
कामी कुटिल कुचाल मत्त धन धाम लोभ रत,
ब्रह्म अंश ह्वै जीव न निज माया कहँजानत॥

सो०—फूलै फलै न बेत जदपि सुधा वरषहिं जलद।
मूरुख हृदय न चेत जो गुरु मिलै विरंचि सम॥ ४८४

जो गुरु मिलै विरंचि शंभु सिख मूढ़ न लेता,
अमरित बरसे जलद बेंत फल फूल न देता।
मूर्ख सिखावन रीति नहीं कोइ जग मे भाई,
कुरु सुत लह्यो न बोध यदपि सिखये यदुराई॥

रीझि आपनी बूझि पर खीझि विचार विहीन।
ते उपदेस न मानहीं मोह महोदधि मीन॥ ४८५

उपरोक्त दो दोहों में गोस्वामी जी बड़ी गम्भीर बात कह गये हैं कि ब्रह्मा जी तथा शिव जी और श्रीकृष्ण भगवान भी मूर्ख को बोध नहीं दे सके, तो फिर और कौन कैसे देगा। इस से इन महती शक्तियों को शक्तिमान होने में भी बाधा पड़ती है। इस लिये गोस्वामी जी इसका कारण बतलाते हैं। वह यह है कि जो पुरुष अपनी समझ पर रीझा है अर्थात् बड़ा घमण्डी है और जो बिना बिचारे क्रोध करता है वह सदुपदेश क्योंकर मान सकता है। उस का मन तो मोह के समुद्र में मछली की भाँति भ्रमण करता है। भाव यह कि जो अपनी बुद्धि को सर्वोत्तम समझता है और जिसका मन विषयों से किञ्चित भी नहीं उठता है, उस को सूक्ष्म तत्व आत्मज्ञान निर्लेप अक्षर ब्रह्म सर्वव्यापी एक रस परमात्मा का ज्ञान कोई कैसे दे सकता है।

अन समुझे अनु सोचनो अवसि समुझि अहि आपु।
तुलसी आप न समुझिये पल पल पर परितापु ॥ ४८६

अन समझे (विना समुझे) अनु सोचनो (पीछेसे बिचारना) गोस्वामी जी कहते हैं कि बिना समुझे हुए काम करने से अन्त में पछिताना पड़ेगा इसलिये पहिले ही से आप समझ लेना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो पद पद पर पीड़ा उठानी पड़ेगी।

कूप खनत मन्दिर जरत आए धारि बबूर।
ववहिंनवहिं निजकाजसिर कुमति।सिरोमनिकूर ४८७

जब घर जलने लगा तब लगे कुवाँ खोदने, जब सेना (धार) आपहुँची तब उस के रोकने के लिये बबूर बोते हैं। और जब अपना काम आ पड़ा तब नम्र होकर इधर उधर शिर झुकाते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि ऐसे लोग मन्द बुद्धियों के सरताज़ और अन्धे हैं। भाव यह कि जब सब इन्द्रियां शिथिल हुईं और तन

रोग ग्रसित हुवा तब पर लोक बनाने की सूझी। और जब यमदूत आ पहुँचे तब उन से बचने के लिये सब से विनती करने लगे।

निडर ईश ते वीस के वीस वाहु सो होइ।
गयो गयो कहै सुमति सब भयो कुमति कह कोइ ४८८

जो (ईश ते) ईश्वर से नहीं डरता वह (वीस के) बीसो बिस्वा रावण की तरह उन्मत्त कुचाली और दुखदाई हो जायगा। और जितने समझदार लोग हैं वह सब कहेंगे कि यह अधोगति को चला गया। किन्तु इतना तो अन्य भी कहेंगे कि इस की मति भ्रष्ट हो गई है। बीस का दूसरा अर्थ यह भी है जैसे "वि" पक्षी "ईश" मालिक गरुड़ उन के ईश मालिक विष्णु से जो निडर है।

जो सुनि समुझि अनीति रत जागत रहै जो सोइ।
उपदेसिवो जगाइवो तुलसी उचित न होइ॥ ४८६

तुलसी उचित न होइ ताहि उपदेस जगावन,
जो सोवे दृग खोलि जानि कर कर्म अपावन।
हो पंडित आचार्य पाप मारग में जाता,
कामी हरिपद विमुख कर्म अपने फल पाता॥

वहु मुख वहुरुचि वहु बचन वहु अचार व्योहार।
इन को भलो मनाइवो यह अज्ञान अपार॥ ४९०

जिसकी बुद्धि बहुत ओर धावती है (बहु मुख) अर्थात् स्थिर नहीं, जिसकी इच्छायें बहुत तरह की हैं, (बहुरुचि) जो बड़ा वाचाल है, (बहुबचन) और जो बहुत आचारों में लगा,

रहता है, (बहु अखार) और जिसने बहुत रुपया ब्यौहार में अटका दिया है, (ब्यौहार) उसका भला मानना भारी भूल करना है।

लोगनि भलो मनाइवो, भलो होन की आस।
करत गगन को गेडुवा, सो सठ तुलसीदास ४६१

(गेडुवा) गिंडुरी या इँडुरी।

जो कोई लोगों के भला कहने से अपने भले होने का अनुमान करता है। उस की ऐसी दशा है जैसी की उस मनुष्य की जो आकाश अर्थात् शून्य वस्तुकी गिंडुरी बना कर अपने सिर के बोझ के बड़े पन को मिटाना चाहता है।

अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी कब कान्ह।
तुलसी लोक रिझाइवो करसि कातिवो नान्ह॥ ४६२

(करसि) खींच कर (कातिवो नान्ह) बहुत महीन कातना।

भला महारानी जानकी जिन का नाम लेकर स्त्रियां अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा करती हैं कब अपजस के योग्य थीं। और महाप्रभु श्रीकृष्ण भगवान कब मणि की चोरी करने गए थे। किन्तु इन्हें भी दुष्ट लोगों ने अपयश ही लगा दिया। इस लिये गोस्वामी जी कहते हैं कि संसारी लोगों को प्रसन्न करना वैसे ही वृथा है जैसे कि खींच तान कर महीन सूत को कातना।

तुलसी जो पै गुमान को होतो कछू उपाउ
तौकि जानकिहि जानि जिय परिहरिते रघुराउ ४६३

(गुमान) सन्देह, केवल मन की दौड़ के द्वारा किसी बात को सत्य या झूठ मान लेना गुमान कहलाता है।

गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि लोगों के निर्मूल विश्वाशों के वमन करने का कोई उपाय होता तो श्री राम जी अपनी परम पवित्रा प्राण प्रिया जानकी का परित्याग कभी न करते। निर्मूल होने ही के कारण उन से विश्वाशों का हटाना कठिन है। जब उन का कोई आधार ही नहीं तब वे कैसे हटाये जा सकते हैं।

मांगि मधुकरी खात ते सोवत गोड़ पसारि।
पाय प्रतिष्ठा वढ़ि परी ताते वाढ़ी रारि ॥ ४६४

साधुओं की भिक्षावृत्ति के दो रूप हैं। एक मधुकरी, वह यह है कि साधू झोली लेकर भोजन के समय एक या पांच या सात घरों में जाकर पका हुआ अन्न जो मिल गया उसे किसी जलाशय के किनारे लाकर या उन्हीं के घरों में अथवा अपने स्थान में ले जाकर आनन्द से खाकर भगवत् भजन करना है। दूसरा रूप आश्रमों को स्थापित करना है जैसे कि मठो में महन्त लोग रहते हैं।

गोस्वामी जी कहते हैं कि जो लोग मधुकरी माँग कर खा लेते हैं वह बिना किसी शङ्का के पैर फैला कर सोते हैं। लेकिन जो लोग प्रतिष्ठा और सन्मान पाकर लौकिक ऐश्वर्य को धारण कर लेते हैं उन से अन्य जनों से प्रति दिन वैर बढ़ता है।

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान।
उपजत ही अभिमान भो खोवत मूढ़ अपान ॥ ४६५

(अपमान) अपनी सञ्चित की हुई वस्तु अथवा अपनी योग्यता का वास्तविक ज्ञान।

गोस्वामी जी कहते हैं कि मूर्ख जनता का सन्मान ऐसा ही है जैसा कि भेड़िया धसान। जिधर एक भेड़ी चली उधर ही

देखादेखी सब चली जाती हैं। यह कभी नहीं देखती कि उधर जल है अथवा थल। ऐसे सम्मान से मूढ़ मनुष्य में दुरन्त अभिमान उत्पन्न हो जाता है, और वह अपनी संग्रह की हुई पूँजी को खो बैठता है।

लही आंखि कब आंधरे बांझ पूत केहि ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग वहराइच जाइ ॥४८६

गोस्वामी जी इस दोहे के द्वारा भेड़िया धँसान का एक प्रत्यक्ष उदाहरण देते हैं। लाखों हिन्दू प्रति वर्ष गाज़ी मियां की क़ब्र पर वहराइच जाता है। और बहुत कुछ वहाँ पर चढ़ाव चढ़ता है। चढ़ाव चढ़ाने वाले फ़ीसदी ६५ हिन्दू होते हैं। और हज़ारों आदमी वहाँ पर दस्तावेज़ लिख आते हैं कि यदि हमारी मुराद पूरी होगी तो हम इतना द्रव्य देंगे। स्वाभाविक रूप से बहुतों का कार्य सिद्ध हो जाता है। इस तरह और भी धन चढ़ता है।

गोस्वामी जी तीन बातें पूछते हैं कि भला ऐसा कौन है जिस की आंखें फूट गई थीं और वहराइच जाने से ज्यों की त्यों होगई। तथा वह बाँझ कौन है जिस के गाजी मियाँ की दया से लड़का हुआ। और ऐसा कोढ़ी कहाँ है जो अङ्ग हीन हो गया था और कब्रपर चादर चढ़ाने से फिर अपनी पूर्व की सुन्दर देह पाई। भाव यह कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। फिर भी लोग भेड़िया धँसान करते हुए निर्मूल विश्वाश में आसक्त भ्रष्टाचरणों को पूजते हैं।

बहराइच में सालार मसऊद गाजी (ग़ाज़ी मियाँ) की दरगाह है। यह महमूद ग़ज़नवी का भांजा था। यह वही महमूद ग़ज़नवी है जिसने प्रायः सन् ६२७ याद ईस्वी में भारत वर्ष पर आक्रमण किया था। और बहुत से हिन्दू मन्दिरों को तोड़ा था। जिनमें श्री सोमनाथ जी के मन्दिर की घटना प्रधान थी। सालार

मस्ऊद महमूद के कन्नौज से आगे न बढ़ने पर ग़ाज़ी होने के हौसिले से अवध की ओर कुछ सेना लेकर आया था। वहाँ श्रवस्थी (आधुनिक सहेत महेत जो बलरामपुर के पास है) के जैन राजा सुहृद्देव के हाथ से मारा गया, और एक कुण्ड में उसकी लाश डाल दी गई। औरङ्गज़ेब ने उस कुण्ड को भरवाकर वहीं सालार मसऊद की क़बर बनवा दी। यही ग़ाज़ीमियाँ की दरगाह के नाम से विख्यात है। जो धन दरगाह में चढ़ता है उस का एक अन्श मुसमलनी धर्म के प्रचार में व्यय किया जाता है।

तुलसी निर्भय होत नर सुनियत सुर पुर जाय।
सो गति देखियत अछत तनसु खसम्पति गतिपाय ४९७

गोस्वामी जी कहते हैं कि सुना जाता है कि मनुष्य सुरलोक में जाकर रोग दोष जरा मरण इत्यादि से रहित होने के कारण निडर हो जाता है। किन्तु यह बात तो देह धारियों में विशेष कर मनुष्यों में यहीं देख पड़ती है। जहाँ किसी मनुष्य को सुख और सम्पत्ति प्राप्त हुई तहाँ वह अत्यन्त निरङ्कुश होकर कर्माकर्म धर्माधर्म का विचार छोड़ देता है।

तुलसी तोरत तीर तरु बक हित हंस बिडारि।
विगतनलिन अलि मलिनजल सुरसरिहूँ बढ़िपारि ४९८

(बिडारि) मार कर के

ऊपर के दोहे के भाव लेकर गोस्वामी जी कहते हैं कि श्री गङ्गा जी जैसी श्रेष्ठ नदी का जल भी बाढ़ पाकर निर्भय और निरङ्कुश हो जाता है। और बाढ़ का मैला जल, जिसमें न तो कमल और न भ्रमर ही की शोभा है अशङ्क होकर किनारे के वृक्षों को उखाड़ता बहाता चला चला जाता है। यदि ऐसा करने से किसी का कुछ लाभ भी हुवा तो वह हन्स को मार कर बगले का भला

करने के तुल्य है। भाव यह कि कितना ही श्रेष्ठ पुरुष क्यों न हो यदि यकायक बढ़ जाय तो वह उनमत्त होकर दूसरों का हित अनहित नहीं विचारता।

अधिकारी सब औसरा भलेउ जानिवे मन्द।
सुधा सदन वसु वारहौ चौथी चौथो चन्द॥ ४६६

भले भी अधिकारी अवसर वश मन्द हो जाते हैं जैसे सुधा का आगार चन्द्रमा भी आठवें बारहवें और चौथे स्थान पर तथा भादों सुदी चौथि को मन्द होजाता है।

त्रिविध एक विधि प्रभु अनुग औसर करहिं कुठाट।
सूधे टेढ़े सम विषम सब महँ बारह बाट॥ ५००

राज्य शासन करने की चार विधि, साम, दाम, भेद, और दण्ड है। गोस्वामी जी कहते हैं कि मालिक तीन अर्थात् साम नहीं दाम दण्ड और भेद के द्वारा काम करता है। मगर उस के नौकर केवल दण्ड ही का प्रयोग करते हैं। इतना हीवल्कि वह लोग सूधे टेढ़े सम और विषम शान्त और अशान्त सब को एक ही लकड़ी से हाँकते, हैं, और कष्ट देते हैं।

(२) राजा तो एक ही विधि से सन्ताप देता है जैसे कि परधन लेलेता है। मगर उस के नौकर तीन तरह से दुख देते हैं अर्थात् पर स्त्री और परसन्मान को हरण कर के कायिक क्लेश पहुँचाते हैं।

प्रभु ते प्रभुगन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।
कर ते होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ॥५०१

नौकर को विशेष दुख देनेवाला जानकर राजा प्रजा की देखभाल और रक्षा करता है। हाथ के द्वारा जितना घाव किसी को पहुँचाया जा सकता है वह उतना भयङ्कर और गहरा नहीं होता जितना तलवार का होता है। राजा हाथ है तलवार नौकर है।

व्यालहु ते विकराल वड़ व्याल फेन जिय जान।
वहि के खाये करत है वहि खाये विन प्रान ॥५०२

सर्प से भी ज्यादा विकराल अफीम को समझो, । क्योंकि सर्प के डँसने से आदमी मर जाता है, मगर अफीम के खाये विना ही आदमी विना प्रान का हो जाता है। जब अफीम की आदत पड़ जाती है तव विना उसके विकल विह्वल चेष्टाहीन निर्जीव और शक्तिहीन आदमी हो जाता है, तथा प्रतिदिन मरता सा रहता है।

कारन ते कारज कठिन होइ दोष नहिं मोर।
कुलिश अस्थिते उपल ते लोह कराल कठोर ५०३

यह दोहा पश्चात्ताप करते हुए भरत जी ने अपने सम्बन्ध में कहा है कि कारण से कार्य कठिन होता है। जैसे हड्डी से इन्द्र वज्र वना है परन्तु वह हड्डी से अत्यन्त कठोर है। पत्थर से लोहा निकलता है, उनकी पारस्परिक कठोरता तो स्पष्ट ही है, मगर लोहा इतना कड़ा होता है कि अन्य चीजें काटता हुवा कड़े पत्थर को भी वही काटता है। इसी भांति भरत जी कहते हैं कि मेरा जन्म कठोर माता से हुवा है इसी लिए मै उससे भी कठोर निकला।

काल विलोकत ईस-रुख भानु काल-अनुहारि।
रविहि राउ, राजहि प्रजा, वुध व्यवहरहिं विचारि ५०४

काल ईश्वर के आश्रय है। सूर्य काल के अनुसार चलता है, जैसे जाड़े में मन्द गर्मी में प्रचण्ड। राजा सूर्य के अनुकूल व्यवहार करता है, जैसा दिन देखा वैसा किया।

और प्रजा जैसी राजा की इच्छा होती है वैसा आचरण करती है। किन्तु बुद्धिमान लोग अपने विचारानुकूल काम करते हैं, अर्थात् वे लोग किसी बाह्य वस्तु से प्रेरित होकर अपने आचरण नहीं बदलते सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते।

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग।
कहिय कुवास सुवास तिमि काल महीस प्रसंग॥ ५०५

जिस तरह मल रहित पवित्र वायु अच्छा तथा बुरा संग पाकर सुगन्धित अथवा दुर्गन्धित कहलाती है। इसी तरह काल भी अच्छा तथा बुरा राजा पाकर सु समय या कुसमय कहलाता है।

भले हु चलत पथ पोच भय नृप-नियोग नय नेम।
सुतिय सुभूपति भूषियत लोह-सँवारति हेम॥ ५०६

जो राजा नियम और अपनी आज्ञाओं का पालन न्याय पूर्वक करता है, अर्थात् जो कर्मानुसार सब को दण्ड देता है उस के राज्य मे भले लोग भी राज्यापमान के भय से बिल्कुल ठीक मार्ग पर चलते हैं। ऐसा करने से उन की शोभा और भी बढ़ जाती है। जैसे सोना सर्वोत्तम धातु होने पर भी लोह यन्त्र से दण्डित होकर आभूषण बन जाता है और सुन्दरी नारी तथा तेजस्वी राजा के तेज और सौंदर्य को अधिक कर देता है। यहाँ लोहा राजा के दण्ड का भय है सोना भले लोगों की मनोवृत्ति है। आभूषण उन लोगों के पवित्र शुभाचरण हैं।

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग वस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल॥ ५०७

इस दोहे से गोस्वामी जी तीन उदाहरणों के द्वारा अच्छे राजा के रूप को दिखलाते हैं। पहिला माली, माली का स्वभाव है कि

यह मुरझाये हुए निर्बल तथा सुकुमार वृक्ष की रक्षा छाया जल इत्यादि से करता है। और जो वृक्ष बहुत बढ़ कर दूसरों की स्वतन्त्रता मे बाधा डालते हैं उन की डालों को छांट देता है। दूसरा सूर्य, सूर्य के तीन काम हैं पहिले जहाँ जलाधिक्य है वहाँ से जल लेकर जहाँ जलाभाव है वहाँ पहुँचाना। दूसरे अपनी किरणों द्वारा वृक्षो को प्राणरूप गर्मी पहुँचाना। तीसरे अपनी आकर्षण शक्ति से वनस्पतियों को बढ़ाना। तीसरा किसान, किसान के सम्बन्ध मे तो गोस्वामी जी पहिले ही कह चुके हैं कि "कृषी निरावहिं चतुर किसाना" उसका काम यह है कि जो नीच घास इत्यादि अन्न के पौधों को दबा लेना चाहते हैं उन्हें वह जड़ से नाश कर देता है।

माली सूर्य और किसान के तुल्य नीति में निपुण राजा कलिकाल में प्रजा के भाग्य से कभी ही कभी होंगे, सदा नहीं।

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सम होइ ॥ ५०८

गोस्वामी जी कहते हैं कि अच्छे राजा सूर्य के समान होते हैं। जैसे सूर्य को जल बरसते सब कोई देखते हैं और प्रसन्न होते हैं, परन्तु जल खींचने के समय कोई नहीं जानते। राजा को भी धन देते हुए सब देखते हैं, खुश होते हैं मगर कर के द्वारा खींचते हुए कोई नहीं समझते कि इतना धन राजा को देने के लिये कहां मिलता है।

सुधा सुनाज, कुनाज पल, आम असन सम जानि।
सु प्रभु प्रजा हित लेहि कर सामादिक अनुमानि ५०९

सुधा, दूध रस आदि अति सुन्दर भोग की सामिग्री अच्छा नाज, मोटा नाज, मांस (पल) फल (आम) अन्य भोग के पदार्थ

(प्रसन्न) इन सब को बराबर जान कर अर्थात् यह मान कर कि उच्चाति उच्च और नीचाति नीच पदार्थ सब को राज काज के लिये कर में देना चाहिये। अच्छा राजा सामाविक अनुमान कर के प्रजा के हित के लिये जैसे साम यानी मेल से मिले तो मिला कर ले। यदि प्रजा टूट गई हो, तो उसे धनादि की सहायता दे कर ले। और यदि प्रजा धनी होकर भी कर न दे तो समझा कर ले। यदि समझाने पर भी न माने तो फिर दण्ड के द्वारा वसूल करे। भाव यह कि कर लेने में राजा इस बात को देखता रहे कि किसी एक जाति या किसी एक व्यवसाय पर वाजिब से ज्यादा कर का भार न पड़े, सब पर सम भाव रहे। और जो कर लिया वह उतना ही जितने से प्रजा का हित चारुरूप से हो जाय।

पाके, पकये विटप दल उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं, नरेस त्यों करि विचार मन वीच॥ ५१०

पेड़ से मनुष्य तीन रूप में भोग प्राप्त कर सकता है। पहिले पेड़ में लगे हुये पक्के फलों को लेकर जिन की आवश्यकता वृक्षों को नहीं वलिक जिन्हें गिराने को तैयार हैं। दूसरे पकये फल, जो कि कच्चे फल वृक्ष से तोड़ कर पका लिये जाते हैं। तीसरे उसकी डाली और पत्ते के समेत फल।

गोस्वामी जी कहते हैं कि जैसे एक उत्तम मनुष्य वृक्ष से केवल पक्के फल ले लेता है लेकिन मध्यम मनुष्य कच्चे ही फलों को तोड़ कर पका लेता है। मगर नीच मनुष्य फल पत्ते डाली समेत काट लेता है। वैसे ही उत्तम मध्यम नीच राजा का व्यौहार प्रजा के साथ कर लेने में होता है। उत्तम तो उतना कर लेता है जितना प्रसन्नता से प्रजा दे सकती है। मध्यम प्रजा को अप्रसन्न कर के कर लेता है, अर्थात् जो कर प्रजा कष्ट के साथ दे सकती है। और नीच राजा प्रजा की आर्थिक दशा बिगाड़ कर के कर लेता है

रीझि खीझि गुरु देत सिख सखा सु साहिब साधु।
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु॥ ५११

गोस्वामी जी कहते हैं कि उपरोक्त दोहे में कही हुई बात केवल राजा और प्रजा के सम्बन्ध में ही ठीक नही बल्कि जगत में जितने सम्बन्ध एक के दूसरे जीवधारियों से पड़ते हैं उन सब मे इसी भाँति के व्यौहार होना चाहिये। गुरु अपने शिष्य को शिक्षा देता है, सखा अपने मित्र को यही सलाह देता है और भला मालिक अपने नौकर को भी यही आज्ञा देता है तथा जो लोग साधुजनों के पास जाते हैं उन्हें भी साधु यही सिखलाता है कि वृक्ष से फल तोड़ के खा लेना भला है मगर वृक्ष को जड़ से नाश करना उचित नहीं। इस से महा पाप लगता है। उपरोक्त जन केवल (रीझि) समझा कर ही नहीं बतलाते हैं अपितु इस के विपरीत यदि कोई क्रिया करता है तो (खीझि) अप्रसन्न होते हैं।

धरनि धेनु चारितु चरत, प्रजा सुवच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागि है किये गोड़ की गाइ॥ ५१२

(चारित) सुचरित्र रूप चारा (गोड़ की) पैर वाली यानी वह गऊ जिसका पैर दोहने के पहिले लोग बाँध देते हैं।

पृथ्वी गौ है राजा का सुचरित्र उसका चारा है। जैसे रामायण मे प्रथ्वी वाक्य है "गिरि सर सिन्धु भार नहिं मोही, जस मोहिं गरू एक पर द्रोही"। इस चारे से सन्तुष्ट हो कर पृथ्वी आह्लाद पूर्वक सब भाँति के अन्नों की वृद्धि करती है। और प्रजा रूप बछड़े को देती है परन्तु उस को बांध कर उस से जबर्दस्ती अन्नों के लेने से कुछ हाथ नहीं लगेगा।

अमेरिका के लोगोंने विज्ञानसे भली भांति निश्चय किया है कि गौ को जितना ही सुख दिया जाय उतना ही उसका दूध बढ़ता और निर्दोष होता है। यदि दूध देने के समय गऊ का मन बिगाड़ दिया जाय तो दूध कम और रोग जनक होता है।

चढ़े वधूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक समाज।
करम धरम सुख सम्पदा त्यों जानिवे कुराज॥ ५१३

(वधूरे) बौंड़र (चङ्ग) पतङ्ग।

जैसे पतङ्ग बौंडर में चढ़ कर अनस्थिर और छिन्न भिन्न हो जाती है। और जैसे ज्ञान शोक समाज में पड़ कर खिन्न हो जाता है "रहे कहावत परम विरागी, सिय मुख निरखि धीरता भागी"। इसी तरह कर्म धर्म सुख और सम्पदा आदि बुरा राज्य पाकर क्षीण हो जाती हैं।

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूर।
मरहिंकुन्टपकरिकरिकुनयसों कुचालिभवभूरि ॥५१४

गोस्वामी जी खजूर के वृक्ष से बुरे राजा की तुलना करते हैं। इस वृक्ष की पेड़ी ऐसी खर खरी होती है कि उसका सहारा लेकर न कोई खड़ा हो सकता न बैठ सकता है। उसमें छाया नहीं और जो उस की डालियां ऊपर से गिरतीं हैं वे काँटे से परिपूर्ण रहती हैं। उस की ताड़ी खाकर मनुष्य भ्रष्ट और कुबुद्धि हो जाता है। जैसे खजूर का वृक्ष अपनी शाखाओं से कण्टक मयी पृथ्वी कर के आप भी नाश हो जाता है इसी तरह बुरे राजा अपनी कुटिल नीति से पृथ्वी को कुचाल यानी असत् आचरणों से परिपूर्ण कर के स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल॥ ५१५

काल अच्छा बुरा सब कराता है। जो काल सुसमय बन कर सतयुग लाता है वही कुकाल बन कर कलियुग को बुलाता है। गोस्वामीजी कहते हैं कि काल तोप चलाने वाला है और पृथ्वी तोप (तुपक) तथा बरूद (दारू) राजा की अनीत है। पाप रूप पलीता तोप में लगाने के लिये दुष्ट सलाह देने वाला गुरु है। राजा गोला है। तात्पर्य यह कि बुरे राजा केवल बन्दूक चला कर ही अपना शाशन करते हैं। इस का कारण यह कि वे बुरे लोगों की सलाह लेकर पापमय अनीति का व्यौहार करते हैं।

भूमि रुचिर रावन सभा, अंगद पद महिपाल।
धरम राम, नय सीय बल अचल होत शुभकाल॥ ५१६

इस दोहे से गोस्वामी जी अच्छे राजा की परिस्थिति बताते हैं। अच्छे राजा के लिये पृथ्वी ऐसी सुन्दर और शोभायमान है जैसे रावण की सभा राम स्वरूप धर्म तथा सीतारूप बल पाकर उस राजा के राज्य मे अच्छा समय वैसे ही अटल हो जाता है जैसे रावण की सभा में अङ्गद का पैर।

प्रीत रामपद, नीतिरत, धरम प्रतीत सुभाइ।
प्रभुहिं न प्रभुता परिहरै कबहुँ वचन मन काइ॥ ५१७

जिस को श्रीराम जी के चरणारविन्दु मे प्रीति और नीति मे रुचि है, और जिस के मन की स्वाभाविक वृत्ति धर्म की ओर लगी है, ऐसे ऐश्वर्यमान के मन वाणी और कर्मो से प्रभुता कभी पृथक् नहीं होती।

कर के कर, मन के मनहि, बचन बचन गुन जानि।
भूप हि भूलि न परि हरै विजय विभूति सयानि ५१८

इस बात को जान कर कि हाथ का गुण कर्म करना है, और मन का गुण मनन करना है, वाक्य का गुण चातुर्य प्रकट करना है। राजा को भूल कर भी हाथ का गुण विजय और मन का गुण सदसद् विचार और वाणी की चतुरता को कभी नहीं छोड़ता सदा ही होशियार बना रहता है।

गोली बान सुमन्त्र सर समुझि उलटि मन देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु वचन विचारि विसेखु॥ ५१९

गोली केवल सीधे मारती है, वाण सीधे और टेढ़े दोनों तरह मारता है, इस लिये उस के मारने की शक्ति गोली से अधिक है। तथा सुमन्त्रसर अर्थात् मन्त्र से प्रेरित शर इस की शक्ति अत्यन्त अधिक है।

गोस्वामी जी कहते हैं कि गोली वान और सुमन्तसर इन को उलट दो तो हुआ सुमन्तसर, वान, और गोली। इन्हें क्रमशः लेने से हुआ उत्तम राजा के वचन सुमन्तसर मध्यम के वान और नीच के गोली हैं। उन्हीं के द्वारा राजा के उत्तम, मध्यम, और नीच होने का विशेष कर के विचार होता है।

(सुमन्त्र वचन) पवित्र, सच्चा, दूसरे का हितकारी और जिसमें दूसरे के हृदय मे प्रवेश करने की प्रवल शक्ति है। मध्यम सामान्य रूप से भला और सुनने मे भी अच्छा, नीच वचन अपवित्र मिथ्या मिश्रित पर अपकारी और गोली के समान लगने वाला है।

सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु नाउ।
बूड़तलखि, पग उगतलखि, चपरिचहूँ दिसिधाउ ५२०

होशियार दुश्मन अपने शत्रु से इस भाँति का व्यौहार करता है, जैसे जल नाव से जब तक नाव दृढ़ है तब तक जल उसे अपने शीश पर रखता है। इसी भांति बुद्धिमान रिपु जब तक अपने बरी को बलिस्ठ देखता है, तब तक उस का बाहरी रूप से सत्कार करता है। किन्तु जब नाव में छिद्र हो जाता है और डूबने लगती है तब जल चारों ओर से आक्रमण कर के उसे डुबो देता है। इसी तरह जब शत्रु देखता है कि मेरे शत्रु के पैर उखड़ गये तब जल्दीसे उसे चारों ओर से मार कर नाश कर देता है।

रैयत, राज समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु।
शांत,सुसचिवनसौंपिसुख विलसहिनितनर,नाहु ५२१

प्रजा, राज समाज, राज कर्मचारी, क़िला, राजा का तन, धन धर्म, और (सुबाहु) सेना यह सब शान्त मंत्री को सौंप कर राजा सुख से विलास करता है। राज्य शाशन का सब से उपयोगी और उत्तम धर्म यह है कि राजा प्रत्येक कर्मचारी को योग्यता के अनुसार कार्य सौंपे। ऐसा करने से राज्य का कार्य भली भांति चलेगा और राजा अपना जीवन सुख से बिता सकेगा।

मुखिया मुख सों चाहिये खान पान सों एक।
पालै पोषै सकल अँग तुलसी सहित विवेक॥ ५२२

तुलसी सहित विवेक पालता सब अँगों को,
खा पीकर मुख सभी खिलाता सब रँगो को।
नाड़िन देता रुधिर ज्योति नयनों को देता,
कर लेकर भल भूप सभी की सुधि है लेता॥

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ ५२३

सुकवि सराहहिं सोइ जिन्हें अति सेवा प्यारी,
सोइ लहत सब धर्म प्रकट तिन की उजियारी ।
करहिं कर्म कर, चलत पैर जाग्रत रहें नैना,
चाहत फल कछु नहीं, तोषि मुख, ते सुख ऐन ॥

मंत्री, गुरु अरु वैद जो प्रिय बोलहिं भय आस,
राज, धरम, तन तीनि कर होइ वेग ही नास ॥ ५२४

जो मन्त्री, गुरु, और वैद्य किसी भय तथा आशा से प्रिय यानी मुँह देख के बात करते हैं वे राजा को शरीर को और धर्म को नाश कर देते हैं । जैसे मंत्री से राजा ने प्रजा पीड़न की सलाह मांगी और उसने राजा को अभिलषित सलाह दे दी तो राजा अवश्य ही अत्याचार करेगा पीछे प्रजा के शाप से मरेगा तथा राज्य का भी विनाश अवश्यम्भावी हो गया । शिष्य को पुंश्चली गमनादि से गुरु ने यदि मना न किया तो शिष्य स्वधर्म से च्युत होगा । रोगी ने रोग के प्रतिकूल भक्ष्य मांगा वैद्य ने दे दिया तो रोगी का विनाश जरूर होगा ।

रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज,
प्रभु कर सेन पदादिका, बालक राज समाज ॥ ५२५

इस दोहे के अर्थ दो भाव के से होसकते हैं पहिले भाव से बालक राज समाज अर्थात् अज्ञानी राजा के समाज का वर्णन है कि रसना (जीभ) ही जिसका मंत्री है अर्थात् जितनी सलाह

पच देता है केवल अपने स्वाद ही के लिये। और दाँत जिसके नौकर चाकर हैं अर्थात् दूसरों को काटना या चबाना ही उनका काम है और जिन का परम कर्तव्य केवल अपनी ही तुष्टि और पुष्टि है। जिनका मालिक हाथ है अर्थात् जिसके वास्ते कोई काम कर डालना असम्भव नहीं। जिस राजा की सेना पैर हैं जिसका काम केवल राजा के शरीर की रक्षा करना है।

(२) राज समाज को बालक रूप लेने से यानी इस भाव से कि जो राजा अपनी प्रजा को बालक तुल्य मानता है निम्न लिखित होगा।

ऐसे राजा के मन्त्री रसना रूप हैं, अर्थात् जो प्रजा के लिए हितकर और सुखकर है वही सलाह देते हैं। उसके नौकर चाकर दसन रूप हैं। दांतों का काम केवल यह है कि भोजन को काट कूटकर ऐसा तैयार कर देना कि पेट उसे सुखपूर्वक पचा सके अर्थात् प्रजा के सुख के ही लिए काम करना। और जो अपना परम कर्तव्य यह मानता है कि उसकी प्रजा सन्तुष्ट और बलवान रहे। और जिसकी सेना हांथ के तुल्य है जैसे कि हांथ शरीर का पालक पोषक और रक्षक है वही काम उसकी सेना का है।

लकड़ी डो-आ करछुली सरस काज अनुहारि,
सु प्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा विचारि॥५२६

अच्छा मालिक सेवक और सखा को अच्छी तरह से विचार करके अपने साथ रखता अथवा उसका परित्याग करता है। जैसे अग्नि पर चढ़ाई हुई वस्तु के चलाने के लिए रस के अनुकूल बड़ाई या छोटाई के हिसाब से लकड़ी या डोई (हलवाई जिससे चासनी उलोचते या बतासा बनाते हैं) या करछुली का प्रयोग किया जाता है, और काम लेने के पीछे उसे अलग कर देते या फेंक देते हैं।

प्रभु समीप छोटे वड़े निवल होत वलवान
तुलसी प्रकट विलोकिये कर अंगुली अनुमान ॥ ५२७

मनुष्य देह में सब का मालिक शिर है। और जीवात्मा का वास हृदय से लेकर मस्तक तक रहता है। गोस्वामी जी कहते हैं कि पैर की अँगुली तथा हाथ की अँगुली को देखो पैर की अँगुलियाँ छोटी और निर्बल हैं परन्तु वही हाथ की लम्बी और सबल हैं। कारण इसका यह है कि शरीर का राजा पैर की अँगुलियों से दूर और हाथ की अँगुलियों के समीप है। भाव यह कि राज्याधिकारी जितना ही राजा का निकटवर्ती होजाता है उतना ही उसका तेज और बल बढ़ जाता है। मुमुक्षु जन की भी भगवत् की समीपता होने पर यही दशा होती है।

साहब ते सेवक वड़ो जो निज धरम सुजान।
राम बांधि उतरे उदधि लांघि गये हनुमान ॥ ५२८

मालिक से सेवक विशेष वली होता है, यदि वह अपने काम में कुशल हो। देखो श्री हनुमान जी समुद्र को लांघ गये किन्तु महाराज को स्वयं समुद्र पार करने के लिए सेतुवन्धन में वहुत वड़ा प्रवन्ध करना पड़ा।

तुलसी भल वरतरु बढ़त निज मूलहि अनुकूल।
सवहिभांतिसवकहँसुखददलनि फलनिविनुफूल ५२६

वरगदका वृक्ष स्वयं वढ़ता और अपनी वृद्धिके अनुकूल जड़ों को भी वढ़ाता जाता है। सब तरह से छाया पत्ती लकड़ी दूध और फलादि के द्वारा सब को सुखप्रद है। इतना होने पर भी वह फूलता नहीं अर्थात् अभिमान नहीं करता।

सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल, सुसाँइ महीप ।
तुलसी जे अभिमान बिनु ते त्रिभुवन के दीप ५३०

इस दोहे में त्रिभुवन के दीप स्वरूप राजा का वर्णन है । ऐसा राजा जो धनवान, गुणवान, धर्मवान, तथा सेवकादि से संयुक्त और सेना समेत एवं अच्छा मालिक होता हुवा भी जो अभिमान हीन है वह त्रिभुवन का दीप है ।

तुलसी निज करतूत बिन मुकत जात जब कोइ ।
गयो अजामिल लोक हरि नाम सक्यौ नहिं धोइ ५३१

नाम सक्यौ नहिं धोइ अजामिल काम कुचाली,
नीच नारि का सङ्ग कियो कुलमहिमा घाली ।
गयो विष्णु के धाम विना जप योग विरति के,
जाहिं विना करतूति सबै विन लहेउ सुमति के ॥

बड़ो गहे ते होत बड़ ज्यों बावन कर दंड ।
श्री प्रभु के सँग सों बढ़ो गयो अखिल ब्रम्हंड ५३२

गयो अखिल ब्रम्हंड दंड श्री हरि बामन को,
कर पद तनु अनुहरत बढ़यो सो तृण कानन को ।
ब्रम्हकमंडल बीच धर्यो जल छुइ सोइ अंगा,
भयो त्रिपथगामिनि पुनीत जगतारिणि गंगा ॥

तुलसी दान जो देत हैं जल में हांथ उठाय ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं दाता नरकै जाय ॥ ५३३ ॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि जो आपुगी हाथ उठाकर जल में दान देते हैं वे नर्क जाते हैं और लेने वाला मर जाता है। जैसे बंसी में अन्न लगाकर और उसे जल में फेंक कर (जिसे खाकर मछली मरजाती है) पुरुष नर्क जाता है। इसी तरह जो कु पात्र को दान देते हैं वे नर्क पाते और लेनेवाले भी दुराचार करके अधोगति को जाते हैं। कवि कालिदास के पूछने पर एक विदुषी धीवर की पुत्री ने कहा था।

जलमध्ये क्षिपेद् दानं प्रतिग्राही न जीवति।
दाता च नरकं याति तस्याहं कुलबालिका ॥

आनन छोड़ो साथ जब तादिन हितू न कोय।
तुलसी अंबुज अंबु विनु तरनि तासु रिपु होय ५३४

तरनि तासु रिपु होय जियत जो तेहि के देखे,
जलविन पंकज जियहि कहहु कस केहिके लेखे।
अन्नमयी यह देह प्राणतन रहि हैं तौ लौं,
खाव पियव सुखदेव त्यागि नहिं दै हैं जौ लौं ॥

उरवी परि कुलहीन होइ ऊपर कला प्रधान।
तुलसी देखु कलाप गति साधन धन पहिचान ५३५

(उरबी परि) पृथ्वी में पड़े (कलाप) पाखंड।

जो साधु पृथ्वी पर पड़े कायक्लेश कर रहे हैं किन्तु उनके कुल का कुछ पता नहीं है। बाहरी वर्ताव में बड़े कुशल हैं उनकी पाखंडगति के पहिचानने के लिए गोस्वामी जी कहते हैं कि इस बात को देखो कि उनके पास साधन धन कितना है।

भाव यह कि जिन मनुष्यों के कुल धर्म का कुछ पता नहीं और उनका बाहरी तप आचार इत्यादि बहुत भला भी हो तो भी इतने ही पर उनपर विश्वाश करना उचित नहीं।

तुलसी संगति पोच की सुजन होति भय दानि।
जो हरि रूप सु ताहिते कीन्हों गो हरि आनि ५३६

गोस्वामी जी कहते हैं कि नीच की संगति सुजन को भय देने वाली होती है। देखो जो हरि अत्यन्त सुन्दर स्वरूप से दूसरे का मन हर लेते थे वे (गोहरि) शूकर बने ।

तात्पर्य यह कि हिरण्याक्ष पृथ्वीको पातालमे उठा ले गया था भगवान ने बाराह रूप धारण करके उस दैत्य को मारा और पृथ्वी का उद्धार किया।

कलिकुचालि शुभ मति हरनि, सरलै दंडै चक्र।
तुलसी यह निश्चय भई, बाढ़ी लेत न वक्र-५३७

कुचाला कलिकाल शुभमति को हरने वाला है क्योंकि देखो चक्र नाम राजा या सैन्य सीधे को दण्ड देती है। इससे यह निश्चय हुवा कि टेढ़े को कैसा भी ऐश्वर्यमान् कोई क्यों न हो कभी नहीं छू सकता।

गोखग खे खग वारि खग, तीनों मांह विसेक।
तुलसी पीवै फिरि चलै, रहै फिरै सँग एक ५३८

(गोखग) वह पक्षी जो विशेष कर अपना जोवन पृथ्वी पर बिताते हैं और जिनमें उड़ने की शक्ति थोड़ी है (खेखग) नभ के पक्षी (बारिखग) जलके पक्षी। यह तोनों तरह के पक्षियों की यही रीति है कि अपने २ जाति के पक्षी एक ही साथ जल

पीते चलते फिरते और रहते हैं। भाव यह कि जिन जीवोंकी जैसी वृत्ति होती है वे अपने अनुसार ही वृत्तिवाले जीवोंके साथ अपना जीवन बिताते हैं।

साधन समय सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनों समय सम, ते महि मंगल मूल ५३९

गोस्वामी जी कहते हैं कि जो जीव साधन समय यानी गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते और सिद्धि को प्राप्त करके अर्थात् उस मार्ग में स्थित होकर तत्पश्चात् उन दोनों के मूल श्रीराम जी की कृपा का अनुभव करके इन तीनों समय में समभाव पर रहता है अर्थात् व्यग्रचित्त नहीं होता उसका जीवन जगत में मङ्गल मूल है।

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लह्यो लाभ तिन जन्मकर, नतरु जन्म जग जाय ५४०

जो लोग माता पिता गुरु और मालिक की शिक्षा को स्वीकार करके उसके अनुसार अच्छी भावना अर्थात् दृढ़ बिश्वास और प्रीति के साथ काम करते हैं उनको जन्म लेने का लाभ हुआ है नहीं तो उनका जन्म वृथा है।

अनुचित उचित विचार तजि, जो पालहिं पितुबैन।
ते भाजन सुख सुजसके, बसहिं अमरपति ऐन ५४१

बसहि अमरपति ऐन सुजस सुखके ते भाजन,
अनुचित उचित विसारि पितृबचन जे मानत जन।
भीष्म मानि पितु बचन नारि क्रीड़ा कहँ त्यागी,
भये पितामह जगत सूर विजयी बड़ भागी॥

सोरठा।

सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभ गति लहै।
जसगावत श्रुतिचारि, अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय ५४२

स्वाभाविक रूप से स्त्री अपवित्र है परन्तु अपने पति की सेवा करते हुए वह शुभ गति को प्राप्त होती है। गोस्वामी जी कहते हैं कि देखो वृन्दा अपने पति जालन्धर की पतिव्रता के भाव से सेवा करती हुई तुलसीरूप धारण करके विष्णु भगवान को परम प्रिया हुई।

शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय, तिन्हैं विलोकत हानि ५४३

जो लोग अपने शरण में आये हुये की रक्षा नहीं करते यह विचारके कि उसका हित करनेमें अपनी हानि होगी ऐसे पुरुष नामर्द और पाप से पूर्ण हैं। जिनका मुख देखने से भी हानि है।

तुलसी तृन जलकूल को निरधन निपट निकाज।
जो राखै के संग चलै बांह गहे की लाज ५४४

जिस तिन को जलने बहाकर किनारे छोड़ दिया है उसके समान दरिद्री और बिलकुल निकम्मा कौन हो सकता है चाहे जल उसे किनारे रहने दे या हाथ पकड़ने की लाज रखकर अपने साथ ले जाय दोनों दशाओं में वह बिलकुल बिवश है।

रामायन अनुहरत सिष, जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठकी को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ५४५

कलि कुचाल पर प्रीति सभी ने मन ठानी है,
भाई मारै भाइ य कैसी हैरानी है ।
महभारत के प्रथम काहु हरि सीख न मानी,
तुलसी कहा को मान महा मूरुख अज्ञानी ॥

पात पात को सींचिबो, वरी वरी को लोन ।
तुलसी खोटे चतुरजन, कलि डहके को कौन ५४६

जो पात पात को सींचते यानी भगवत को मूल के भूत प्रेतादिक पूजते हैं और जो वरी वरी में अर्थात् एक एक वरी में नमक छोड़ते यानी बहुतों के आश्रित होके रहते हैं एक के नहीं इस तरह जिनकी चतुरता खोटी है उनको छोड़के बतावो कलियुग किसे ठगे ।

प्रीति सगाई सकल गुन, बनिज उपाय अनेक ।
कलबल छल कलिमल मलिन दहकत एकहिएक ५४७

गोस्वामीजी कहते हैं कि इस मलीन कलिकालमें कोई प्रीति दिखाके, कोई नाता जता के, कोई स्वगुण प्रकाश करके, कोई व्यापार के सहारे से, कोई अनेकों यत्न से, कोई भाँति २ कलायें प्रकट करके एक दूसरे को लूट रहा है ।

दम्भ सहित कलिधरम सब, छल समेत व्योहार ।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ५४८

कलिकाल में जितना धर्म है सब में पाखण्ड है । समस्त व्योहार छल मिश्रित है । सारा सनेह स्वार्थ के सहित है । और यावत् आचार अपनी इच्छा के अनुकूल यानी मनमाना है ।

चोर चतुर बटपार भट, प्रभु प्रिय भरुवा भण्ड ।
सब भक्षक परमारथी, कलि सुपन्थ पाखण्ड ५४९

कलियुग में चोर चतुर कहलायेंगे। डाकू वीर बोले जायेंगे। भ्रम में डालने वाले अथवा अपनी औरत दूसरे के पास भेजने वाले वा वेश्यागामी बदचलन तथा "भण्ड" बुरी बुरी बातें कहने वाले राजा को प्रिय होंगे। और पाखण्ड करना यही सुपन्थ कहलायेगा। अथवा सुपन्थ यानी अच्छा मार्ग बतानेवाले पाखण्डी कहलायेंगे। और सब कुछ भक्षाभक्ष्य खानेवाले परमार्थी कहे जायेंगे।

अशुभ वेष भूषन धरे भच्छा भच्छ जे खाहिं ।
ते जोगी ते सिद्धनर पूज्य ते कलियुग माहिं ५५०

कलियुग में जो मनुष्य अशास्त्र वेश भूषण धारण किये हैं। और जो भक्ष्याभक्ष्य का भक्षण करते हैं। वही योगी है। वही सिद्ध हैं। वही पूज्य हैं।

सोरठा-जे अपकारी चार तिनकर गौरव मान तेइ।
मनबच कर्म लवार ते वकता कलिकालमहँ ॥५५१

कलि में जो चारों और दूसरे का अपकार ही करते हैं उन्हीं का गौरव है और उन्हीं का मान है। मन वाणी और कर्म से जो झूंठे हैं वही वक्ता (व्याख्यता) हैं।

दोहा-ब्रह्मज्ञान विनु नारिनर करहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि ते मोहवस करहिं विप्र गुरुघात५५२

करहिं विप्र गुरु घात तनिक संदेह न लावहिं,
कौड़ी हित मतिमन्द धर्म, परलोक नसावहिं ।
पड़े मोह के फन्द नारि नर तत्व न जानहिं,
ब्रह्मज्ञान की बात तदपि दिन रैन बखानहिं ॥

बादहिं शूद्र द्विजन सन हम तुमते कछु घाटि ।
जानै ब्रह्म सु विप्रवर आंखि दिखावहिं डाटि ५५३

आंखि दिखावहिं डाटि शूद्र, ब्राह्मण सों कहकर,
सब हो सकता विप्र ब्रम्ह विज्ञानहिं लहकर ।
हम तुम से कम नहीं ब्रम्ह हम भी लखते हैं,
वेदों को हम पढ़े जनेऊ भी रखते हैं ॥

साखी, शब्दी, दोहरा, कहि कहनी, उपखान ।
भगति निरूपत भगत कलि निन्दहिं वेद पुरान ५५४

कलिकाल में भक्त साखी यानी अपनी बात कहकर किसी दूसरे से हां में हां मिलवाकर, "शब्दी" अर्थात् केवल शब्द ही कहके यानी मनगढ़न्त करके कहानी और उपाख्यानों से भक्ति का निरूपण करते तथा वेद पुराण की निन्दा करते हैं ।

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संयुत विरति विवेक ।
तेहि परि हरे मोहवस कल्पहिं पंथ अनेक ॥५५५

शास्त्र सिद्ध, विरति, विवेक संयुक्त, जो है हरिभक्ति का मार्ग उसको त्याग के लोग विमोह वस अनेकों मार्गों की कल्पनाकरते हैं ।

सकल धरम विपरीति कलि, कल्पित कोटि कुपन्थ ।
पुन्य पराइ पहार वन, दुरे पुरान श्रुति ग्रन्थ ५५६

जबासे कलियुग मे सकल धर्म बिपरीत करोड़ों पन्थ कल्पित हुए तब से पुण्य पर्वत और जङ्गलों में भाग गया ' पुराण, श्रुति, तथा सद्ग्रन्थ सब छिप गये ।

धातुवाद निरुपाधिवर, सदगुरु लाभ सुमीत ।
देव दरस कलिकाल महँ, पोथिन दुरे सुभीत ५५७

गोस्वामी जी कहते हैं कि कलिकाल पाकर पांच वस्तुवें पोथियों मे छिप गई अर्थात् सब भाँति उनका वर्णन पुस्तकों मे होने पर भी वे यथावत् फलप्रदा नहीं।

प्रथम धातुवों का परिवर्तन। दूसरे विना क्लेश का बरदान, यानी ऐसे बरकी प्राप्ति जिसके साथ कोई कष्ट न लगा हो। तीसरे सद्गुरु की प्राप्ति। चौथे अच्छा मित्र। पांचवें देव दर्शन।

तात्पर्य यह कि पांचो वस्तुवें पुस्तकों मे हैं किन्तु उनके जानने की यथार्थ युक्ति नहीं मिलती।

सूर सदनि तीरथ पुरनि, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ५५८

"सूरसदन" देवमन्दिर "तीर्थ पुरनि" काशी मथुरा इत्यादि तीर्थ पुरी "मवासे" किला, कोट या गढ़।

अत्यन्त कुचाली और बुरे वेशवाला कलिकाल अपनी सब कुसमाज के साथ देव मन्दिरों तथा पुण्यक्षेत्रों मे राज्य कर रहा है। जैसे कोई राजा दुश्मनके क़िले को जीतकर स्वतन्त्र होजाता है।

गोंड गवांर नृपाल महि यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल ५५९

केवल दण्ड कराल धारि नृप शासन करहीं,
साम दाम अरु भेद नीति पथ नहिं अनुसरहीं।
लघु भूपति हैं गोंड अनपढ़े निपट गवांरा,
यवन भये सम्राट धर्म का कहां गुज़ारा॥

फोरहि सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़क पहार।
कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस उहार ५६०

हर एक घर में जगह २ हजारों अन्धे कुपूत और कायर ऐसे भरेहुए हैं जो केवल बलवानसे पार न पाकर निर्बल कोही मारते हैं।

प्रगट चारि पथ धर्म्मके, कलि महँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे, दान करै कल्यान ॥५६१

धर्म के चार चरण हैं सत्य, शौच, दया, दान, परन्तु कलिकाल में केवल दान प्रधान है परन्तु दान तीन प्रकार का है सात्विक, राजसिक, तामसिक। कलिकाल में दान किसी भांति किया जाय तब भी वह कल्याणकारी है।

कलियुग समयुग आन नहि, जो नर कर बिस्वास।
गाइ रामगुन गन विमल, भव विन तरहिं प्रयास ५६२

भव बिन तरहिं प्रयास गाइ गुण ग्राम राम के,
सुन्दर परम उदार रूप गुण कृपाधाम के।
यज्ञ न कायकलेश कली कर बड़ गुन भाई,
तरिये भव बिश्वास सहित भजि राम सदाई ॥

श्रवण घटहु पुनि दृग घटहु घटौ सकल बलदेह।
इतै घटै घटिहैं कहां, जो न घटै हरिनेह ॥ ५६३

जो न घटै हरि नेह और के घटे होहि का,
श्रवण घटैं दृग घटैं देह का सुबल घटै दा।
चाहै जो घटि जाय नेक जनि शंका आनो,
घटै न हरिपद नेह परम हित अपनो मानो ॥

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अबतो दादुर बोलि हैं हमहिं पूछिहै कौन ॥ ५६४

हमहिं पूंछिहै कौन लगे जब दादुर बोलन,
कोकिल पावन जानि त्यागि दीन्हों मुह खोलन।
गली २ कलिकाल भये उपदेशक जेते,
लखि तिनकर अपमान विबुध जन सांस न लेते ॥

कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखण्ड।
दहन रामगुन ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचण्ड ५६५

ईंधन अनल प्रचण्ड बीच परि होत भस्म जिमि,
कुपथ कुतर्क कुचालि कली जरिजाय सुनो तिमि।
कपट दम्भ पाखण्ड सकल अघमूल नसाहीं,
कहत सुनत गुणग्राम राम आनत हियमाहीं ॥

कलि पाखण्ड प्रचार प्रबल पाप पांवर पतित।
तुलसी उभय अधार रामनाम सुरसरि सलिल ५६६

कलिकाल में पाखण्ड के प्रचार से और प्रबल पाप के कारण अज्ञानी लोग अधोगति को पाते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि इन दोनों पापों के नाश करने के लिये श्रीरामनाम और श्रीगङ्गा जी का पवित्र जल है।

रामचन्द्र मुख चन्द्रमा, चित चकोर जब होइ।
रामराज सब काज शुभ, समौ सोहावन सोइ ५६७

समौ सोहावन सोइ होइगो रामराज तब
सब शुभ कारज करैं असुभ मन त्यागकरै जब।
यह शुभ अवसर बनै जबहिं चित औरहिं त्यागै,
होइ चकोर श्रीरामचन्द्र मुख चन्दहिं लागै ॥

बीज राम गुन गन नयन, जल अंकुर पुलकालि।
सुकृती सुतन सुखेतबर बिलसत तुलसी सालि ५६८

श्रीराम जी के गुणों का समूह बीज है नयनों का नीर जल है रोमाञ्च होना अङ्कुर है और सुकृती की सुन्दर बढ़िया देह खेत है इस तरह तुलसी की खेती लहलहा रही है। भाव यह है कि भक्तिसे मिली तुष्टि और पुष्टि अर्थात् दैहिक नैरोग्य और मानसिक आनन्द उस समय जानों जब श्रीराम जी के गुणानुवाद का गान करते समय नयनों से प्रेमाश्रुवों का प्रवाह प्रवाहित हो और राम नाम रूप हृदय में बोया हुआ बीज पुलकावली रूप में प्रकट हो जाय और शरीर से सब कार्य भले ही होने लगें।

तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीताराम।
सगुन सुमंगल शुभ सदा आदि मध्य परिनाम ५६९

आदि मध्य परिनाम सदा शुभ मंगलकारी,
सगुण सुमंगल मिलै दूरि भागैं दुख भारी।
श्रद्धा अरु बिश्वास धारि उर अन्तर माहीं,
प्रेमसहित नितसुमिरि सियावरपह जन जाहीं॥

पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम ५७०

सुमिरत सीताराम सिद्धि सब करतल आवत,
लहि प्रभुता सन्मान जीव जीवन फल पावत।
पुरुषारथ सब सुफल स्वार्थ सब दहिने आवहिं,
सुख सम्पतिको भोगि अन्त हरिधाम सिधावहिं॥

मनिमय दोहा दीप जहँ उरधर प्रकट प्रकाश।
तह न मोहमय तमतमी कलि कज्जली विलाश ५७१

कलि कज्जली विलाश पापमय अति भयकारी,
सुखमय लहै प्रकाश पाई मणि दीप उजारी।
दोहादीप प्रकाश। उरधरी प्रकट करे जब,
महामोहमय अन्धकार विनशहि सबसे तब॥

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये सांच।
काम जो आवे कामरी का लै करै कुमांच ५७२

कुमांच=रेशमी कपड़ा

का लै करै कुमांच वसन पाटम्बर बहुविधि,
जो कामरी, अंकलि पाइ जग साधौ सब सिधि।
का पढ़ि ग्रन्थ अनेक संस्कृत अरु भाषा के,
सत्य प्रेम करु राम कल्पतरु सब आशा के॥

मनि मानिक महँगो कियो सहगो तृण जल नाज।
तुलसी एते जानिये राम गरीब निवाज ५७३

राम गरीब निवाज सुलभ निज पद करि राख्यौ,
अनजल तृणकी भांति जानि तुलसी असभाख्यौ।
मनि मानिक बहु सिद्धि प्राप्ति तिनकी अतिदुष्कर,
अन्तवन्तफल तासु रामपद नितनव सुखकर॥

इति श्री